

ज्ञान चतुर्वेदी



एक गाँव के बहाने समूचे भारतीय समाज के
विडम्बनापूर्ण बदलाव की कथा

स्वांग



स्वांग

ज्ञान चतुर्वेदी

राजकमल प्रकाशन

आईएसबीएन: 978-93-90971-26-8

© ज्ञान चतुर्वेदी

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. 1-बी, नेता नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110 002 दरियागंज

शाखाएँ : अशोक राजपथ, साइंस कॉलेज के सामने, पटना-800 006 पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, प्रयागराज-211 001 36 ए, शेक्सपियर सरणी, कोलकाता-700 017

वेबसाइट : www.rajkamalprakashan.com

ई-मेल : info@rajkamalprakashan.com

स्वांग उपन्यास ज्ञान चतुर्वेदी द्वारा

इस पुस्तक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश को, फोटोकॉपी एवं रिकॉर्डिंग सहित इलेक्ट्रॉनिक अथवा मशीनी, किसी भी माध्यम से, अथवा ज्ञान के संग्रहण एवं पुनःप्रयोग की प्रणाली द्वारा, किसी भी रूप में, पुनरुत्पादित अथवा

ओरछा स्टेट के युवतम राजकवि मेरे मामा नरोत्तमदास पांडेय,
मेरे नानाजी, प्रख्यात कवि घनश्यामदास पांडेयजी को सादर समर्पित ।

बचपन में जिनकी कविताओं की अनगिनत डायरियों को
बार-बार पढ़-पढ़कर मैं कविता की अलौकिक दुनिया की खिड़की से
जो साहित्य की दुनिया में कूदा तो फिर
मानो इस दुनिया में वापस ही नहीं आया।
इन्होंने ही जाने-अनजाने मुझे लेखक बनाया...

यह पढ़कर ही आगे बढ़ें

मैंने सोचा था कि इस बार अपनी तरफ से कोई भूमिकानुमा बात नहीं करूँगा। उपन्यास सीधे ही पाठक को थमा दूँगा कि लो मित्र, यह कथा तो पढ़ो जरा। पर मन नहीं माना। तो इस उपन्यास को लेकर एक-दो छोटी-छोटी वे बातें जिनको कह लूँगा तो लगेगा कि जो उपन्यास में रह गया वह भी कह लिया।

मैं ऐसा बुंदेलखंडी आदमी हूँ जो अपने ठेठ बचपन के दिनों के बाद कभी भी बुंदेलखंड में नहीं रहा। रह नहीं पाया। पहले पढ़ाई, फिर गमे रोज़गार ने मुझे जीवन भर बुंदेलखंड से बाहर ही रखा। परन्तु बुंदेलखंडी आदमी जहाँ भी जाता है, अपने हिस्से का बुंदेलखंड साथ लेकर ही जाता है। उसे वह हमेशा अपने साथ ही रखता है। दिल के ऐन पास उस खीसे में जहाँ महबूब की तस्वीर रखने का रिवाज चला आता है, ठीक वहीं। रात-बिरात निकालकर उसे देखता रहता है। जब-तब, गर्दन झुकाकर तस्वीरें यार देख लेता है। आज की प्रैक्टिकल दुनिया में इसे मेरा पिछड़ापन भी कहा जा सकता है परन्तु सच यही है कि "ऊधो, मोहे ब्रज बिसरत नाहीं।" बुंदेलखंड इतना रंगबिरंगा है कि वह आपके व्यक्तित्व का हिस्सा हो जाता है, आसानी से छूटता नहीं। छूट ही नहीं पाता। कहीं भी चले जाओ, आपकी ये झकड़ा जड़ें आपके साथ-साथ चलती हैं। पर ये जड़ें ही तो आपके व्यक्तित्व में हरियाली कायम रखती हैं बशर्ते आप इन्हें सूखने न दें। और उसके लिए कोशिश और कशिश, दोनों लगते हैं।

... मैं निरन्तर अपने बुंदेली मित्रों, अपने कस्बे, गाँव और पीछे छूट गए रिश्तेदारों से संपर्क में रहकर इन जड़ों को जीवंत रखे रहा हूँ। स्मृतियों में बसे बुंदेलखंड के गाँव, लोग और समाज को निरन्तर अपडेट करता रहा हूँ मैं। मेरे लेखन का बुंदेलखंड नास्टेलजिया और यथार्थ के बीच में कहीं बसी हुई अद्भुत-सी दुनिया है। बड़ी कहानियाँ हैं इस दुनिया की जो मेरा पीछा करती हैं कि कभी, किसी दिन मुझे भी तो अपने पाठकों से कहो न ! कथाओं और चरित्रों की एक सोने की खदान है मेरे पास, मेरी लेखन की कुर्सी के ठीक नीचे। फिर मैं दरिद्र बना हुआ क्यों घूमता हूँ-ऐसा भी पूछ सकते हैं आप। अब मैं क्या कहूँ? मैं लगातार स्वयं को, और इन अनकही कहानियों को बहलाता और टहलाता रहा हूँ कि एक दिन दुनिया भर के कारोबार से फुर्सत पाकर तुम्हारे साथ इत्मीनान से बैठ जाऊँगा, ज़रूर बैठेंगे तुम्हें लिखने के लिए, एक दिन; और वह दिन कभी नहीं आता है। अक्सर दूसरी चीज़ें खींच लेती हैं मुझे। खज़ाना वहीं पड़ा और गड़ा रह जाता है। खज़ाने के बॉक्स बन्द पड़े रह जाते हैं। सच यही है कि जीवन की आपाधापी में मुझे वह समय ही नहीं मिला कि मैं इन कथाओं के सारे बक्से खोल पाता, सब कुछ बाहर निकाल पाता। ले देकर एक 'बारामासी', और एक 'हम न मरब'; बस, दो उपन्यास। ऐसा नहीं कि मैं इस बीच फालतू बैठकर समय नष्ट करता रहा होऊँ। नहीं, मैंने दूसरी बहुत सी चीज़ें रचीं। ब्रज से निकलकर कन्हैया, द्वारका से लेकर महाभारत तक में उलझा रह गया। कॉलम लिखे। निरर्थक बहसें कीं। साहित्यिक महत्वाकांक्षाओं और तृष्णाओं में भटकता रहा। बुंदेलखंड और वहाँ के जीवंत समाज को दरकिनार कर मैं बहुत-सा और सारा लिखता रह गया। 'नरकयात्रा', 'मरीचिका' और 'पागलखाना' नामक उपन्यासों ने ही मेरे जीवन के कई साल ले लिए। फिर फुटकर भी बहुत लिखा। ढेर-सा व्यंग्य लिखा। लेख। कथाएँ। बाक़ी के लेखकीय खटकर्मों ने भी उलझाया। अर्थहीन विवादों में भी उलझा तथा उलझाया गया। नासमझों और कुछ ज़्यादा ही समझदारों के साथ बहसों में भी मैंने अपना खूब समय खराब किया। वे तो बदले नहीं; वे वही रहे, मैं ज़रूर बिगड़ते-बिगड़ते बचा। हिन्दी साहित्य के विश्व में ऐसा बहुत-सा घटता रहता है जो जाने-अनजाने आपकी रचनात्मकता को कुंद करने का कारण बन जाता है। लेखक का बहुत-सा महत्त्वपूर्ण समय और उसकी बहुत-सी ऊर्जा खा जाता है यह सब। मेरे साथ भी वही हुआ। जीवन कुछ रचनात्मक और कुछ गैर-रचनात्मक चीज़ों में बीतता चला गया और मैं मूर्ख यही मानता रहा कि अभी तो बहुत समय शेष है। फिर कब बुढ़ापा आ गया, कब लोग आपको वरिष्ठ लेखक कहकर सम्मान देने या दरकिनार करने लगे पता ही नहीं चला। बस, हुआ यह कि एक दिन आप उठे और आपने पाया कि श्वासों के खीसे में खास कुछ बचा नहीं है। मुट्ठी से समय की रेत खिसक गई है। रेतघड़ी बन्द होने को आई है। समय नहीं बचा और कई कहानियाँ कहने से रह गई।

और तब मुझे 'स्वाँग' की याद आई।

'पागलखाना' समाप्त करने के बाद दो उपन्यास मेरे मन में थे। सोच नहीं पा रहा था कि पहले किसे उठाऊँ? फिर 'स्वाँग' ने पकड़ लिया।

जैसा कि कहने का फैशन है, 'स्वाँग' को बुंदेलखंड पर मेरे लिखे उपन्यासों की एक ट्रायोलॉजी बनाने का श्रेय दिया जा सकता है। 'बारामासी' और 'हम न मरब' से भी पहले से बुंदेलखंड के जीवन के इस पक्ष पर लिखने को मेरा मन सालों से था पर कहानी कोई ठीक-सा रूप ही नहीं ले रही थी; ऐसा मोहिनी रूप कि फिर उसे कहे बिना रहा न जा सके। क्या था यह पक्ष? ... बुंदेली समाज में अपराध की लगभग स्वीकार्यता, अपराधियों का महिमा-मंडन, झूठी शान, जातिवादी राजनीति और इसका अपराध से गठजोड़, रिश्त और भ्रष्टाचार को जीने का एक तरीका और अवसर मानना स्वीकार्य, प्रशासन में व्याप्त अन्याय की भी लगभग वैसी ही स्वीकार्यता और अदालत-अदालत खेलने में आनन्द लेने वाले लोग, और 'स्त्री जाति' को लेकर लगभग आपराधिक पिछड़ापन-इसकी एक कहानी तो बनती थी; पर वह क्या हो? तो विषय मन में था पर कथा और चरित्र कुहासे में थे। सालों कुहासा रहा। 'पागलखाना' के बाद मैंने इस कुहासे को चीरने की ठानी। ऐसे में, फिर मैं अपने लल्लू मामाजी से मिल लेता हूँ। वे मेरे लिए कई बुंदेली चरित्रों का मिला-जुला प्रोटोटाइप साबित होते हैं। 'हम न मरब' उनके साथ बैठकर ही आकार ले पाया था। इस बार 'स्वाँग' को लिखना तय किया था तो फिर मैं वहीं लल्लू मामा के दरबार में जा पहुँचा। कोटरा के अपने अठहत्तर वर्षीय लल्लू मामा के साथ मैंने दो दिन बिताए। इस बार, बोनस के तौर पर, वहाँ मेरे साथ लगातार मामाजी का युवा नाती अंकुर भी रहा और घूमा। वह बुंदेलखंड के भीतरी गाँवों में व्याप्त दुनिया का बेहद संवेदनशील दृष्टा साबित हुआ। मैं खूब घूमा उसके साथ। खूब सुना। खूब देखा। मन में खड़े चरित्रों से मानो धूल-सी झर गई। गाँव से लौटा तो 'स्वाँग' का कुछ-कुछ खाका मन में आकार लेने लगा था। डायरी में नोटिंग्स लीं। बार-बार अंकुर से फोन पर पूछकर नोट्स के ज़मीनी तथ्यों को ठीक करता रहा। फिर एक दिन लल्लू मामा की जय बोलकर यह उपन्यास लिखने बैठ गया। कहानी भी ऐसी थी कि खुद को ही लिखवा रही थी।

छह माह में पहला ड्राफ्ट बना। फिर आठ बार लिख-लिखकर, बार-बार रिवाइज कर करके दिसम्बर 2019 के अन्त में एक दिन ऐसा लगा कि अब शायद यह वैसा बन गया है जो मैंने कभी शुरू में सोचा था। इस तरह 'स्वाँग' आपके हाथ में है। वह किसी डरे हुए परीक्षार्थी की भाँति आपके सामने पेश है।

इस उपन्यास में कहने को तो कोटरा है पर उस एक गाँव में कमोबेश सारा बुंदेलखंड, और गहन अर्थों में सारा हिंदुस्तान समाहित है। पूरे उपन्यास में कोई भी चरित्र ऐसा नहीं जो मैंने मात्र केरिकेचर के तौर पर उठाया हो। ये जीवित लोग हैं। ये सब आपके आस-पास मौजूद हैं। हाँ, इनमें किसी व्यक्ति विशेष को न खोजा जाए। यहाँ हर चरित्र कई चरित्रों की केमिस्ट्री से उत्पन्न चरित्र है। एक महत्त्वपूर्ण चरित्र टंटा बब्बा

उर्फ पगल महात्मा उर्फ गजानन बाबू का है। इसे एकदम काल्पनिक न मान लें। मैंने जीवन में तीन अलग-अलग जगहों पर तीन ऐसे चरित्र देखे-समझे हैं। ये तब से मेरे मन में कहीं अटके हुए थे, किसी अतृप्त आत्मा की भाँति। इस उपन्यास में उनको मुक्ति मिल गई है। अब उनकी आत्मा भटकेगी नहीं। इसी तरह, अन्य चरित्र भी निरे काल्पनिक नहीं; काश कि वे सब काल्पनिक होते।

करते-करते इस उपन्यास को नवीं बार भी संपादित करना पड़ा। फाइनल ड्राफ्ट 424 पेज का बना था। मैं कुछ जगहों पर दुविधा में भी था। कुछ प्रसंगों को निर्ममता से संपादित करने का मन भी था और उन्हें उपन्यास में रखने का मोह भी। ऐसे में इस उपन्यास के प्रथम पाठक, मेरे प्रिय मित्र श्रीकांत आटे काम आए। उनकी बहुत अच्छी बात यह है कि वे मित्रता का झूठा लिहाज नहीं करते हैं। वे किसी की झूठी तारीफ़ नहीं करते। मेरी भी नहीं करते हैं। उन्होंने पूरा पढ़ा। फिर स्वतंत्र रूप से उन्हीं आठ-दस प्रसंगों पर अपनी उँगली रखी जिनसे मैं पूरा सन्तुष्ट नहीं था। मुझे बल मिला। मैंने फाइनल हो गए ड्राफ्ट को प्रकाशक को देने से रोक लिया। फिर से इसे लेकर बैठा। वह सब काटा जो काटा जाना चाहिए था। इस तरह फरवरी, 20 में जाकर उपन्यास वह बना जो आपके हाथ में है।

तो धन्यवाद श्रीकांत आटे का।

आभार मेरे मित्र, युवा आलोचक राहुल देव का भी। इस उपन्यास का नाम तय करने में उनका बड़ा सहारा रहा।

और मेरी पत्नी, शशि? उन्हें आभार कहूँ तो वह इसे मेरी फालतू की चोंचलेबाजी कहेंगी। मेरे जीवन में शशि न हों तो लेखक ज्ञान चतुर्वेदी कुछ लिख ही न पाएँ। इस उपन्यास को जब मैं फाइनल तौर पर, घंटों बैठा हुआ लगभग सात-आठ माह तक कंप्यूटर पर लिखता रहा, शशि ने मुझे बहुत तरह से बरदाश्त किया। शशि मेरी ताकत हैं, यह एक बार फिर से सिद्ध हुआ।

और मेरी नातिन किया उर्फ शिंजनी? वह अभी मात्र साढ़े चार साल की है पर मेरी सबसे बड़ी ताकत है। वह मेरे लिखने के दौरान मेरे पास बैठकर कागजों पर अपना नावल लिखती रही। रोज ही कुछ गोदती रहती। कहती, नानू, मैं भी नावल लिख रही हूँ। नई पीढ़ी को लिखने के संस्कार दे रहा हूँ- यह सोचकर अच्छा लगता है।

ए-40, अलकापुरी, भोपाल-462024

- ज्ञान चतुर्वेदी

ग्राम कोटरा। जिला कालपी।

कथा यूँ तो बुंदेलखंड के इस छोटे-से गाँव में घट रही है
परन्तु यह कथा यहाँ की भी है और वहाँ की भी।
यह आपके हिस्से के कोटरा की भी कथा है।
यह उस कोटरा की भी कहानी है
जिसे हम हिंदुस्तान कहते हैं।

तो एक बार कोटरा में हुआ यूँ कि...

वैसे हुआ वही जो कोटरा में हर बार होता रहा है।

जहाँ जयहिंद, बस एक चुटकुला है

"जयहिंद महात्माजी।"

"जयहिंद बेटा।"

किसी ने जयहिंद कहा और गजानन बाबू गद्गद हो गए। वे हो जाते हैं। तुरन्त हो जाते हैं। कभी उनसे 'जयहिंद' बोलकर तो देखो, ऐसे गदगदाते हैं कि हंसी रोकना मुश्किल। वैसे, वे इस इलाके के जाने-माने स्वतंत्रता सेनानी रहे हैं परन्तु कोटरा वाले इस एक बात पर लगभग सर्वसहमत हैं कि देशभक्ति की चपेट में आकर पगला गए हैं बब्बा। सब उनकी इज्जत करते हैं, पर उन पर हँसते भी हैं। कोटरा ने उनको एक इज्जतदार नाम भी दे दिया है- 'पगल महात्मा'। वे पगल ही तो हैं। जब देश के सारे समझदार स्वतंत्रता सेनानी देशभक्ति के झंझट से बाहर निकल आए, जब तुम्हारे साथ के छुटभैयों तक ने बड़ी-बड़ी कुर्सेयाँ हथिया लीं तब तुम खद्दर, देशभक्ति, गांधीजी, सर्वोदयी झोला, जयहिंद और सत्य के दकियानूसी प्रतीकों में ही उलझकर बैठे रह गए। सही कहते हैं सब; पगल महात्मा ही तो हैं गजानन बाबू।

इलाके के पुराने स्वतंत्रता सेनानी हैं, सो उनके मुँह पर तो नहीं हँसा जा सकता, पर मज़ा तो लिया ही जा सकता है न? सब उनका मज़ा लेते हैं। "जयहिंद" बोलने पर उनका यूँ अटूट गदगदाना एक खेल-सा बन गया है कोटरा में। लोग उन्हें देखते ही मुस्कुराते हैं। लौंडे उन पर हँसते हैं। बच्चे ताली बजाकर उनका पीछा करते हैं। बुजुर्ग उन पर तरस खाते हैं कि ऐसे खौंटी देशभक्त का अन्ततः ऐसा हाल हुआ। लोग उनके इस हाल पर दुखी भी होते हैं। और क्यों न हों? ... पगल हैं, पर हैं तो महात्मा ही न! लोग उन्हें टंटा बब्बा भी कहते हैं।

गजानन बाबू का हर व्यक्ति से अभिवादन के लिए 'जयहिंद' कहना एक चुटकुला बन चुका है कोटरा में।

किसी कोटरावासी के साथ कभी बाहर गाँव से आया हुआ कोई रिश्तेदार हो, और उसे गजानन बाबू दिख जाएँ तो वह अपने रिश्तेदार को लगभग खींचता हुआ गजानन बाबू के पास लेकर जाता है कि चलो, आज तुम्हें एक तमाशा दिखलाते हैं। ... कैसा तमाशा? ... जैहिंद वाला तमाशा। अरे, आओ तो। सामने से वे जो बब्बा आ रहे हैं न? बस, जरा और पास आ जाएँ तो आप उनसे तनिक ज़ोर से जैहिंद बोलिएगा, ठीक?...पर उससे क्या? ... यार, आप ज़रा बोल के तो देखिए। बोलिए, बोलिए, बड़ा मज़ा आएगा।

"जयहिंद बब्बा!"

"जयहिंद, जयहिंद।"

"गजानन बाबू जयहिंद सुनते ही भावविभोर हो जाते हैं। उनके पूरे व्यक्तित्व में एक नृत्यभाव आ जाता है। बल्कि नाच ही उठते हैं वे। ऐसे गद्गद होते हैं कि फिर देर तक उनका पौर-पौर गदगदाता रहता है। ... देखा? हमने कहा था न आपसे?" दोनों हँसते हैं।

गजानन बाबू बाज़ार में बने एक चबूतरे पर बिराजे हुए मिल जाते हैं, अक्सर।

यहाँ चुपचाप बैठे हुए वे न जाने क्या-क्या सोचते रहते हैं। लोग यह मानते हैं कि वे देश के बारे में ही सोचते होंगे। ऐसा ही अंशट सोच-सोच के तो पगलाए हैं। यार, देश के बारे में अगर इत्ता सोचोगे तो पगला तो जाओगे ही न! कोई भी पगला जाएगा। वैसे, सब यह भी मानते हैं कि उनका इस तरह पागल होना कोई छोटी-मोटी बात नहीं है; बहुत ही बड़ी बात है भाई! तभी तो गजानन बाबू और उनके पागलपन की बड़ी इज्जत भी करते हैं कोटरावासी।

गजानन बाबू फिलवक्त भी चबूतरे पर विचारमग्न बैठे हैं।

सुबह का वक्त है। अभी बाज़ार धीरे-धीरे खुलना शुरू ही हुआ है।

दुकानदार बंधु, चबूतरे के पास से निकलते हुए गजानन बाबू को 'जयहिंद' बोलते चले जा रहे हैं। हर 'जयहिंद' के जवाब में वे अपनी जगह से लगभग छह इंच उचककर बुलंद आवाज में 'जयहिंद' कहते हैं। उनका यँ उचकना लोगों को मज़ा दे जाता है। कुछ मुस्कराते हैं, कुछ खुलकर हँसने लगते हैं। गजानन बाबू को लोगों की इस हँसी से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता है। वे हर जयहिंद पर उसी उत्साह से उचकते रहते हैं। आते-जाते स्कूली छात्र और फुरसतिया युवा लौट-लौटकर उनको 'जयहिंद' करते हैं। उन लोगों की हर 'जयहिंद' पर भी वे उसी तरह बार-बार उचकते हैं। लड़कों के लिए यह सब एक खेल जैसा है। वे बब्बा की हर 'जयहिंद' पर हँसते हैं और रह-रहकर उनको 'जयहिंद' करते हैं। चबूतरे पर बैठे अन्य कुछ बूढ़े अवश्य इन लौंडों को फटकारते रहते हैं। ... पहिचानते भी हो इनको? स्वतंत्रता संग्राम में अंग्रेजों की लाठी खाई है इनने। गांधीजी के पीछे-पीछे चले हैं नमक आन्दोलन में। ... तिरंगा ले के मुँड़ पे डंडे खाए हैं; और तुम स्साले इनका ही मज़ाक बना रहे हो? ... लड़के ढीठ हैं। डाँटने पर भी हँसते रहते हैं। हँसकर तर्क देते हैं : "हम तो बस जयहिंद बोल रहे थे चच्चा। मज़ाक थोड़ेई है, जयहिंद है।" कहकर ज़ोर से हँसते हैं वे। गजानन बाबू मुस्कराते हुए बैठे रहते हैं।

"जयहिंद बब्बा।"

"जयहिंद बेटा। ... जयहिंद।"

गजानन बाबू का गद्गद होना उजागर है।

"महात्मा गांधी की जय।"

"महात्मा गांधी की जय।"

गजानन बाबू गद्गद होते जाते हैं। दिव्य स्तर के गदगदायमान। लोगों को इसी में तो मज़ा आ जाता है। ... चलो, चलो, अपुन टंटा बब्बा की जयहिंद करें।

गजानन बाबू अभी चबूतरे पर हैं। वैसे उन्हें जाना भी कहाँ है? यहाँ से उठेंगे तो गाँव में बस चार-पाँच जगह और जाएंगे; बस अड्डा, स्कूल का गेट, पंचायत भवन, छुट्टन की पुलिया और कड़ा की बरिया (बरगद); और वहाँ भी बस, ऐसे ही बैठे मिलेंगे, कुछ न कुछ सोचते, जयहिंद करते। हर जगह, बस जयहिंद लेंगे, देंगे या चुपचाप बैठे रहेंगे। प्रायः कोई भी नहीं उलझता उनसे। किसी ने कभी भूले से कोई बात कर ली तो वे तुरन्त अपनी बड़ी-बड़ी बातें शुरू कर देंगे। फिर वे बोलते ही चले जाएंगे। रुकेंगे ही नहीं। ... इनसे तुम कोई भी बात न करियो भैया वरना इनकी बिना ब्रेक की गाड़ी चल पड़ेगी। मैं से देशभक्ति की इत्ती भाप भकभका के निकलेगी कि तुम भागते गैल न मिलेगी। ... माना कि महात्मा आदमी हैं पर पगला भी तो गए हैं न? ऐसे पगल महात्मा का आदमी आखिर क्या करे - बताइए? इसीलिए इन्हें तो बस चुपचाप बैठे रहने दो। छेड़ो मती। इनसे बात-फात न करो। हाँ, कभी मजा लेने का मन करे तो जयहिंद करके छेड़ भर दो। फिर देखो मजा।

"जयहिंद महात्माजी।"

"जयहिंद!"

"महात्मा गांधी की जय।"

"महात्मा गांधी की जय !"

दिन भर वे लोगों से जयहिंद सुनते हैं। दिन भर गद्गद होते हैं। लोग मात्र ठिठोली के लिए बार-बार 'जयहिंद' बोल रहे हैं - वे यह भी जान जाते हैं; ऐसे पागल भी नहीं हैं गजानन बाबू। पर वे इसका बुरा नहीं मानते। बोलने दो। मज़ाक़ में ही सही, लोग कम से कम 'जयहिंद' तो बोलते हैं न? यही क्या कम है कि इन्हें 'जयहिंद' की याद है! हँसी उड़ाने के लिए ही सही, लोग महात्मा गांधी की जय तो बोलते हैं न। देश का नागरिक महात्मा गांधी और जयहिंद को याद रखे रहे, बस; तो देखना कि एक दिन यह देश ज़रूर बदलेगा। देश में रामराज्य ज़रूर आएगा एक दिन। ... यही सब सोचते रहते हैं गजानन बाबू। सोचते-सोचते मुस्कुराने लगते हैं वे। अभी भी नयन मूँदे, चबूतरे पर अधलेटे मंद-मंद मुस्कुरा रहे हैं वे। ...कि अचानक ही आँखें खोल दीं उन्होंने। फिर न जाने क्या सोचते हुए वे उठे

और एक जोरदार नारा लगाकर बोले, "जयहिंद!"

बुलंद नारा सुनकर आस-पास के लोग चौंक पड़े।

"पगलट हैं", किसी ने कहा।

इधर गजानन बाबू फिर से आँखें मूंदकर विचारमग्न हो चुके हैं।

जिनसे हर वैदक हार चुकी

'गनेशी पान सदन' बस अड्डे पर ऐसी जगह स्थित है जहाँ कीचड़ की पूर्वपीठिका साल भर ही बनी रहती है। अभी भी ज़रा-सी बेमौसम की बारिश क्या हुई कि आस-पास कीचड़ हो गया है।

इसी कीचड़ से बचते-बचाते हुए अभी चार आदमी वहाँ खड़े हुए हैं। स्वयं गनेशी अपनी पान की गुमटी में कमलवत खिले-खिले से बैठे हैं।

पंडिज्जी ने अपनी मोटरसाइकिल, कीचड़ पर दो बार रपटने के बावजूद, बड़े कौशल से, गुमटी को, और वहाँ खड़े किसी ग्राहक को ठोके बिना ही ऐन गुमटी के सामने ले जाकर रोक ली। गनेशी ने उनको 'पालांगी मालिक' कहा और अन्य सभी का काम रोककर सबसे पहले पंडिज्जी का पान बनाने में लग गया।

गुमटी पर कोटरा का वीआईपी पधार गया था।

"यार, तुम पान में चूना बिलकुल भी न लगाना।" पंडिज्जी ने चेतावनी दी।

"हमें पता है मालिक।" गनेशी पूरे मनोयोग से उनका पान लगा रहा है।

"जब तुमको पता है सरऊ तब कल काहे इत्ता चूना लगा दिये थे?" पंडिज्जी बोले।

कल्ये में रंगे हाथों को अपने कानों की तरफ़ ले जाकर क्षमाप्रार्थी मुद्रा में दाँत निपोर दिये गनेशी ने।

"हो जाता है मालिक...। न जाने कैसे..."

"... पता है-कल जीभ कट गई हमारी? और हमारा तो पूरा काम ही स्साला जीभ का है।"

"सही कहा पंडिज्जी ने। ... नेता की जीभ कट जाए, इससे बड़ा अनर्थ और क्या हो सकता है- बताइए?," किसी ने कहा।

सब हँसने लगे। पंडिज्जी भी हँसी में शामिल हुए।

"कितें खों जा रई पंडिज्जी की सवारी?" किसी ने पूछ लिया।

"थोड़ा कालपी खों निकल रहे हैं।" पंडिज्जी ने बताया।

"पेशी पे जा रये होंगे?"

"बस, जेई मान लो।" पंडिज्जी ने कहा।

"कौन-से केस में?" पूछा गया।

"यार, तुम तो वकीलों ने कहा। जैसे सवाल पूछने लगे?" पंडिज्जी

सब हँसने लगे।

पंडिज्जी भी मुस्कराने लगे।

"फिर भी, आज कितें?" पूछने वाले ने पीछा नहीं छोड़ा।

"भैया, उतें जज्जी में हमारे दस केस चल रये हैं। हमें क्या पता, कौन-सी पेशी है, वो तो हमें वकील बताएगा।" पंडिज्जी ने लापरवाही से कहा।

"जे तो है। बड़े आदमियन की बड़ी बातें।" एक ने कहा।

बात मुकदमेबाजी की तरफ़ मुड़ गई।

"सही कही। बड़े आदमियों का शौक है जे तो। मुकदमा बड़ा महँगा काम है।" एक और बोला।

"रंडी पालने जैसा मामला है।" एक और बोले।

"हमने भी यह कोई शौक नहीं पाला है, पर क्या करें? जमाना भौत खराब है। लड़ना पड़ता है। हम से पूछो, एक-एक पेशी में किती रकम निकल जाती है।" पंडिज्जी ने स्वीकारा।

"खैर, जज्जी में घुसो तो वकील लोग मुवक्किल की काँच तो बाहर ही उतरवा लेते हैं।" किसी ने कहा।

"मुकदमेबाजी, मान लो, हाथी पालबे वाली बात है।"

"छोटा आदमी पाले तो उसकी लीद में ही दब के मर जाए।"

"सही बोल रये सगे। ... मुकदमेबाजी के लाने तो भौत बड़ा करेजा चइए भैया।"

गनेशी ने इसी बीच पान तैयार करके पंडिज्जी के सामने अदब से पेश कर दिया।

पंडिज्जी ने पान मुँह में रखा। वहीं खड़े हुए धीरे-धीरे पान चबाते रहे। गनेशी उनका मुँह देखता रहा।

"आज वाला तो ठीक है न पंडिज्जी?" उसने पूछा।

"देखते हैं। पहले हमें ठीक से चबाने तो दो।" पंडिज्जी ने नेताओं वाला जवाब दिया।

गनेशी अन्य लोगों का पान बनाने लग गया।

"आपको जज्जी के लाने देर नहीं हो रई पंडिज्जी?" किसी ने घड़ी देखकर कहा और चेताया कि आपके ग्यारह तो इधर ही बज रहे हैं, जज्जी पहुँचते-पहुँचते तो आपको और लेट हो जाना है।

"पहुँच जाएँगे यार।" पंडिज्जी ने लापरवाही से कहा। कह तो दिया परन्तु चौंककर वे मोटरसाइकिल पर बैठ भी गए। अब वे मोटरसाइकिल स्टार्ट करने की मुद्रा में आ गए थे।

इधर लोग अदालत और मुकदमेबाजी के अपने-अपने अनुभव बताने में आपस में व्यस्त हो गए थे।

"हम तो भैया बस, एकई बार फँसे थे। वो भी, बस गवाही देबे के चक्कर में। हम तनिक देर से अन्दर पहुँचे तो जज साब तो एकदम बमक गए।" कोई इजलास में देर से पहुँचने के खतरे गिनाने लगा।

पंडिज्जी अप्रभावित रहे। बोले, "भैया, जज लोगन की नाराजगी का कभी बुरा नहीं मानना चाहिए। ऐसा मान लो कि वे लोग नाराज ही बैठे रहते हैं। जेई उनका परमानेंट स्वभाव है।"

"नाराज काहे बैठे रहते हैं?"

"क्यों न रहेंगे? तुम खुद कभी सुबे से शाम तक लगातार कुर्सी पर बैठ के देख लो।"

"तो?"

"इत्ती लम्बी बैठक कोई आसान काम है क्या? अच्छे-अच्छों को बवासीर हो जाती है, चूतड़ पर भट्टे पड़ जाते हैं, सिर भन्नाने लगता है। सही में तो उनका गुस्सा अपनी बवासीर पर है, वे अपने चूतड़ के भट्टों पर नाराज हो रहे हैं; हमें जे लगता है कि वे हमसे नाराज हैं। देखो, सही बात जे है कि बवासीर का तो वे कुछ कर नहीं सकते, इसीलिए तुम पे गुस्सा निकालते हैं।" पंडिज्जी बोले।

"तो बवासीर को हिरासत में काहे नहीं ले लेते? ... कर दें ससाली को अन्दर? निकाल दें आर्डर..." कोई बोला।

"... अन्दर ही रहती है।" किसी ने बवासीर के विषय में बताया।

"सन्देह का लाभ मिलता है बवासीर को।" कहकर हँसे पंडिज्जी।

"कैसे?"

"वो ऐसे कि नीचे दर्द हो रहा हो तो यह कहना बड़ा कठिन हो जाता है कि बवासीर परेशान कर रही है कि नीचे कुर्सी में ही कुछ गड़बड़ है।" पंडिज्जी बोले।

"खैर, जे तो है। अदालत का आधा काम तो सन्देह के लाभ पर चल रहा है।" किसी ने माना।

पंडिज्जी ने गाड़ी स्टार्ट की।

गियर लेते हुए पंडिज्जी ने मानो चलते-चलते किसी से कहा :

"जे तुम आजकल नेताजी के संग भौत उठ-बैठ रहे हो रामकरनजी?"

"कौन नेताजी?"

"यार, ऐसे भोले तो न बनो। पंखीलाल कहार, और कौन। जब हम नेताजी का पूरा नाम लेंगे तभी मानोगे क्या तुम?"

"अच्छा, अच्छा, बे?"

"भाई, कोटरा में तो बेई नेताजी कहाते हैं।"

"हमारे नेता तो आप हैं।"

"हम हैं न? तो फिर जे तुम नेताजी की परकम्मा काहे को कर रये?"

"हम तो आपकी भी सुबह-शाम परिक्रमा कर लेते हैं।"

"हम तो बस चेता रहे हैं- नीच के साथ उठोगे-बैठोगे तो तुम्हारे आचार-विचार भी नीच हो जाएँगे।"

"क्या करें पंडिज्जी, कोटरा में रहना है तो आदमी हर नेता को नमस्कार करता ही है। ... वर्ना आपकी ताबेदारी से बाहर नहीं हैं हम।"

"तो बस जेई कृपा बनी रहे।" कहकर पंडिज्जी ने हाथ में लगा कल्हा गुमटी में एक तरफ लटके कपड़े से पोंछा और धड़धड़ करते निकल गए।

सब उनका जाना देखते रहे।

"जाते-जाते जे क्या इशारा कर गए पंडिज्जी?" किसी ने पूछा।

"यार, जे हैं सवर्णों के नेता, और बे पंखीलाल हैं पिछड़ों के सर्वेसर्वा । ... कोटरा में रहना है तो आप इनमें से किसी एक के हो जाओ, या फिर दोनों को साथ के चलो।" रामकरनजी बोले।

"जे नेता लोग भी किसी बवासीर से कम नहीं हैं।"

"कोटरा की बवासीर हैं जे लोग।"

"खूनी बवासीर हैं कि बादी वाले?"

"अब जे बात तो जमाने में कोई आज तक पता नहीं कर सका है। इनमें खूनी बवासीर की तासीर भी है और बादी की भी, जब जैसा मौका पड़ जाए। देश की सारी वैदक हार चुकी है इनसे।"

पीढ़ी संघर्ष में ईसपगोल

"फिर? आगे क्या हुआ?"

पर आगे की कहानी बताने से पहले तनिक इससे भी पहले की कथा बता दी जाए।

अभी हम ठेठ आज सुबह की ही बात बताते हैं जब पंडिज्जी घर से भी नहीं निकले थे।

कालपी के लिए घर से निकलते-निकलते पंडिज्जी की अपोली से बहस हो गई। अक्सर हो जाती है। पंडिज्जी के सबसे बड़े सुपुत्र हैं अपोली। उम्र चौबीस वर्ष, जितने बड़े हैं नहीं, उससे ज्यादा खुद को मानते हैं। एकदम दुबली-पतली काया के स्वामी। कभी नियमित जुलाब भी लिया जाए तो भी ऐसी काया प्राप्त कर पाना कठिन है। एकदम बमखटाखट टाइप व्यक्तित्व। चलें तो कमर लचकती है। पूरा शरीर संटी-सा लपकता है। इसी पतली कमर पर वे इतनी चौड़ी बेल्ट बाँधते हैं कि कमर का पतलापन अंधे आदमी से भी चूक नहीं सकता। कोटरा में हर जगह उनकी कमर चर्चा में रहती है। सभी मानते हैं कि जब तक आदमी निपट बचपन से ही हस्तमैथुन जैसी आदतों में लगभग नियमित रूप से मुस्तिला न रहा हो, और जवान होने के बाद अनेक स्त्रियों के नियमित संसर्ग में अपनी ऊर्जा की बूंद-बूंद न निचोड़ फेंके तब तक इतना मारक पतलापन प्राप्त कर पाना सम्भव नहीं। फिर अपोली कद में कुछ ज्यादा ऊँचे भी हैं। पतली कमर के कारण उनका शरीर बीच से धनुष टाइप टेढ़ा लगता है। अपने दुबलेपन को निष्प्रभावी बनाने के लिए उन्होंने दाढ़ी-मूँछें रख ली हैं। मूँछें घनी हैं। दाढ़ी हल्की तथा छितरी-छितरी। इस तरह उनका व्यक्तित्व कुछ ऐसा बन गया है जो मात्र अपने चुस्त चूतियापे की वजह से कहीं भी सबका ध्यान अपनी ओर खींच ही लेता है।

अपोली नौजवानी का सार बुजुर्गों से असहमत होने तथा उन्हें सटक मूर्ख मानने में समझते हैं। वैसे, बाप होने के कारण पंडिज्जी से एक सीमा तक ही असहमत हुआ जा सकता है।

फिर बाप भी पंडिज्जी हैं जो स्वयं भी समस्त नौजवानों को नासमझ मानते हैं। अपोली को तो वे नासमझ के अलावा चूतिया भी समझते हैं। इस तरह दोनों जन सहमत हैं कि दूसरा शब्द मूर्ख है। दोनों जन इस सहमति और तमाम असहमतियों के साथ जीना सीख चुके हैं। नित्य ही बात-बात पर उनके बीच बहस होती रहती है जिसमें बाप होने के कारण अन्ततः पंडिज्जी को विजेता मान लिया जाता है। वैसे पंडिज्जी औरों के भी बाप जैसे हैं। वे स्वयं को कोटरा का बाप भी मानते हैं।

अपोली के अलावा पंडिज्जी के दो और छोटे पुत्र भी हैं। वे अभी छोटे हैं। दस तथा चौदह वर्ष के। कम उम्र के हैं ज़रूर परन्तु इतने समझदार और सतर्क तो फिर भी हैं कि इसके चलते स्कूली शिक्षा उनका बाल भी बाँका नहीं कर सकी है। पंडिज्जी की एक बेटी भी है। नाम है लक्ष्मी। इंटर में पढ़ती है। तीनों भाइयों और पिता की पैनी निगाहें हरदम ही उस पर रहती हैं। परिवार में एक किस्म का संयुक्त निगरानी अभियान-सा चलता रहता है कि लड़की बहक न जाए। लड़की के चरित्र की रक्षा के लिए पूरा परिवार कटिबद्ध है। इधर अपोली इस चिन्ता में भी दुबले हो रहे हैं कि गाँव की अन्य लड़कियाँ चरित्रहीन क्यों नहीं हैं, और जो हैं भी, उनकी चरित्रहीनता का कारण वे खुद क्यों नहीं हैं?

पंडिताइन भी अपनी तरह से ही चिन्तित रहती हैं। घर के लड़के उनकी आँखों देखे बिगड़ रहे हैं पर वे इस बात से विशेष चिन्तित नहीं हैं। लड़के हैं तो लड़कों वाला काम करेंगे ही-वे मानती हैं। चिन्ता तो बेटी की है, सो उनकी भी एक आँख बेटी पर बनी रहती है। वैसे लक्ष्मी कुछ ऐसा करती भी नहीं जो उसके चरित्र या परिवार को परेशानी में डाले। वे तो बस पढ़ती है। खूब पढ़ाकू-सी लड़की है। ऐसे वातावरण में भी वे पढ़ाकू क्यों है, पता नहीं। कीचड़ में कमल है शायद।

किस्सा सुबह दस बजे का है।

पंडिज्जी बाहर जाने को तैयार होकर मोटरसाइकिल की चाबी तलाशते हुए अपोली के पास पहुँचे थे। अपोली अभी-अभी सोकर उठे हैं। बुलंद आवाज़ में कुल्ला कर रहे थे अपोली। उन्होंने मुँह पर पानी के छींटे मारे ही थे कि पंडिज्जी ने मोटरसाइकिल की चाबी के बारे में दरियाफ़्त किया।

अपोली ने गीला मुँह ऊपर को उठाकर पंडिज्जी को ध्यान से देखा। दाढ़ी-मुँह के बालों से झरता हुआ पानी पंडिज्जी के पैरों पर उचटा तो वे पीछे को हट गए।

"क्यों?" अपोली ने पूछा।

सुबह के दस बज रहे हैं। बाहर बेमौसम की बारिश हो रही है। एकाध बार बादल भी गरजे हैं। छत की मोरी से निकलती पानी की धार घर के अहाते में गिर रही है। बादलों के कारण कमरे में अँधेरा-सा मचा है। अपोली ने गीली दाढ़ी को हथेली से पोछते हुए बाहर के मौसम का जायजा लेने के लिए खिड़की से बाहर झाँका। at Hooth

"क्यों का क्या मतलब?" पंडिज्जी ने कहा।

"अरे, जहाँ भी जा रहे हों, जीप लेकर जाइए न! बाहर इत्ता पानी बरस रहा है।"

"कित्ता बरस रहा है? सब बन्द हो जाएगा अभी..."

"...अच्छा! कैसे? कैसे बन्द हो जाएगा?"

"हो जाएगा..."

"...आप आसमान पर चढ़कर टोटी बन्द कर दोगे?"

"यार, हमें पता है। तुम तो हमें मोटरसाइकिल की चाबी दे दो, बस। चाबी कहाँ है?"

"वहीं धरी होगी।"

"वहीं, कहाँ?"

"अरे वहीं, जहाँ धरते हैं।"

"वहाँ नहीं है।"

"तो जरा बिन्नु से पूछ लो न।"

"बिन्नु चलाती है मोटरसाइकिल?"

"न चलाती हो पर चाबी ज़रूर बता देगी। पूछ तो लें।

... वैसे, कहाँ जा रहे हैं आप? पेशी पर?"

"मान लो कि पेशी पर ही जा रहे हों, तो?"

"खूब जाइए। जज्जी में जाकर खूब 'पेशी-पेशी' खेलिए। पर आप कब तक ऐसेई पेशी पर जाते रहेंगे?"

"क्या मतलब?"

"मतलब यह कि आपको ऐसा क्यों लगता है कि अदालत से आपका काम हो जाएगा?"

"सबका होता है, हमारा भी ..."

"... हमने तो कभी किसी का होते देखा नहीं?"

"पर हमने देखा है। होता है। हमारा भी होगा।"

"फिर तो जरूर जाते रहिए। पर जब वहाँ जा-जाकर हार जाएँ तो एक बार हमें जरूर बताइएगा।"

"आप कहीं के सुप्रीम कोर्ट हैं?"

"वही समझ लें। तमंचे वाला सुप्रीम कोर्ट हम हरदम अपनी जेब में रखते हैं।"

"तुम मूर्ख हो।"

"आप तो होशियार हैं न? घर में एक ही होशियार काफी है।"

पंडिज्जी घूरकर देखते रहे अपोली को।

"वैसे, हमें यह तो बता दें कि आज कौन-से केस में जाना हो रहा है आपका?" अपोली ने पूछा।

"वोई, सतभइयों वाला केस है।"

"वो लोग ऐसे हरामी हैं कि अदालत से आपके फेवर में आर्डर निकल भी जाए तो भी वे आपको अपने खेत पे कब्जा न करने देंगे।"

"तो उसके खिलाफ भी तो कानूनी रास्ते होते हैं।"

"असल में कानूनी रास्ते का चस्का लग गया है आपको।" कहकर चुप हो गए अपोली।

पंडिज्जी अपने कागज-पत्र सँभालते रहे। अपोली बाप को घूरते रहे। बोले कुछ नहीं। अब, ऐसे बाप को कहा भी क्या जाए? फिर इसी बीच पंडिज्जी वहाँ से चल भी दिये। गीला मुँह पोंछते हुए अपोली उनके पीछे-पीछे आए। अपोली नई पीढ़ी के हैं। बाप को एकदम उल्लू का पट्टा न भी मानें तो भी यह तो मानते ही हैं कि पिताजी को आजकल के जमाने की कोई समझ नहीं है। जमाना हरामी हो चुका है और इनको इस बात की खबर ही नहीं। श्रीमान जमाने के हरामीपने का जवाब कानून से देना चाहते हैं, बताइए!

"आप आज अपनी अदालत से एक बात जरूर पूछना..." अपोली ने पिता से हँसकर कहा जिन्हें अब तक चाबी मिल गई थी।

"बताइए, क्या पूछें?" पंडिज्जी के स्वर में तल्खी है।

"कि जब हमारे कागज इसे हमारी जमीन बताते ताते हैं तो फिर उन्हें फैसला देने में क्या हर्ज है?"

"तुम न समझोगे..."

"...आप बताओगे तो क्यों न समझेंगे?"

"कानूनी मामला है। बड़े दाँव-पेच हैं।"

"काहे के दाँव-पेच? पहलवानी चल रही है क्या?"

"वही समझो..." पहलवानी चल रही

"...तो सामने वाले की लंगोट में हाथ डालकर खींच दो न।"

"अदालत के अखाड़े में लंगोट का कोई रिवाज नहीं होता है भैया। वहाँ तो सबको नंगे होकर ही लड़ना पड़ता है। दस्तावेजों की आड़ रहती है, बस।"

"हद है।"

"कानूनी लड़ाई है भाई।"

"ऐसे जटिल मामलों में आपके कागज पत्र भला क्या कर लेंगे?"

"तो कौन करेगा?"

"जूता करेगा। जूते मारिए, फिर देखिए।"

"जूते खाते जिन्दगी गुजरी है सतभैयों की।"

"तभी तो। जूतों की ही भाषा समझेंगे बे।"

"अरे, इसे कोई मजाक समझे हो क्या? ये लोग नेताजी के खास आदमी हैं।"

"और तुमाई नेतागिरी?"

"कानूनी विवाद न तो नेतागिरी से सुलझते हैं, न जूतों से।"

"तमंचे से तो सुलझेंगे न?"

"तुम चलाओगे तमंचा?"

"जेई तो अच्छा है कि खुद नहीं चलाना पड़ता। आपकी तरफ से कोई भी तमंचा चला सकता है।"

"तमंचा चलाने का मतलब भी समझते हो?"

"क्यों न समझेंगे? हमें ऐसा चूतिया समझा हुआ है क्या?"

"बस, तो फिर जे चूतियाई करबे की तुम कभी सोचना भी मती। तमंचे के खेल में सतभइयों से न जीत पाओगे। दो-दो मर्डर केस चल चुके हैं उन पर।"

इधर पानी बरसना बन्द हो गया है। बाहर बादल छितरा गए हैं। धूप निकल रही है। पंडिज्जी मोटरसाइकिल को बरामदे से धकाकर बाहर ले आए हैं।

"लाइए। हमें दीजिए।" अपोली ने कपड़ा पंडिज्जी के हाथ से लेकर मोटरसाइकिल साफ करनी शुरू कर दी। पंडिज्जी ने कहा "यार, छोड़ो। हो गई भीत साफ।"

"कर लेने दें। आप कोटरा के बड़े आदमी हैं। दो-दो स्कूल चला रहे हैं। सवर्णों के नेता हैं। आपकी मोटरसाइकिल चमाचम रहनी चाहिए।" अपोली मुस्कुराते हुए मोटरसाइकिल साफ करते रहे।

कुछ देर तक चुप्पी कायम रही।

पंडिजी खड़े-खड़े प्रतीक्षा करते रहे। गली से गुज़रते कुछ लोगों की नमस्कार का जवाब भी उन्होंने दिया।

"कहाँ?" लोगों ने पूछा भी।

"पेशी पे जा रये हैं।" बताया गया।

अब वे मोटरसाइकिल पर सवार थे।

"पूरी दुनिया को जे सब क्यों बता रहे हो आप?" अपोली ने पूछा।

"क्या?"

"कि पेशी पे जा रहे हो?"

"क्यों? इसमें छुपाबे का क्या है?"

"ऐसे में लोग आपको अक्षम समझने लगते हैं। सोचते हैं कि खुद अपनी जमीन से तो कब्जा हटाबे की दम नहीं है इनमें।"

"कैसे?"

"वो ऐसे कि जब खुदई बुजदिलों टाइप जज्जी का चक्कर लगा रहे हैं तो..."

"... फिर तुम्हें कोटरा का कुछ पता नहीं है।"

"कैसे?"

"इससे यहाँ आदमी की इज्जत बढ़ती है। जिते मुकदमे, उता बड़ा आदमी।"

"इज्जत तो तमंचे से भी बढ़ती है।"

"अच्छा!"

"बिलकुल।"

"कैसे?"

"पहले आप अदालत का चक्कर छोड़कर तो देखें।"

"अच्छा!... फिर हम क्या करें?"

"हमें बताएँ न।"

"तुम क्या करोगे?"

"जाकर कनपटी पर तमंचा धर देंगे तो आप जहाँ बोलोगे, वहीं पर दस्तखत करेगा आदमी।"

“मान लो, वो तब भी दस्तखत करने से मना कर दे, फिर? गोली मार दोगे?”

"तब की तब देखेंगे।"

पंडिज्जी गुस्से से अपोली को घूरने लगे। घूरते ही रहे।

"आप इत्ता डरते क्यों हैं?"

"डर कौन रहा है?"

"फिर हमने तमंचे का नाम लिया तो आप ऐसे बमके क्यों?"

"हम बमके? तमंचा तो हम भी रखते हैं। तुम पता है न?"

"वो, आपका वो तमंचा? यार, आप उसे कभी किसी को दिखा न देना।"

"क्यों?"

"आदमी हँसने लगेगा। वह तमंचा नहीं, मजाक है।"

"अच्छा! नल्लू लुहार का बनाया हुआ तमंचा है हमारा।"

"आप जिसे तमंचा मानते हो, दुनिया उसे लोहे का टुकड़ा मानती है। नल्लू के तमंचे से कभी एक निशाना भी ठीक से नहीं लग सकता; राम पे फ़ैर करोगे, श्याम को गोली लगेगी।"

"जो हो, पर हम तो कह रहे हैं कि तमंचे से काम नहीं सुलझ सकते।"

"सुलझाओ तो सुलझ भी सकते हैं।"

"तो अब तुम फौजदारी मुकदमा भी चाहते हो, क्यों? अरे, जब दीवानी मुकदमे से काम चल रहा हो तो फिर उँगली काहे को टेढ़ी की जाए?"

"तुम इत्ते साल से वहाँ सीधी उँगली डाल के बैठे तो हो, क्या मिल गया? इधर तुम उँगली कर रहे हो, उधर कानून तुम्हें उँगली कर रहा है; दोनों को इसमें ही मजा आ रहा है, बस।"

"अभद्र भाषा न बोलो अपोली।"

"सच, अभद्र हो तो फिर अभद्र ही बोलना पड़ेगा न?"

"तो इत्ता सच भी न बोलो। अभी तो जाकर ठीक से मूँ-हाथ धो लो। हम कालपी जा रहे हैं। शाम तक लौटेंगे। इधर तुम सब देखते रहना।"

"चिन्ता न करो। आराम से जाओ। जज साहब से हमारा नमस्कार जरूर बोल देना। कहना, अपोली आपको याद कर रहे थे।"

कहकर अपोली हँसने लगे।

पंडिज्जी भी हँसकर मोटरसाइकिल स्टार्ट करने को हुए कि अपोली ने पूछा, "कॉलेज में आज के लिए कुछ हो तो वो जरूर बताते जाओ वर्ना बाद में कहने लगोगे कि जे काहे नहीं किया, वो क्यों नहीं किया?"

"बस भैया, वहाँ तुम चले जरूर जाना। टाइम पर।"

"कॉलेज के मैनेजर हैं हम; चेयरमैन साहब पेशी पर जाएँगे तो मनीजर तो कॉलेज पहुँचेगा ही न? चिन्ता न करो।"

"और वहाँ किसी भी कागज पर हमसे पूछे बिना दस्तखत-फस्तखत न करना।"

"ठीक है। नहीं करेंगे। और कुछ?"

"और इस नन्हे मास्टर पर थोड़ी निगरानी रखो। ससाला, यहाँ-वहाँ कहता फिरता है कि अपने कॉलेज में खुलेआम नकल होती है।"

अपौली कुछ पलों के लिए चिन्ता में पड़ गए। "आप इस नन्हे मास्टर को ठीक क्यों नहीं करते?" "उनके खिलाफ एक जाँच बिठाने का इंतजाम कर तो रहे हैं हम।"

"उससे क्या हो जाएगा?"

"नन्हे मास्टर के खिलाफ शिकायत करवाएँगे। जाँच बैठेगी। उसे दोषी साबित करेंगे; किसी बात का भी दोषी, क्लास में ठीक से पढ़ाते नहीं, इनका डिसिप्लिन ठीक नहीं, स्कूल में सिगरेट पीते हैं, एकाध महिला अध्यापक से भी शिकायत करा देंगे कि नन्हे का चरित्र ठीक नहीं।" "फिर?" ba Nove e any dunath leum

"चेतावनी देंगे। दो इन्क्रीमेंट रोक लेंगे ससाले के।"

"इत्ते भर से सुधर जाएँगे बे?"

"कानूनी तौर पर तो हम जेई सब कर सकते हैं। फाँसी पे तो चढ़ा नहीं सकते न?"

"क्यों नहीं चढ़ा सकते?"

"क्योंकि हमारे बाप का राज नहीं चल रहा।"

"पर हमारे बाप का तो चल रहा है। कॉलेज तो आपका ही है न?"

"हमारा है, तो? हर चीज में कुछ नियम, कायदा, कानून भी तो देखना पड़ता है भाई।"

"आप कानून से इत्ता घबराते क्यों हो?"

"घबराते नहीं, पर..."

"... कहें तो हम कल ही इस नन्हे मास्टर को ठुकवा दें किसी से?"

"ठुकवाने से क्या हो जाएगा? बताओ?"

"ठुकवाने से क्या होता है, अब यह भी बताना पड़ेगा

आपको? उनकी अक्कल ठिकाने आ जाएगी, बस।"

"हो तो यार तुम मुश्किल से चार पसली के, पर बातें ऐसी करते हो मानो कहीं के गामा पहलवान हो!"

"ऐसे काम के लिए हिम्मत चाहिए, पहलवानी नहीं।" "तुम चूतिया हो।" कहकर पंडितजी ने अन्ततः मोटरसाइकिल स्टार्ट करके गाड़ी को गियर में डाला तो अपोली गाड़ी के सामने आकर खड़े हो गए।

"जो हैं सो आपके ही पैदा किए हुए हैं।" अपोली ने कहा। पंडिज्जी ने ज़ोर-ज़ोर से एक्सेलटर बढ़ाकर क्लच दबाया। इंजन की तेज़ आवाज़ हुई। गुस्सा प्रकट करने का यह भी एक तरीका था।

"जेई तो और खराब बात है कि हो; किसे दोष दें?" कि तुम हमारे पैदा किए हुए

अपोली हँसने लगे।

"अब पचीस साल पहले की अपनी गलती पे न रोया जाए। आप जाओ। अदालत-अदालत का खेल अच्छे से खेल के आना। इधर कॉलेज का सब हम देख लेंगे।"

अपोली रास्ते से हट गए। पंडिज्जी घूरकर उन्हें देखते रहे।

"जाइए, जाइए, पेशी का मजा लेकर आइए।"

"हमें इसमें मजा आ रहा है, क्यों?"

"कोटरा में मुकदमा लड़े बिना कइयों की टट्टी नहीं उतरती है।"

"हमारी तो ईसपगोल लेने से बढ़िया उतर जाती है।"

"अदालत भी कइयों के लिए ईसपगोल जैसी ही है। जाइए, जाइए।"

अपोली हँसे तो पंडिज्जी भी हँस पड़े। मोटरसाइकिल बढ़ा दी पंडिज्जी ने।

कितने ऊपर जाओगे?

कालपी तहसील की इमारत।

इमारत का अहाता बहुत बड़ा है।

इसी अहाते में अभी एक बौखलाया-सा अधेड़ व्यक्ति घूम रहा है। उसे तहसील से अपनी ज़मीन की खसरा खतौनी की नकल लेनी है। यह नकल यहीं तहसील में ही कहीं मिलती है। इतने विराट से अहाते के किस कोने में यह कागज मिलेगा, उसे पता नहीं चल पा रहा। वह सबसे पूछता फिर रहा है। किसी ने कुछ बताया, किसी ने कुछ भी नहीं बताया। किसी ने कहा कि भैया, हम तो खुद ही एक घंटे से गोयलजी का कमरा खोज रहे हैं। और किसी ने इतने विस्तार से बताया कि उसके सहारे किसी खज़ाने की तलाश करने निकला नायक भी भटक जाता। वह तो कोई नायक भी नहीं। वह तो दुनिया के मंच का ऐसा एक्स्ट्रा कलाकार है जिसका हर भुगतान ज़िंदगी ने रोक रखा है।

कालपी तहसील की यह इमारत बहुत पुरानी है।

पुरानी है पर इसका इकबाल बुलंद है। अहाते के बीचोबीच खूब बड़ी-सी इमारत बनी है। ऊँची छत। लम्बे बरामदे। इमारत से लगे, बेतरतीब से कमरे। बाद में आवश्यकतानुसार जोड़ दी गई संरचनाएँ भी। इन कमरों तक पहुँचाने वाले लम्बे घुमावदार गलियारे। फिर, यहाँ-वहाँ अचानक ही बीचोबीच आकर खड़े हो गए एल्युमिनियम के पार्टिशन से तैयार सँकरे केबिन भी। बरामदे में ही मेज-कुर्सी लगाकर बिराजे कर्मचारी भी हैं। एक तिलिस्म है यह इमारत; भटकते रहो। तिलिस्म अनेक हैं: मुख्य इमारत में कौन कहाँ बैठता है? इस समय वह कहाँ बैठा होगा? वहाँ तक कैसे पहुँचा जा सकता है? उस कमरे का गलियारा कहाँ से निकलता है जहाँ वह आदमी मिलेगा जिसे इस कागज पर सील लगानी है? यह बरामदा जो मुड़कर अचानक एक बन्द दरवाजे पर खत्म हो गया है, यह कब बन्द हो गया जबकि कल तक तो यह खुला हुआ था?... यह सब बताना गूगल के लिए भी कठिन है। मानो भूगोल का कोई नक्शा, मोड़-माड़कर, मुड़ा-मुड़ाया ही धरती पर छोड़ दिया गया हो, और उसी गुड़े-मुड़े नक्शे से होकर तहसील का कारोबार चल रहा हो, कुछ ऐसा वातावरण है।

अहाते में जगह-जगह वकीलों के ठीये बने हुए हैं। ठीये का तात्पर्य? ... एक छोटी-सी मेज, पुराना टाइपराइटर, वकील साहब की कुर्सी, मुंशीजी की तिपाही और सामने रखी एक दो हिलती-डोलती कुर्सियाँ। या फिर नीचे ज़मीन पर बिछी दरी मात्र। या फिर वह भी नहीं। बस, ज़मीन पर बेतरतीब उगी, सूखती-पनपती घास पर ही बैठे, लेटे, ऊँघते, बतियाते, हँसते, चिन्ता में डूबे, तंबाकू चबाते या सूखा मूँ लेकर तहसील की इमारत को दूर से ताकते हुए मुवक्किलनुमा ग्रामीण-जन।

वह अधेड़ इन्हीं ठीयों के आस-पास घूम रहा है अभी।

अब किससे पूछा जाए?

अन्ततः, उसने एक वकील के मुंशी से पूछने की हिम्मत जुटा ही ली। मुंशीजी अभी फुर्सत में दिख रहे थे। उनके वकील साहब किसी की अंतिम क्रिया में मरघट गए हुए हैं। एक-दो मुवक्किल पूछताछ करके वापस भी जा चुके। मुंशीजी आज फालतू बैठे हैं।

"नमस्कार महाराज।"

"नमस्कार। ... बोलो? वकील साहब तो देर से आएँगे।

मुर्दा फूंकने गए हैं।"

"नहीं मालिक। आपसे ही काम है।"

"हमसे?... बोलो?"

"हम सुबे से खतौनी की नकल के लाने घूम रहे हैं।"

"घूमने से मिलेगी क्या?"

"वोई तो। हमें पता ही नहीं चल रहा कि खतौनी की नकल कितें मिलेगी?"

"नकल क्यों चड़े?"

"बिस्मिलजी ने मँगाई है।"

"कौन बिस्मिलजी?"

"कोटरा के हैं। अखबारों में लिखते हैं।"

"उन्हें क्यों चढ़ाए?"

"नहीं, चढ़ाए तो हमें है।"

"यार, अभी तो तुम बिस्मिलजी का नाम ले रहे थे?"

"चढ़ाए तो हमें है, पर मँगा बे रये हैं।"

"बे क्यों मँगा रये?"

"इससे बे हमारा किसान क्रेडिट कार्ड बनवा देंगे।"

"बे अखबार में लिखते हैं कि किसान कार्ड बनवाते हैं?"

"बे दोनों काम करते हैं।"

"उनने इस काम के कितने नोट माँगे हैं तुमसे?"

"अभी तो कुछ नई माँगे।"

"तो याद रखना, तुमसे पूछा जाएगा।"

कार्ड बन जा "अब जो माँगेंगे, देंगे। हमें तो बस जे कार्ड बन जाए तो बैंक से लोन मिल जेहे।"

"तो तुमको बैंक से कर्जा काढ़ने के लिए किसान-कार्ड चढ़ाए और किसान-कार्ड के लिए जमीन के खसरा-खतौनी की नकल चढ़ाए। ...क्यों?"

"एकदम ठीक समझ गए आप।"

"और बैंक मनीजर कितने नोट माँग रहा है?"

दोपहर के बारह बजे हैं। तहसील की महिफल जवान है। यहाँ से वहाँ तक लोगों की भारी भीड़ मची है। खुला अहाता, बरामदे, कमरे, वकीलों के ठीये, अहाते में बने चाय के खोखे, सब जगह लोग ही लोग हैं। सामने ही तहसीलदार साहब के इजलास की जगह है। वे तनिक ऊँचे चबूतरेनुमा रचना पर धरी ऊँची कुर्सी पर बैठते हैं। सत्ता प्रदर्शित करने का यह भी एक तरीका है। चबूतरे से नीचे के लेवल पर तीन लोग कुर्सी-मेज लगाए बैठे हुए हैं। इजलास के बगल में लगे कमरों में दफ्तरों की केतार-सी बनी है। कानूनगो। क्लर्क। कागज। फाइलें। सीलन भरी दीवारें। चिक। पुरानी कुर्सियाँ। लाल, पीले, सफेद कपड़ों में सदियों से बँधे पड़े कागजों के बंडल, एक के ऊपर एक धरे हुए। न जाने, किन-किनकी किस्मत यहाँ धूल खा रही है।

सीमेंट का फर्श है, वह भी यहाँ-वहाँ से उखड़ा हुआ।

अब इसी इजलास के बाहर का बरामदा पकड़ लें और पकड़े-पकड़े चलते ही चले जाएँ तो बाईं तरफ आगे जाकर इसमें अचानक ही एक पतला सा गलियारा खुलता है। यहाँ अंधकार है। किसी ने, अंधकार का फ़ायदा उठाकर यहाँ पेशाब भी कर दी है। देखा-देखी और लोगों ने भी यहीं पर खुलकर पेशाब कर दी है। अंधेरा है। पेशाब के चहबच्चे हैं। उखड़ी सीमेंट के बने गड्ढे हैं। इन सबसे बचते-बचाते हुए आगे चलें तो आप मुख्य इमारत के ठीक पीछे पहुँच जाते हैं।

और यहीं वह कमरा है जिसको वह अधेड़ शख्स बाहर के अहाते में खोजता फिर रहा है।

इसकी खिड़की पर, बड़े और मोटे अक्षरों में हाथ से लिखा हुआ एक कागज चिपका है, 'खतौनी'। खतौनी की इस खिड़की पर अभी लोगों की लम्बी लाइन लगी हुई है। यदि आपको भी अपनी ज़मीन की खसरा खतौनी की नकल चाहिए तो आइए, इस लाइन में लग जाइए। फिर जब आपका नम्बर आएगा तो इस खिड़की से सटकर अन्दर बैठे उस क्लर्क को आपको अपनी पर्ची पकड़ानी होगी। ज़मीन किसके नाम है, गाँव का नाम क्या है तथा खसरे का नम्बर क्या है- यह सब एक पर्ची पर लिखकर हाथ में लिए रहो। नम्बर आने पर पर्ची क्लर्क को पकड़ा दो। वह अपने कम्प्यूटर पर आपकी दी गई सूचनाएँ दर्ज करेगा। आपसे एकाध प्रश्न पूछेगा। फिर चाही गई खतौनी का कम्प्यूटर प्रिंट आउट निकालकर आपको दे देगा। सब कुछ कित्ता सरल ! है ना?

पर बात क्या इतनी ही सरल है? बात इतनी ही सरल होती तो फिर क्या बात थी! नहीं मित्र, वास्तव में तो मामला बड़ा पेचीदा है, और बड़ा सरल भी। समझदारों के लिए यह बहुत सरल है, और मूर्खों के लिए बेहद पेचीदा (यहाँ मूर्खों में ईमानदारों को भी शामिल मान लें)। कैसे? हम बताते हैं :

खिड़की पर ही खतौनी की नकल की फीस भी लिखी है : पन्द्रह रुपए।

लिखा जो भी हो, बाबू पच्चीस रुपए ही लेता है। सब लोग देते भी हैं। कोई बहस नहीं करता कि बाहर पन्द्रह लिखा है तो पच्चीस किस बात के? सब चुपचाप दे देते हैं। न तो पच्चीस रुपए देने वाले के चेहरे पर शिकन आती है, न लेते हुए बाबू के चेहरे पर। जो भी कुर्सी पर बैठा है वह तो अपना हिस्सा लेगा ही-ऐसा मान लिया है सबने। आदमी हज्जत नहीं करता। खुद ही सीधे पच्चीस दे देता है, बाबू को माँगने नहीं पड़ते। इलाके की जनता समझदार है। फिर भी कोई नासमझ, कभी गलती से मात्र पन्द्रह रुपए की निर्धारित फीस ही पकड़ाने की कोशिश करे तो बाबू उसके आवेदन में पचास गलतियाँ निकाल देता है। बताता है कि पर्ची में दर्ज नाम गलत है, और तुम नम्बर तो इत्ता बड़ा बता रहे हो जो होता ही नहीं, और इस नाम का इलाका तो यहाँ दर्ज ही नहीं है। ऐसे मूर्ख को वह उल्टे पाँव वापस भगा देता है। कहता है कि यहाँ सरकारी कागज की नकल माँगने आए हो कि परचून की पुड़िया लेने? सब कुछ ठीक-ठीक लिख के लाओ, तब वापस आकर हमसे बात करना। कभी वह जोर से फटकार भी देता है कि फीस पूरी दी जाए। पन्द्रह की जगह पच्चीस माँगने में भी वह गुरेज नहीं करता।

ऐसे ही किसी को उसने अभी-अभी दुत्कारा है।

वह शर्रस कागज के साथ मात्र पन्द्रह रुपए ही दे रहा था।

पाँच-पाँच के मात्र तीन नोट।

ऐसा अनर्थ !

"जे सब क्या है भाई साब? जे आप क्या पकड़ा रहे हो?"

"जे? फीस है।"

"जे फीस है? किती दे रहे हो?"

"पन्द्रह दिये हैं। बाहर जिती लिखी है, उती दे रहे हैं।"

"दस और निकालो। ... और जरा जल्दी करो। तुम्हारे पीछे भीड़ खड़ी है। खुद देख रहे हो न?"

"पर खिड़की पर तो पन्द्रह रुपए ही लिखा है?"

"लिखे पे मत जाइए। हिंदुस्तान में लिखा तो कुछ भी रहता है। लिखे को कौन मानता है? तुम मानते हो? दीवार पे लिखा रहता है कि यहाँ न मूतो, पर तुम वहीं मूतते हो कि नहीं?... यार, दस और निकालो। फटाफट। जल्दी करो।"

"आपने ही तो अपनी खिड़की पर फीस का कागज चिपका रखा है?"

"यार, हमने कहा न? चिपके कागज पर बिलकुल न जाना। पूरी तहसील में एक बार घूम के देख लो। सारी बिल्डिंग में इत्ते कागज चिपके हैं कि बिल्डिंग इन्हीं के सहारे खड़ी है। अभी उखाड़ दें तो बिल्डिंग गिर जाएगी। ... यार, तुम फालतू में टाइम खराब न करो। पच्चीस निकालो।"

"हम तो उत्ता ही देंगे जित्ता आफिशियली लिखा है।"

"आप कित्ता देंगे श्रीमान?"

"बाहर तहसील के बोर्ड पर भी पन्द्रह ही लिखा है।"

"यार, बोर्ड पे न जाओ। कील गाड़कर वे कुछ भी लटका देंगे तो तुम मान जाओगे क्या?"

"तो क्या यहाँ जित्ते बोर्ड लटके हैं वे सब ऐसेई हैं?"

"जे हमने तो लटकाए नहीं हैं; जिनने लटकाए हैं, उनसे जाकर पूछो।"

अब तक पीछे लाइन में प्रतीक्षारत लोग बेचैन होने लगे हैं।

पीछे से कोई बोला, "यार, आप इन्हें और दस रुपए दे दें न, दे क्यों नहीं देते?"

"क्यों दे दे दें?"

"क्यों? क्या तबसे यह देख नहीं रहे हैं आप? सब दे रहे हैं।"

"सफ-सफ पंद्रह लिखा है, फिर पच्चीस काहे के?"

बहस चल पड़ी। अन्दर बैठा क्लर्क खिड़की से सब सुनता रहा।

"साफ-साफ लिखा हुआ तो तुम्हें दिख गया, और जो हम साफ-साफ कह रहे हैं वो तुम्हें सुनाई नहीं दे रहा?"

"ठीक है। हमने सुन लिया, और हम आपको पच्चीस ही देते हैं। फिर हमें पच्चीस की रसीद भी दीजिएगा।"

"तो अब, तुम हमें बतलाओगे कि हमें इस कुर्सी पर बैठकर कैसे क्या करना है?"

"क्यों? पच्चीस लोगे तो उत्ते की रसीद भी दोगे कि नहीं?"

"रसीद तो पन्द्रह की ही मिलेगी जो सरकारी रेट है। रेट बाहर लिखा है। देख लें। उत्ते की ही रसीद भी माँगिए।"

"अभी, हम भी तो आपसे यही कह रहे थे। रेट पन्द्रह का लिखा हुआ है। अभी तो, तब तो आप मान नहीं रहे थे?"

"यार, तुम बहस बहुत करते हो; मतलब की बात समझते ही नहीं।"

पीछे, पंक्ति में बेचैनी बढ़ गई है।

"यार, इन्हें आप पच्चीस रुपए दे दें न। आपकी जेब में न हो तो हमसे दस ले लें। फालतू में ही सबका सारा काम रुकवा के आप वहाँ खिड़की रोके खड़े हैं।"

उसने पीछे पलटकर देखा।

"कौन है भाई जो अपनी जेब से दस रुपए देने की बात कर रहा है?"

"बोलिए?"

"लखपति हो क्या?"

"क्यों?"

"ऐसे हाथ खोल के रकम बाँट रहे हो?"

"बात लखपति, करोड़पति होने की नहीं है। समझिए जरा। यहाँ सबका टाइम खराब हो रहा है, और आप फालतू की बहसबाजी में लगे हैं।"

"तो?"

"सब लोग आपके कारण लेट हो रहे हैं।"

"बड़ी जल्दी में लग रहे हो?"

"जल्दी तो सबको है। आप पैसे देते हो तो दो वरना खिड़की से हटो।"

"दे तो रहे हैं...।"

"...बे जित्ता माँग रहे है, उक्ता दो न?"

"उक्ता क्यों दें? जित्ता बनता है, उक्ता ही देंगे न।"

"यार, जरा अपने पीछे भी देख लो। किन्ती लम्बी लाइन लगी है।"

"तो? यही बात आप इनसे क्यों नहीं कहते?"

"मिस्टर, आप जरा खिड़की तो छोड़िए।" तभी क्लर्क ने अन्दर से आदेश देते हुए कहा।

"क्यों छोड़ें?"

"तो खड़े रहिए।"

"खड़े हैं।"

"अजीब जिद्दी आदमी हैं आप?"

"जिद तो आपकी है। पन्द्रह का रेट है, पच्चीस की जिद कर रहे हैं?"

"रेट आप तय करेंगे?"

"तो आप करेंगे?"

"कुर्सी पर कौन बैठा है, बताइए?... बताइए न? जो आदमी कुर्सी पर बैठा है वही तो तय करेगा न?"

"कुर्सी पर बैठने का मतलब यह तो नहीं कि आप..."

"... कुर्सी पर बैठने का यही मतलब होता है यार। यही मतलब होता है।"

"भाई साहब, रेट आप तय करेंगे या सरकार?"

"तो फिर सरकार के पास जाओ न। यहीं, तहसील के सामने से लखनऊ की बस मिलती है। निकल जाओ। मंत्रीजी से पूछकर आओ न कि रेट क्या चल रहा है।"

दोनों एक-दूसरे को घूरते रहे। दोनों चुप होकर एक-दूसरे को मानो तौल रहे थे। पीछे बेचैन खड़ी पंक्ति अब टूटकर भीड़ में तब्दील हो गई थी और दोनों की बहस में आनन्द तक लेने लगी थी।

अन्ततः वे बोले, "हम इस बात की शिकायत ऊपर तक करेंगे।"

इस बात पर क्लर्क तो हँसने ही लगा, भीड़ के लोग भी हँस पड़े।

क्लर्क ने हँसकर पूछा, "तुम्हें फालतू का मजाक सूझ रहा है, है न?"

"हम सच में शिकायत करेंगे। जे मजाक नहीं है।"

"यह मज़ाक ही है भाईसाहब।"

"नहीं, यह मजाक नहीं है।"

"यदि तुम्हें इतना भी नहीं पता कि यह मजाक है तो फिर इससे बढ़कर और कोई मजाक हो ही नहीं सकता।"

"देखिए, हम मजाक नहीं कर रहे। हम जरूर शिकायत करेंगे।"

"शिकायत करने को तुम कोई मजाक समझे हो क्या?"

"नहीं, शिकायत को हम मजाक नहीं मान रहे, तभी तो करेंगे।"

"अच्छा? कहाँ करेंगे? जरा बताइए तो?"

"जहाँ होती होगी, वहाँ करेंगे।"

"और वहाँ किसी ने आपकी न सुनी तो?"

"तो हम और ऊपर जाकर करेंगे।"

"कितना ऊपर जाकर करेंगे?"

"जितने ऊपर तक हो सकती हो, करेंगे।"

"यार, तुम ज्यादा ऊपर न निकल जाना भैया।" सब ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगे।

"जब कर दूँगा न, तब तुमको पता चलेगा।"

"पर करोगे जरूर?... क्यों?"

"जरूर करेंगे।"

"तो बेटा, अब तुम यही करो। ठीक से हमारी शिकायत ही कर लो। जरूर करो। हम भी देखते हैं। और जब कोई भी तुम्हारी न सुने तो फिर पच्चीस रुपए ले के इसी खिड़की पर आ जाना। जे दस बजे सुबह से पांच बजे तक खुली रहती है।"

"क्यों न सुनेगा? अरे, कोई तो सुनेगा?"

"कितें बैठता है यार वो 'कोई'? वो मिले तो हमें भी बताना। हमें भी इस जमाने से बड़ी शिकायतें हैं।" कहकर क्लर्क हँसने लगा।

सब और भी जोर से हँसने लगे। वह बुरी तरह से खिसिया गया।

"आप लोग हँसते हो?" उसने पीछे पलटकर खड़ी भीड़ से कहा।

"तो क्या करें? यार, जब पच्चीस में ही काम होता है तो हमें पच्चीस ही तो देने पड़ेंगे न? बात खत्म।"

"क्यों देने पड़ेंगे?"

"क्योंकि जे माँग रहे हैं, इसीलिए।"

"तो क्या इनकी चलेगी?"

"फिर किसकी चलेगी? आप ही बताएँ? बताएँ न? कुर्सी पर जे बैठे हैं तो इनकी ही चलेगी न?"

"ये खुलेआम रिश्त ले रहे हैं और आप हैं कि..." वह बौखलाने लगा।

अब तक अन्दर बैठे क्लर्क के अहम में बैठी हुई सरकार जाग उठी। वह तुमत्तमाकर जोर से चिल्लाया, "अबे ओ गांधीजी की ओलाद ! तू खिड़की से हटता है कि हम हवलदार को बुलवाएँ?"

"न दूँ तो?"

"तो सरकारी काम में बाधा डालने के जुर्म में धक्के लगवाकर हटा देंगे।"

"रिश्त को तुम सरकारी काम बतलाते हो?"

"तू हट तो यहाँ से। चल, निकल । ... निकल ससाले।" क्लर्क कुर्सी पीछे को धकेलकर खड़ा हो गया। वह गुस्से से काँप रहा था। रिश्त को यूँ खुलेआम 'रिश्त' कहने पर उसका क्रोधित होना लाजिमी ही था।

बाहर खड़े लोग खिड़की से झाँककर क्लर्क को समझाने लगे, "देखिए भाईसाहब, गुस्सा न हों। यह शायद नया आदमी है। नातजुर्बेकार है। नौजवान होने के कारण कच्ची समझ का भी है। देखिए न, मात्र दस रुपए की रिश्त में ही कैसा बौखला गया है? आगे जाकर तो जीवन में इसका न मालूम क्या होगा? पर आप नाराज न हों। आराम से, शान्त बैठें। हम समझाते हैं न इसे? ... अच्छा, इनके दस रुपए आप हमसे ले लेना। अभी तो इनको इनकी नकल दे दें। ये हटें तो यहाँ से। रास्ता बने।"

क्लर्क ने घूरते हुए उसे देखा और कम्प्यूटर पर खटाखट सूचनाएँ भरकर खतौनी की नकल उसकी ओर बढ़ा दी। उसने पन्द्रह रुपए देकर नकल उठा ली। क्लर्क को घूरता हुआ वह नकल लेकर खिड़की से हट गया।

भीड़ पुनः व्यवस्थित होकर पंक्तिबद्ध होने लगी।

तभी यहाँ-वहाँ भटकता हुआ वह बौखलाया हुआ अधेड़ शख्स भी वहाँ आ पहुँचा जो न जाने कब से खतौनी की खिड़की तलाशता हुआ तहसील भर में घूम रहा था।

खतौनी वाली खिड़की पर लगी भीड़ के पीछे पहुँचकर रुक गया वह।

"खतौनी की नकल इतई मिल रही है साहब?" उसने पीछे वाले से पूछा।

"हओ। ...क्यों?"

"हमें भी चइए।"

"तो पीछे लग जाओ। इतें सबको जेई चइए।"

वह सबसे पीछे खड़ा हो गया।

तभी सामने वाले ने पलटकर उसे देखा और कहा, "पूरे पच्चीस रुपए निकाल के रखना। इस काम के पच्चीस लगेगे।"

"वो हमें पता है।" अधेड़ ने कहा।

"वाह यार! तुम्हें पता है और उनको इत्ती-सी बात पता नहीं थी। बताइए।" वह बोला।

"किनको महाराज?" उसने पूछा।

"अरे थे एक।" सामने वाला बोला।

पीछे वाले लोग हँसने लगे।

दो गज ज़मीन के अलावा फिर जो भी ज़मीन है...

कोटरा-कालपी सड़क ।

कभी यह एक पुरानी कच्ची-पक्की, गिट्टी-मुरम की रोड हुआ करती थी। सँकरी-सी 'आल-वेदर' रोड। सालों से कोटरा जाने का यही रास्ता था। परन्तु इधर कोटरा भी विकास के झाँसे में आ गया है। कालपी से मऊरानीपुर जाने का एक राजमार्ग कोटरा होकर बन रहा है। खूब चौड़ा। छह लेन का। बताया जाता है कि इसके बन जाने से, कानपुर से मऊरानीपुर जाने में चार घंटे का सफर कम हो जाएगा।

फिलहाल पुरानी 'आल-वेदर' रोड के बगल में यह बहुत चौड़ी रोड बन रही है। राजमार्ग। हाई वे। जो कह लें।

इस चक्कर में पुरानी सड़क खत्म-सी है और नई अभी बनी नहीं है। रेत, गिट्टी, डामर इत्यादि तमाम सामग्री सब तरफ पड़ी हुई है। मजदूर हैं। सड़क कूटने के इंजन हैं। कोलतार बिछाने की गाड़ी है। इतना सारा तामझाम फैला

हुआ है कि पुरानी सड़क से निकलना भी मुश्किल हो गया है। बनती सड़क के किनारे-किनारे कच्ची-सी संकरी पगड़ंडी बन गई है। साइकिल, मोटरसाइकिल और पैदल लोग इसी रास्ते से सँभलते-गिरते-फिसलते हुए कालपी पहुँचते हैं या कोटरा आते हैं। बनते राजमार्ग के दोनों तरफ खेत लगे हुए हैं। पंडिज्जी का खेत भी इसी निर्माणाधीन सड़क पर है। एकदम सड़क से लगा हुआ।

आजकल मटर उगी हुई है पंडिज्जी के खेत में।

पंडिज्जी कोटरा के बड़े किसान भी हैं। बटिया पर अपनी खेती दे देते हैं। भूमिहीन किसानों से अपने खेत पर मजदूरी कराते हैं। फसल आने पर एक चौथाई फसल मेहनताने के तौर पर उसे दे देते हैं। फसल खराब हो जाए तो फिर कुछ भी नहीं देते। कहते हैं, किस्मत का खेल है। मजदूर भी मान लेता है। मजदूर मानता है कि उसकी किस्मत पैदा होने के बाद से ही खराब चल रही है। वह फसल खराब हो जाने का बुरा नहीं मानता। किस्मत से बुरा मानकर कुछ होना नहीं है और पंडिज्जी से बुरा मानने की उसकी हिम्मत नहीं। बहरहाल।

इन दिनों, मटर के खेत की देखभाल करने के लिए पंडिज्जी ने वहाँ एक बूढ़ा रखा हुआ है। तीन माह तक, दिन-रात वह बूढ़ा वहीं रहने वाला है। उसकी बूढ़ी पत्नी घर से खेत तक खाना लेकर आती-जाती रहती है। घर मतलब उसकी अपनी कच्ची झोपड़ी। बूढ़े का बेटा और बहू छतरपुर में मजूरी करते हैं। उनके दो बच्चे दादा-दादी के साथ यहाँ कोटरा में रहते हैं। नातिन बड़ी है। आठ साल की। नाती, तीन का। बीच में दो और हुए थे, मर गए। ऐसेई, दस्त बुखार में। इसमें भी कोई मरता है भला? मरते हैं न। असल में मरते तो गरीबी से हैं। गरीबी भी तो एक बीमारी है न साहब ! गरीबी हो तो दस्त तो फिर एक बहाना बन जाता है। ... नातिन छोटी-सी है पर इतनी बड़ी मान ली गई है कि अपने छोटे भाई की देखभाल कर ले। वह कर भी लेती है। उसने भी खुद को बड़ा मान लिया है। बचपन में ही बूढ़ों जैसी समझदार हो गई है वह।

बूढ़ा रात में अकेला रह जाता है, यहाँ खेत पर। उसका खाना देकर लौट जाती है बुढ़िया। इन बच्चों के पास। झोपड़ी में। बूढ़े ने बल्ली, प्लास्टिक, बोरी और घासफूस से खेत की मेंड़ पर भी एक टपरा सा बना रखा है वो। वहीं लेटा रहता है। वहीं से खेत पर नज़र रखता है। रात में उठ-उठकर, चारों तरफ घूमकर पूरे खेत को देख लेता है। खेत में कहीं कोई ढोर न घुस आएँ, इसके लिए, खेत की सीमा पर, चारों तरफ लोहे के काँटेदार तार खींच दिए गए हैं। बगल के खेत में भी यही इंतज़ाम है। दोनों काँटेदार सीमाओं के बीच एक संकरी सी मेंड़ छूट गई है। उसी पर यह टपरा बना हुआ है।

चौकीदार के तौर पर यही उसका वाच टावर है।

दिन के दस-ग्यारह बजे के दरम्यान का वक्त हो रहा है। बुढ़िया आई हुई है। अभी वह टपरे में है। बूढ़ा टपरे से और भी आगे, बनती हुई सड़क के साथ लगी मेंड़ पर अधलेटा पड़ा हुआ है। सिर के नीचे पतली ठठरेनुमा लकड़ियों और घासफूस का तकिया लगाए है। ... किसी बादशाह की ठसक से लेटा, वह अभी बीड़ी पीता हुआ कुहनी के बल लेटा है।

कि तभी खेत से लगी सड़क पर एक मोटरसाइकिल आकर रुकी।

बूढ़ा उठ बैठा। पंडिज्जी की मोटरसाइकिल की आवाज़ को खूब पहिचानता है नत्थू।

पेशी पर जाते हुए वे रास्ते में खेत पर रुक गए हैं। तनिक पूछ लिया जाए नत्थू से कि खेत पर सब ठीक-ठाक है कि नहीं?

बूढ़े का नाम नत्थू है। वैसे, नाम से कोई खास फ़र्क नहीं पड़ता है। उसका नाम यदि जवाहर लाल नेहरू भी होता तो भी वह ऐसे ही घासफूस पर, ऐसे ही अधलेटा हुआ यहीं मिलता। यह किसी नाम का नहीं उसकी नियति का खेल था।

मोटरसाइकिल की आवाज़ सुनकर नत्थू कैसे तो भी उठकर खड़ा हुआ और मेंड़ पर चलते हुए सड़क तरफ़ जाने लगा। बायाँ घुटना दर्द कर रहा है। पुरानी चोट है। चोट खाया घुटना है। थोड़ा सूजा-सा तो हरदम ही रहता है।

चाल में भी तिरछापन-सा आ गया है अब। यह लंगड़ी चाल अब उसकी पहिचान-सी बन गई है। गाँव में कभी कोई नत्थू को पूछे कि कौन नत्थू, तो बताया जाता है कि अरे, बे जो लंगड़ है।

मोटरसाइकिल टिकाकर पंडिज्जी खेत की मेंड़ पर चलते हुए तेज़ी से इसी तरफ चले आ रहे हैं।

आते-आते वहीं से आवाज़ देकर उन्होंने पूछा, "कैसे हो नत्थू?"

नत्थू धीमे-धीमे चलते हुए उनके पास आ रहा है।

"सब अच्छा है मालिक। ... हमारी जिनगी में खराब होने को और बचा क्या है?" नत्थू ने कहा।

"ऐसा न कहो। गाँठ बाँध लो। कभी भी भगवान से ऐसी शिकायत न किया करो नत्थू। 'जाहि बिधि राखे राम ताहि बिधि रहिए' - तुलसी बाबा ने क्या कहा था?"

"वोई तो हम भी कर रहे हैं मालिक। शिकायत नहीं कर रहे।"

"घुटना अभी भी भौत पिरा रहा है क्या?"

"वो तो पिराता ही रहता है मालिक।"

"हमने तुमें जो गोली दर्ई थी सो खाई?"

"खाई न मालिक। खाई।"

"कभी दर्द जादा हो तो उसे खा लिया जाए।"

"जी मालिक।"

"एक गोली में ही बढ़िया ठाठ जम जाता है। हम तो ऐसी एक गोली खा लें तो हमारे हाथ-पाँव का दर्द तुरन्त छूमंतर हो जाता है।"

"हमारे घुटना की किस्मत भी हमारी जैसी ही है मालिक। देखिए न, आप तो हमें ऐसी बढ़िया रामबाण गोली देते हो और जे स्साला ऐसा ढीठ है कि ऐसी गोली के बाद भी दर्द करता रहता है। बताइए?" बूढ़े ने घुटने की तरफ देखते हुए कहा।

पंडिज्जी मुस्कुराने लगे। कोई अपनी किस्मत पर रो रहा हो तो पंडिज्जी उसे रो लेने देते हैं। इससे उस आदमी का दिल हल्का हो जाता है-ऐसा मानना है उनका।

"बाकी यहाँ सब ठीक चल रहा है न?" कुछ रुककर पंडिज्जी ने आस-पास, खेत पर नज़र डालते हुए पूछा।

"हओ, सब ठीक है। ... यहाँ क्या होना है?"

"होबे को कुछ पूछ के होता है क्या?... जे कोटरा है। यहाँ कुछ भी हो सकता है। सब तरफ निगाह बनाए रखखो।"

"बनाए हैं न। बैठे-बैठे जेई तो करते हैं।"

"और गाय-बैल का ध्यान भी रखियो। वैसे, तार तो बढ़िया खिंचे हैं पर ढोर डंगर एक बार अन्दर घुसबे की ठान लें तो फिर जे सब धरा रह जाता है। खेत में घुस ही जाते हैं स्साले।"

बूढ़े ने हाथ में लिया डंडा दिखाया

"उनके लाने हम जे धरे हैं न।"

"धरे होने से क्या होता है?"

"मौके पे ही काम आएगा न। बाकी के टेम तो जे धरा ही रहेगा न मालिक? हम फालतू तो भंभाते न फिरेंगे?"

पंडिज्जी हँसने लगे।

"जे भी सही कही तुमने।" पंडिज्जी ने माना।

नत्थू भी मुस्काने लगा।

"इस बार मटर बढ़िया आई है।" पंडिज्जी ने खेत पर विहंगम दृष्टि डालकर कहा।

"जी मालिक..."

"... मीठी है कि ऐसेई?"

"पता नहीं।"

"क्यों? तुमने तो खाई होगी?"

"कभी नहीं खाई मालिक।"

"अरे सामने ही मटर उगी हो तो आदमी एकाध बार तो खा ही लेता है?"

"हनुमानजी का कौल ले लो मालिक, जो हमने कभी मटर को हाथ भी लगाया हो। ... जिस चीज की हम खुद चौकीदारी कर रहे हैं, उस पे खुदई हाथ डालेंगे तब तो भौत बड़ा पाप लगेगा मालिक।" नत्थू ने कहा।

"पुण्य कमाने से हम तुम्हें रोकेंगे नहीं और पाप में ढकेलेंगे नहीं। तुम न खाओ पर हमारे लाने तो अभी थोड़ी-सी मटर तोड़ लाओ। उतरे कालपी में वकील साहब को पकड़ा देंगे।" "जी मालिक..." कहकर बूढ़ा एक तरफ से तार ढीला करके खेत में लंगड़ाता हुआ प्रवेश कर गया।

पंडिज्जी नत्थू को मटर तोड़ते हुए देखते रहे। थोड़ी-सी दूर पर ही उनका वह खेत भी नज़र आ रहा है जिस पर सतभैयों ने कब्जा कर रखा है। वहाँ इस समय अलसी उगी है। दूर तक मटर और अलसी के खेत दिख रहे हैं। पास ही सड़क कूटने का इंजन चल रहा है। बीच-बीच में पगडंडी पर निकलती मोटरसाइकिलों की आवाजें हैं। दूर कहीं से आती ट्रैक्टर की आवाज़ सुनाई दे रही है।

शीशम, बबूल, आम के पेड़। दो तोते उड़कर आम के गाछ में गुम हो गए। पंडिज्जी मेंड़ पर खड़े हुए इस विहंगम दृश्य में खोए हुए हैं।

क्या पंडिज्जी बहुत बड़े प्रकृति प्रेमी हैं? नहीं रे। वे तो सोच रहे हैं कि क्षितिज तक फैली सारी ज़मीन की रजिस्ट्री जो अगर मेरे नाम होने पाती तो कितना आनन्द मिलता ! कहते हैं कि आदमी को अन्ततः दो गज ज़मीन ही चाहिए। पर उस दो गज के अलावा जो भी ज़मीन है, उसकी रजिस्ट्री भी अगर आदमी के नाम हो जाए तो इसमें बुरा क्या है?

मूर्खता का पर्यायवाची?

बिस्मिल।

लोग इसी नाम से बुलाते हैं उन्हें। बिस्मिलजी।

वैसे असली तथा पूरा नाम है, रामनरेश बिलगैया 'बिस्मिल'। बिस्मिल उनका उपनाम है। कभी-कभी कविताएँ भी लिख लेते हैं, सो मजबूरन एक उपनाम रखना पड़ा। इस तरह हर कवि को रखना पड़ता है। यह नाम तो बस यूँ ही रख लिया वर्ना तो नाम रखने के तीन साल बाद जाकर उन्हें 'बिस्मिल' शब्द का सही अर्थ पता चला था। और कवि तो वे 'बाई-द-वे' हैं। बस, यूँ ही। वास्तव में तो वे इस इलाके में पत्रकारिता करते हैं। लखनऊ के एक राष्ट्रीय दैनिक समाचार-पत्र के स्थानीय प्रतिनिधि हैं। वैसे वे पत्रकार भी 'बाई-द-वे' ही हैं। ...यार, फिर वे हैं क्या? वास्तव में तो वे एक विशुद्ध दलाल हैं। अफसरों के मुँहलगे हैं। नेताओं की चिलम भरते हैं। पत्रकारिता, साहित्य और समाजसेवा की ऊपरी सजावट से दलाली की झाँकी सजाई हुई है बिस्मिलजी ने।

कभी वे भी छरहरे बदन के होते थे। इधर कई सालों से मुटा गए हैं। दलाली में दुबलापन वैसे भी नहीं चलता। खुद ही दुबले हों तो लोग आप पर ठीक से विश्वास नहीं करते। यार, जो खुद ही ठीक से न खा पा रहा हो, वह हमें क्या खिलवाएगा - दुबलेपन का ऐसा कुछ फालतू-सा प्रभाव बनता है। उस लिहाज से अभी उनका बदन देखें तो उनका व्यक्तित्व विकट प्रभावी है। पेट इतना आगे आ चुका है कि उसके लौटने की अफ़वाह तक शेष नहीं रही। बिस्मिलजी का पेट उनकी सफल दलाली के घोषणापत्र जैसा है। यह पेट किसी सरकारी दफ्तर में लम्बित मामले की तरह हरदम लटका रहता है। यह उदुंड पेट अब बेल्ट, बटन और पैंट के बस का नहीं रह गया है। बेल्ट असहाय-सी, 'भाड़ में जाओ' के भाव के साथ अदृश्य कमर पर बँधी रहती है और पैंट के बटन बन्द होने के बावजूद खुले से लगते हैं। वैसे पेट को संतुलित करने हेतु नितम्ब भी पीछे की ओर बढ़ा-सा प्रभावी मोर्चा बनाए हुए हैं; देखने वाला यह बिलकुल भी तय नहीं कर पाता कि इनके व्यक्तित्व का आकलन सामने से किया जाए कि पिछवाड़े से?... जब आप इस उलझन से निकलने की कोशिश में रहते हैं कि तभी उनकी मुस्कान आपका ध्यान खींच लेती है। वे सदा मुस्काते मिलते हैं। उनका मुँह हरदम फुटा-सा रहता है। बोलते कम, 'हैं, हैं' ज्यादा करते हैं। मुस्कराते और 'हैं, हैं' करते हुए भी उनकी आँखें कतई नहीं हँसतीं। इन आँखों में सदैव एक किस्म की हिंसक आक्रामकता और चौकन्नापन बना रहता है जो सामने वाले को भी लगातार चेतावनी-सी देता है कि इस शख्स से तनिक बचकर ही चलो तो बेहतर।

... पर बिस्मिलजी से बचकर चल पाना भी तो बड़ा कठिन कार्य है। सबको ही कभी न कभी, कहीं न कहीं बिस्मिलजी की ज़रूरत आन पड़ती है। सो भला कैसे?... कोटरा से लेकर कालपी तक के समस्त सरकारी दफ्तरों में उनकी पहुँच है। अखबार के ज़रिए वे अपनी छोटी-मोटी सत्ता बनाए हैं। वे स्थानीय नेताओं के खास होने का दावा भी करते हैं। तहसीलदार के मुँहलगे हैं। पटवारी की पत्नी को मुँहबोली बहिन बना रखा है। एसडीएम की पत्नी को भाभी-भाभी कहते हैं। थानेदार के घर, पीछे के दरवाजे से उनका आना-जाना होता रहता है। कोटरा की दलित तथा सवर्ण राजनीति के पोखर में वे समान गति से तैरते हैं। उनका यह तैरना किसी तैराक वाला तैरना नहीं है। वे स्थानीय राजनीति में काँई जैसे तैरते हैं।

सार्वजनिक स्थान पर खड़े हों, या अकेले ही कहीं हों-बातें कर रहे हों या यूँ ही खड़े-बैठे कुछ सोच रहे हों, वे अचानक ही थोड़ा-सा वक्र होकर, अपनी ही पीठ पीछे विस्फोट जैसा करते रहते हैं। अपान वायु को ऐसे सहज भाव से देश निकाला देते हैं कि देश के चल रहे अन्य कामों में कोई व्यवधान न पड़े। इस दौरान भी वे अपनी बात उसी सहजता से चलाते रहते हैं; ऐसे आगे बढ़ जाते हैं, मानो कुछ घटा ही न हो।

इधर गनेशी पान सदन से पंडिज्जी की मोटरसाइकिल निकली, उधर बिस्मिलजी दुकान पर पहुँचे। पैदल ही थे। वहीं पास ही रहते हैं। किसी क्लाइंट को कहा होगा कि अपन वहाँ गनेशी पान सदन पर मिलेंगे, सो यहाँ आ गए हैं। क्लाइंट यहाँ आएगा तो उसी की मोटरसाइकिल के पीछे बैठकर कालपी निकल जाएँगे। वहाँ अपने अखबार के दफ्तर होते हुए तहसील जाया जाएगा। जो शख्स उन्हें लेकर जा रहा है, उसके काम की वहाँ कुछ सेटिंग की जाएगी। फिर वहाँ से और कुछ जगह। शाम या रात तक कोटरा वापस।

बिस्मिलजी आए तो दुकान पर वे ही चारों लोग अभी भी खड़े थे। बस, यूँ ही। कुछ अनर्गल चर्चा चल रही थी। बतकही। फालतूफंड की बातें। समय काटा जा रहा था।

"अरे, आप बस दो मिनट पहले आए होते तो आपको पंडिज्जी भी मिल जाते।" किसी ने कहा।

"उनसे तो हम सुबह ही मिल चुके हैं भैया। ...कल का अखबार नहीं देखे क्या?" बिस्मिलजी ने कहा।

गनेशी को पता है कि बिस्मिलजी कैसा पान खाते हैं। मुस्कराते हुए वह उनका पान बनाने लगा।

"देखे हैं न! हम देखे हैं। ... आपने तो एकदम से फ्रंट पेज पर ही जे खबर छपवा दी बिस्मिलजी, वाह।" पान बनाते हुए गनेशी लाल चौरसिया ने कहा।

कल, पंडिज्जी के चिर प्रतिद्वन्द्वी नेताजी के अपने ही आदमियों के बीच कुछ सिर-फुटव्वल हो गई थी। ... कौन नेताजी?...अरे, बेई, पंखीलाल कहार। ... नेताजी का असली नाम तो केवल तहसील के कागजों में और पुलिस की कुछ एफआईआर में दर्ज है वर्ना कोटरा में लोग उन्हें केवल नेताजी के नाम से ही जानते हैं। यहाँ कभी, कहीं, कोई 'नेताजी' शब्द उच्चारें तो उसका मतलब शेष भारत की तरह सुभाषचंद्र बोस नहीं माना जाता है- यहाँ नेताजी कहो तो उसका मतलब पंखीलाल कहार ही माना जाता है।

नेताजी इस इलाके में पिछड़ों और दलितों की राजनीति चलाते हैं। वैसे यह वाली राजनीति चलती तो लखनऊ से है अलबत्ता कोटरा में दलित राजनीति की जड़ों में पानी और आग में घी डालने का जिम्मेवारी वाला काम नेताजी के हवाले है। ... कमीनेपन और जोड़तोड़ के इस धर्मयुद्ध में उनका सीधा मुकाबला पंडिज्जी से रहता है जो सवर्णों की राजनीति भी एकदम उसी जज्बे से चलाते हैं। इलाके के लोग आज तलक तय नहीं कर सके हैं कि दोनों में से ज्यादा हरामी कौन है?

"इत्ते बड़े अखबार के पहले पन्ने पर खबर छपवाना कोई ठठा समझे हो क्या चौरसियाजी?" बिस्मिलजी ने गर्व से कहा।

"बड़ी उपलब्धि है भाई। ... वाह बिस्मिलजी।" कोई प्रशंसापूर्वक बोला।

"आपने पूरी दुनिया में कोटरा की मशहूरी करवा दी भाई साब।" किसी और ने बिस्मिलजी को प्रशंसा भरी नज़रों से देखकर कहा।

"जे तो है। कोटरा का नाम तो खूब चमका दिये आप।" तीसरा बोला।

चौथा व्यक्ति अभी पूरा सन्तुष्ट नहीं।

"यदि घटनास्थल की फोटू भी साथ में छप गई होती तो हम और मानते।" वह बोला।

बिस्मिलजी मुस्कुराने लगे।

"कभी अखबार में हमारे बाप का राज चलने लगेगा तो फिर आपकी जे तमन्ना भी पूरी हो जाएगी।" वे बोले।

"हम तो भैया जेई मान के चलते हैं कि वहाँ आपका ही राज चल रहा है।" एक बोला।

बिस्मिलजी 'हैं, हैं' करके हँसने लगे।

तभी बिस्मिलजी हँसते-हँसते किंचित तिरछे होने लगे।

"इतें लंकलाट न फाड़ियो बिस्मिलजी।"

"भैया, लंकलाट बनेगा तो चिरेगा भी।" बिस्मिलजी निवृत्त होते हुए बोले।

"कछू गिरफ्तारी-फिरफ्तारी भी भई है कि ऐसेई?" पान पेश करते हुए चौरसिया जी ने पूछा।

"होगी। वो भी होगी। ... पंडिज्जी ऐसे ही छोड़ने देंगे क्या? लगे हैं।"

"फिर तो दरोगाजी दोनों तरफ से खेंचेंगे, क्यों बिस्मिलजी?"

"अच्छा, तुम ही बताओ- यदि तुम दरोगा होते तो ऐसे में क्या करते? ... खेंचते कि ऐसेई चूतिया घाई जीप में घूमते भागते? ऐसे में भी पैसा न खेंचा तो फिर वर्दी डालना तो अकारथ ही कहाया न, है कि नहीं, बताओ?" बिस्मिलजी ने उसके फालतू प्रश्न पर ऐतराज जताया।

"जे तो खैर है।"

"...और इसमें तुमाई काय को जल रही?" किसी और को भी ऐतराज है कि दरोगा की किस्मत से रश्क क्यों किया जा रहा है?

"हमारी क्यों जलेगी? अरे, हमें भी पता है कि जो भी कुर्सी पे बैठा है सो नोटपानी तो माँगेगा ही। ... जमाने की जेई रीत चली आती है भाई।"

बिस्मिलजी मुस्कराकर पान चबाते हुए विमर्श का मजा लेते रहे। फिर बिस्मिलजी ने दरोगा होने को देह धरे का दंड टाइप चीज बताते हुए कहा, "बड़ा कठिन काम है दरोगाजी का भी।"

"कठिन? वो कैसे?" किसी ने जानना चाहा।

"भौत कठिन काम है भाईसाहब। देखिए न, नेताजी तो लगे होंगे अपने आदमियन को बचावे में, और पंडिज्जी का दबाव होगा कि इनको अन्दर करो।"

"फिर?"

"दुविधा दूसरी भी होगी ..." कोई और बोला।

"...कैसी दुविधा?"

"जेई कि किससे लें, किसे छोड़ें?" वह बताने लगा।

"फिर तो बड़ा ही कठिन काम है बेचारे दरोगाजी का। ...सच।" एक ने बनावटी सहानुभूति का स्वाँग करते हुए कहा।

सब लोग हँसने लगे। बिस्मिलजी भी हँसे।

"वैसे तो चोट की जैसी रिपोर्ट डाक्टर साहब बनाएँगे वैसी ही धाराएँ लगेंगी, है न?" कोई पूछने लगा।

"देखो, क्या होता है।" बिस्मिलजी बोले।

"तो डाक्टर साब भी लेंगे?" उसी नादान ने पूछा।

"क्यों न लेंगे?... पेट तो उनके भी लगाया है ईश्वर ने। वे भी लेते हैं।"

"वाह रे ईश्वर, तेरी महिमा!"

"वैसे भी, दरोगा लोग डाक्टरों को साध के ही चलते हैं।"

"सबको ठीक से न साधा जाए तो फिर कानून का राज कैसे चलेगा भाई?"

तभी सामने से नन्हे मास्साब आते दिखे। खदर का कुर्ता। उसी का पाजामा। चेहरे पर हल्की दाढ़ी। बिखरे बाल। चमड़े की चप्पल। नज़र का चश्मा।

यही रास्ता विपिन बिहारी इंटर कॉलेज तरफ जाने का भी है। पंडिज्जी के कॉलेज में नन्हे मास्साब भूगोल पढ़ाते हैं।

"कुशवाहाजी आ रहे हैं।" कोई बोलो

कुशवाहाजी मतलब नन्हे मास्टर।

उनका यह नाम कब पड़ा, पता नहीं। सब यहाँ उन्हें नन्हे मास्साब ही कहते हैं। नरेन्द्र सिंह कुशवाहा- उनका यह असली नाम प्रायः कहीं भी काम नहीं आता। पड़ा-पड़ा धूल खाता रहता है।

"ठाठ हैं..." कोई उनको आता हुआ देखकर बोला। ठाठ से यहाँ उसका तात्पर्य क्या है, यह उसने बताया नहीं। किसी ने उससे पूछा भी नहीं। कोटरा में ठाठ के विषय में सबका अपना-अपना दृष्टिकोण है। पता नहीं कि अभी किस बात को ठाठ माना जा रहा है?

"चूतिया हैं।" बिस्मिलजी नन्हे मास्साब की तरफ देखकर बोले।

मूर्ख मानने के भी कोटरा में अपने ही मापदंड हैं।

"बताइए! हैं तो अदने से मास्टर, पर हिम्मत देखिए कि सीधे पंडिज्जी से ही बैर लेने की ठाने हुए हैं।" बिस्मिलजी ने उन्हें चूतिया घोषित करने का अपना मापदंड बताया।

"अरे!" चौरसियाजी को आश्चर्य है कि 'जल में रहकर मगर से बैर' वाली कहावत नन्हे मास्टर जैसे पढ़े-लिखे आदमी ने नहीं सुनी है।

"और जे मूर्ख-शिरोमणि चाहते हैं कि हम पंडिज्जी के कॉलेज में चलने वाली नकल के बारे में अपने अखबार में छपवाएँ।" बिस्मिलजी ने सबको बताया और ठठाकर हँसने भी लगे।

"जे खबर स्साली कौन छापेगा? अखबार वाले खुदई छापबे से मना कर देंगे। ... कॉलेज में नकल न चलेगी तो कहाँ चलेगी?... जे भी स्साली कोई खबर है, बताइए?... देश के सब कॉलेजों में चलती है- वैसी यहाँ भी तो चलेगी न?"

"नन्हे मास्साब की दिक्कत जे है कि वे आदर्शवादी हैं। सिद्धांतों की चपेट में आ गए हैं। समझ नहीं पा रहे कि क्या करें? ... दुनिया बदल गई और इन सरऊ को अब तक जे बात पता ही नहीं चली है।" बिस्मिलजी और भी जोर से हँसे।

"बेचारे नन्हे मास्साब!" कोई बोला।

"पास आ रहे हैं। तनिक धीरे बोलो। नाराज हो जाएँगे।" एक बोला।

"जे तो है। बड़ी जल्दी रूठ जाते हैं श्रीमान्। हमसे भी नाराज हो रहे थे। एक दिन कागज-पत्तर का इतना बड़ा ढेर साथ लाए थे। कहने लगे कि देखिए, हम इत्ते सारे ठोस प्रमाण अपने साथ लाए हैं। अब आप अपने अखबार में इसका सब लिखो। ... हमने इत्ता भर कहा कि काहे आप पंडिज्जी से बैर पाल रहे हो-बस, नाराज हो गए।" बिस्मिलजी बोले।

"चूतिया हैं।"

"सिद्धांतवादी हैं।"

"एकई बात है।"

"धीरे बोलो यार। ...बे आ गए।"

नन्हे मास्साब अब वहीं पहुँच गए थे।

"नमस्कार कुशवाहाजी। आइए। ... पान खाएँगे?" कोई बोला।

"हम पान नहीं खाते हैं। ... और हमारी क्लास का टाइम भी हो गया है। हम चलेंगे।" नन्हे मास्साब ने चलते-चलते ही सबको हाथ जोड़े और चलते चले गए।

सब उन्हें जाते हुए देखते रहे। बिस्मिलजी मुस्कुराए। बाकी लोग हँसने लगे।

"हमने कहा था न? सिद्धांतवादी हैं। बताइए। ... कहते हैं कि पान न खाएँगे। क्यों न खाओगे यार?... पूछो तो कहेंगे कि जे तो हमारा सिद्धांत है।"

"बेचारे!" बिस्मिलजी ने कहा।

कह तो दिया पर दूर जा रहे नन्हे मास्साब को देखते हुए एक नामालूम-सा डर भी महसूस हुआ उनको। ... इन स्साले आदर्शवादी और सिद्धांतवादी लोगों में खिर ऐसा क्या होता है जो खामखां भयभीत करता है? वे सोचने लगे।

"यार, जरा दो ठो पान बाँध भी देना। कालपी ले जाना है।" बिस्मिलजी ने कहा।

यह बदबू नाली की नहीं

पंडिज्जी कालपी के रास्ते में थे।

कोटरा से आ रही टूटी-फूटी निर्माणाधीन सड़क यहाँ आकर कानपुर-झाँसी हाइवे से मिल गई है। अब यहाँ से फर्फटा भरा जा सकता था। वे फर्फटा मारेंगे भी पर अभी तो ब्रेक ही मार दिया है पंडिज्जी ने।

गाड़ी रोक दी उन्होंने। एक तरफ किनारे करके खड़ी कर दी। बड़ी ज़ोर से पेशाब लगी थी। ऐसी तेज़ लगी थी कि सड़क के इन दचकों में पहले ही यदि एकाध बूँद निकल भी गई हो तो आश्चर्य नहीं। तेज़ कदमों से कच्चे में चार कदम उतरकर वे खड़े हो गए और गिरती धार को एकाग्र देखते हुए विचार करने लगे कि उन्हें अगले सप्ताह फिर से कालपी आना पड़ेगा। नए शिक्षाधिकारी ने पद संभाला है। उससे भी तनिक मिल आया जाए।

कभी कोई नया अधिकारी आ जाए तो फिर नए सिरे से सारी गोटियाँ जमानी पड़ती हैं। सुना है कि यह वाला बड़ा सख्त प्रशासक है। इसके ईमानदार टाइप का होने की भी बड़ी अफ़वाह है। नकल रोकने को कटिबद्ध बताते हैं

इसे। वैसे इस सबका तात्पर्य भी खूब जानते हैं पंडिज्जी। तात्पर्य बस यह है कि यह अफ़सर रूटीन से कुछ ज़्यादा पर मानेगा। चलो, देखते हैं। ... धार ख़त्म होते-होते विचार श्रृंखला भी समाप्त हो गई।

मोटरसाइकिल तक वापस पहुँचते-पहुँचते वे मोबाइल निकालकर वकील साहब को फोन लगाने लगे। पता चला कि वकील साहब घर पर ही मिलेंगे। वकील साहब कहने लगे कि अपने केस की सुनवाई हमने तीन बजे दोपहर की लगवाई है। सुबह घर में कुछ काम आ गया था इसीलिए सुबह के छोटे-मोटे अदालती चोंचले जूनियर वकील को पकड़ा दिए हैं। आपके काम के लिए ज़रूर हम खुद चलेंगे। न हो तो आप हमारे घर ही पहुँच जाएँ। हम आपके साथ ही अदालत चले चलेंगे।... पंडिज्जी ने भी यही कहा कि "हम आपके ही घर पहुँचते हैं।"

कालपी की एक गली में किंचित अन्दर जाकर वकील साहब का मकान-कम-दफ़्तर है।

अपने इस दफ़्तर को वे 'लॉ चेम्बर' कहते हैं; इसका मतलब फिर जो भी निकलता हो। न उन्हें इसके अर्थ से मतलब, न किसी और को इसकी पुरवाह। सुनने में ज़रूर अच्छा लगता है। बोलें तो बात में वज़न आता है। ... "आप कल हमारे लॉ चेम्बर आ जाएँ। वहीं। गुप्ताजी की गली में। घुसने के बाद तीसरा मकान।" ऐसा कहते हैं वे और यह कहते हुए एक तरह का नामालूम गर्व-सा महसूस करते हैं।

कंक्रीट की गली है यह।

मकान से सटकर बहती हुई पक्की नाली के ऊपर कुछ फर्शियाँ डालकर सीमेंट चढ़ा दिया गया है। इस तरह 'लॉ-चेम्बर' के दरवाजे के साथ बहती हुई नाली यहाँ इन फर्शियों से ढक गई है। फर्शियों की इस सीढ़ीनुमा संरचना के ठीक नौ इंच ऊपर काँच का एक दरवाजा है जो 'लॉ चेम्बर' में खुलता है। दरवाजे के काँच पर वकील साहब का नाम इतने बड़े हों में लिखा है जितने में आमतौर पर सार्वजनिक दीवारों पर शर्तिया इलाज के विज्ञापन में 'बवासीर' लिखा होता है। अभी इस दरवाजे के ठीक पास, नाली के बगल में दो कुत्ते बैठे हुए हैं। वे अक्सर यहीं बैठे हुए मिलते हैं। इन कुत्तों को पता ही नहीं कि जिसे नाली की गंध मानकर वे मजे ले रहे हैं, हो सकता है कि वह नाली की जगह 'लॉ चेम्बर' से आ रही हो ! कानून के सिस्टम की भी तो यही गंध है।

काँच का दरवाजा खोलो तो एक सँकरा परन्तु लम्बा-सा गलियारेनुमा आफिस बना है। यही 'लॉ चेम्बर' है। यह बताने के लिए किसी वकील की आवश्यकता नहीं है कि यह स्थान कभी इस घर का बरामदा रहा होगा। उसी को यहाँ-वहाँ से बन्द करके, दीवारों पर बुक शेल्फ लगाकर, तमाम कानूनी किताबों की मोटी-मोटी जिल्दें उन पर जमाकर अपना दफ़्तर निकाल लिया है वकील साहब ने। काँच लगी एक मेज के पास वकील साहब की ऊँची, घूमने वाली कुर्सी है, और उनके सामने की तरफ पाँच कुर्सियाँ मुवक्किलों के लिए धरी हैं। एक तरफ कम्प्यूटर भी रखा हुआ है। पास ही में करीने से सजी फाइलें हैं जिनके कवर पर सुरेश श्रीवास्तव एडवोकेट का नाम और नीचे उस केस की सूचनाएँ दर्ज हैं। ये सब केस फाइलें हैं।

गलियारेनुमा चेम्बर में ही खुलता एक सँकरा गलियारा है जो फिर घर के आँगन में जाकर खुलता है। जब वकील साहब 'लॉ-चेम्बर' में बैठकर कानून के पेचीदा मसलों को हल कर रहे होते हैं, अन्दर से छोटे बच्चों के खेलने, चिल्लाने, लड़ने-भिड़ने की ध्वनियाँ दफ़्तर में झरती रहती हैं। अन्दर की ये आवाज़ें कभी तेज़ हो जाएँ तो वकील साहब यहीं से फटकार लगाकर उन पर नियंत्रण करते हैं। बच्चे हैं; कभी सुनते हैं, कभी नहीं सुनते। वकील साहब ने इतने बच्चे पैदा कर लिए हैं और वे अभी भी उसी मनोयोग से प्रजनन क्रिया में पूरी लगन से संलग्न हैं कि आँगन में सतत ही आँगनबाड़ी टाइप दृश्य उपस्थित रहता है। सब तरफ़ बस, बच्चे ही बच्चे। उनका शोर। 'लॉ चेम्बर' में चल रहे वार्तालाप के बीच यह शोर बढ़ता-घटता रहता है।

पंडिज्जी ने 'ला-चेम्बर' का 'ग्लास डोर' खोलकर अन्दर झाँका।

वकील साहब किसी क्लाइंटनुमा शख्स से बातें कर रहे थे। यदि कोई शख्स ज़्यादा ही पढ़-लिख जाए तो जैसी उसकी शक्ल निकल आती है, कुछ वैसी ही शक्ल है इस क्लाइंट की। आस-पास की दुनिया में स्वयं को फिट न कर पाने की कसमसाहट को दबाए आदमी जैसी शक्ल। अब इसी शक्ल में आप उस पिल्ले की शक्ल को मिला

दो जिसे दो-तीन बड़े कुत्तों ने दूर तक रगोद डाला हो। इस तरह पहली नज़र में ही पता चल रहा है कि यह कोई पढ़ा-लिखा शरीफ़ व्यक्ति है जिसे गैरक़ानूनी तत्त्वों ने रगोदकर क़ानून की गली में घुसेड़ दिया है। यह व्यक्ति अभी कुछ कागजात वकील साहब को दिखा रहा है।

"आइए पंडिज्जी," कहकर स्वागत किया गया।

"अभी अपने पास घंटे भर का समय है। आप कहें तो हम तब तक इनका केस समझ लें?" वकील साहब ने सज्जन की तरफ़ इशारा करते हुए पंडिज्जी से कहा।

पंडिज्जी बैठ गए।

"जरूर समझ लें।" पंडिज्जी बोले।

"मोँठ में इनकी कुछ ज़मीन रही। पुश्तैनी। भौत दिनों पहले, जे चले गए गाजियाबाद। वहाँ सेटल भी हो गए। ...और अब इतें आए हैं कि अपुनी वो पुश्तैनी ज़मीन निकाल के कछ्छ रकम ले जाएँ। यहाँ आकर इनको पता चला है कि ज़मीन बेचने में फ़च्चर फ़ंस गया है। उसी का कुछ बता रहे हैं ये हमें।" वकील साहब ने संक्षेप में बताया।

"जी, आप वकील साहब को बताते रहें।" पंडिज्जी ने अभयदान-सा दिया।

"ये पंडिज्जी हैं। कालपी के गणमान्य नागरिक हैं। इनका खेत भी किसी ने चाँप लिया है। हम इनका भी केस लड़ रहे हैं। घर के आदमी हैं। इनसे कोई संकोच न किया जाए। बताएँ। आगे बताएँ।" वकील साहब ने क्लाइंट से कहा।

साठ साल से ज्यादा ही उम्र का है क्लाइंट। पैट, कोट, टाई, धज ऐसी कि देखकर ही आश्वस्त हुआ जा सकता है कि यह क़ानून से डरने वाला शख्स है और इसे ठीक से निचोड़ा न गया तो वक़ालत के घाट पर बैठे क़ानूनविद् बुरा मान जाएंगे।

"बताइए। ...बताइए।" वकील साहब ने पुचकार के कहा।

और वे अपनी व्यथा बताने लगे।

कहने लगे कि "हम भी मोँठ के ही हैं। गाँव से चालीस साल पहले निकल गए थे। गाजियाबाद में नौकरी की, वहीं मक़ान बना लिया। अब वहीं सेटल हैं। यहाँ, पीछे पुरखों की ज़मीन छूट गई थी। ज़मीन को बाँधकर ले जाना सम्भव नहीं था और तब इस तरफ़ ज़मीन के भाव कुछ थे नहीं कि उस समय इसे बेचने की सोचते। अब बेटा वहाँ गाजियाबाद में कोई दुकान खरीदना चाहता है। उसमें पचास-साठ लाख रुपए लग जाएंगे। हमें पता चला कि इस तरफ़ भी ज़मीन के भाव आसमान छू रहे हैं तो हम अपने पुश्तैनी गाँव लौटे हैं। ... सोचा था कि सौदा ठीक से पटा तो यहाँ की ज़मीन निकाल देंगे पर यहाँ आकर पाया है कि खेत पर तो किसी और ने ही कब्ज़ा कर रखा है। हम उससे भी मिले हैं। हमने उससे कहा भी कि यह हमारी ज़मीन है। वह बोला कि होगी तुम्हारी पर इस पर अब हमारा कब्ज़ा है। कहने लगा कि यह ज़मीन तो अब तुम भूल ही जाओ। यहाँ अपना टाइम फ़ालतू में वेस्ट न करो। ज़मीन अब हमारी है। हाँ, पाँच लाख लेते हो तो हम दिये देते हैं। बताइए इसकी बदमाशी कि एक करोड़ की ज़मीन के पाँच लाख रुपए दे रहा है! हमने साफ़ मना कर दिया। हमने यही कहा कि ज़मीन हमारी है, तुम्हें हटना ही होगा। इस पर वह मारने-पीटने की बदतमीज़ी वाली बातें करने लगा। बोला कि 'अगर ऐसी बात है तो सुनो। ज़मीन तो हमारी है। तुमारे बाप बेच दिये थे हमें। कागज़ हैं हमारे पास।' ... ऐसा कह रहा है जबकि सारे असली कागज़ हमारे पास हैं। यह पूरी फ़ाइल है आपके सामने। अभी सारे कागज़ भी हमने आपको दिखाए। पर वह कहने लगा कि किसके कागज़ असली हैं, किसके नकली, अब जे फैसला तो कोर्ट करेगा। जाओ, अदालत में दावा करो। कहता है, 'तुम अदालत से ही ज़मीन ले लो।' तभी किसी ने आपका नाम सुझाया। बताया कि श्रीवास्तव साहब ऐसे मामलों के एक्सपर्ट वकील हैं। अब आपके पास आया हूँ। कुछ करिए।"

वकील साहब उनकी कहानी सुनते हुए फाइल पलटकर सारे कागज देखते- भालते रहे। बीच-बीच में उनका मुँह देखकर यह आकलन भी करते रहे कि इनसे तुरन्त अभी, और फिर बाद में कितना क्या खींचा जा सकेगा?

इसी बीच अन्दर, आँगन से आता हुआ शोर बढ़ गया है।

"यार, इन्हें चुप कराओ भाई।" वकील साहब ने आँगन की दिशा में मुँह करके चेतावनीनुमा गुज़ारिश की।

फिर वे सज्जन की तरफ मुखातिब हुए, "सॉरी, बच्चे हैं। आजकल के बच्चों का आपको पता ही है। ... आसानी से मानते नहीं।"

"जी, मैं जानता हूँ।" सज्जन बोले।

"हाँ, तो बताइए।" वकील साहब ने कागजों वाली फाइल सज्जन की तरफ वापस खिसकाते हुए पूछा।

सज्जन को मानो अभी कुछ समझ ही नहीं आ रहा है।

"कोई ऐसे कैसे कब्जा कर सकता है भाई साहब?" वे बोले।

"हो जाता है भाई साहब। टेंशन न पालें।" वकील ने पुचकारा।

"हद है!"

"हद-बेहद की तो बात ही न करें। ज़मीन पर कब्जे की कोई हद नहीं होती है। पंडिज्जी से पूछिए न।" वकील ने समझाया।

सज्जन का मुँह सूख रहा है। तनाव के कारण वे बोल नहीं पा रहे। कातर मुद्रा का अर्थ समझना हो तो अभी इनकी शक्ल देखें। एकदम टेक्स्टबुक वाला कातर मुद्रा का चित्र लग रहे हैं।

"बताइए?" वकील ने पूछा।

"बताना तो आपको है। हमने तो सब कुछ आपको बता ही दिया है।"

"भाई साब, इत्ते साल तक आप क्या करते रहे?"

"क्या करना था हमें?"

"अरे, बीच-बीच में कम से कम यहाँ आते तो रहते। अपनी ज़मीन को देखकर तो जाते। आपने तो उसे लावारिस ही छोड़ दिया!"

"जब सारे कागज हमारे पास हैं तो हमने सोचा कि..."

"... कागजों पर इत्ता भरोसा भी ठीक नहीं भाई साब।" वे चुप रह गए।

"भाई साब, यहाँ कागजों को कोई नहीं पूछता है।"

"तो फिर कागजों का क्या मतलब?"

"कोई मतलब नहीं है, और मतलब है भी। आप ये सब उसको देते तो वो इनकी पुंगी बनाकर आपको वापस कर देता। यहाँ का यही रिवाज है। कागज केवल पुंगी बनाने के काम आते हैं।"

वे किंचित उद्वेलित हुए।

"कानून कहीं है ही नहीं क्या?" वे पूछने लगे।

"अकेले कानून के मत्थे सब नहीं छोड़ना चाहिए। खुद भी कुछ चीजों का खयाल रखना चाहिए।" पंडिज्जी बीच में बोले।

"मतलब?"

"जमीन तो आपको ऐसे लावारिस छोड़नी ही नहीं थी। कभी बीच में आकर देख ही जाना था।" वकील ने पंडिज्जी की टिप्पणी का निहितार्थ समझाया। वे सज्जन चुप रहे। बस, एक बार पंडिज्जी की तरफ देखा।

"जमाना खराब है।" पंडिज्जी ने कहा।

"हमें पता है।" सज्जन बोले।

"खैर, आपको तो पता होगा ही। गाजियाबाद तरफ तो जमाना और भी खराब है।" वकील साहब ने माना कि उन्हें ज़रूर पता होगा।

"परन्तु इधर का जमाना खराब के अलावा बेमुरव्वत भी है।" पंडिज्जी ने यहाँ के जमाने के बारे में आगे और बताया।

सज्जन चुप रहे।

"यहाँ तो आदमी लावारिस पड़ी जमीन पर चार दिन मृत के देखता है। कोई उसके मृतने पर उज्र न करे तो पाँचवें दिन उसी जमीन पर हल चला देता है या नींव खुदवा देता है।"

पंडिज्जी ने कहा।

"पर कोई ऐसे कैसे कर सकता है?" वे बोले।

"ऐसेई किया जाता है।" वकील साहब बोले।

"अब मैं क्या करूँ?"

"वही हम भी सोच रहे हैं।" वकील साहब बोले।

सज्जन उनका मुँह देखने लगे। बोले, "आप बताएँ। आप तो ऐसे केस लड़ने में एक्सपर्ट हैं।"

"ये एक्सपर्ट ज़रूर हैं पर जमीन चाँपबे वाले यहाँ महाएक्सपर्ट हो गए हैं।" पंडिज्जी बोले।

सज्जन के भीतर बैठी आत्मा मानो फड़फड़ा रही है। चिल्ला रही है कि अन्याय हो रहा है। मन में एक शोर है।

इधर आँगन से आता हुआ शोर भी बढ़ गया है।

वकील साहब का ध्यान अन्दर से आते शोर की तरफ़ है। वे मौन होकर बेचैन पहलू बदल रहे हैं।

"हम अभी आते हैं..." कहकर वकील साहब उठ गए। अन्दर की तरफ़ जाने लगे। पंडिज्जी पुराने क्यालंट होने की वजह से जानते हैं कि वे क्यों उठे हैं।

"पीटिएगा मत। बच्चे उद्दंड हो जाते हैं।" पंडिज्जी ने बुजुर्ग वाली नसीहत दी।

"ये उद्दंड ही पैदा हुए हैं।" वकील साहब जाते-जाते रुक गए।

"बैठिए, बैठिए।" पंडिज्जी ने आग्रह किया।

"हम फालतू ही परिवार नियोजन को गाली देते रहे पंडिज्जी।" वे वापस कुर्सी पर बैठ गए। अन्दर शोर है।

"ऐसा माहौल हो तो आदमी स्साला खुद ही नसबंदी कैंप में जाकर लेट जाए। सच्ची।" वकील साहब बड़बड़ाने लगे।

पंडिज्जी हँसने लगे।

"नसबंदी न करा लीजिएगा। ... काम बन्द हो जाएगा।" पंडिज्जी ने चेताया।

"वही हमने भी सुना है।" वकील साहब बोले।

"ऐसा नहीं है।" वे सज्जन बोले।

"आपने करवाई है क्या?"

"करवाई तो नहीं पर पता है।"

"नहीं साहब, धोखा न खा जाना। एकदम जमीन पर कब्जे वाला मसला है यह भी। नसबंदी ने कब्जा किया तो आप खुद अपने वीर्य के लिए तरस जाएँगे। जमीन पर कब्जे की तो अदालत में सुनवाई है। इतें, गए तो गए।" पंडिज्जी समझाने लगे।

"हमें पढ़े-लिखों टाइप बातें करनी चाहिए।" सज्जन बोले।

उनकी यह बात किसी ने नहीं सुनी।

सज्जन ने अब वह बात फिर से रखी जो इतनी देर से उनके मन में उमड़ रही थी।

"आप एक्सपर्ट हैं। कुछ कराइए।" सज्जन बोले।

"कराते हैं।" कहकर वकील साहब ने उनके कागजात फिर उठा लिए।

"ओरिजिनल और असली हैं।" वे बोले।

"मान लीजिए कि ठीक ऐसे ही पेपर वह भी बनाए बैठा हो, तो?"

"वह कैसे बना लेगा?"

"बस, ऐसेई। ... यहाँ एकदम असली लगने वाले कागजों के इंतजाम का पूरा सिस्टम बना हुआ है।"

"कैसा सिस्टम?"

वकील साहब ने बात आगे स्पष्ट की, "भाईसाहब, यहाँ एक पूरा सिस्टम विकसित हो चुका है। आप जैसा चाहें, वैसे कागज बन जाएँगे। ... पुरानी तारीखों के ओरिजिनल स्टाम्प रखे हुए हैं। लोग ऐसे बढ़िया नकली दस्तखत बना सकते हैं कि असली वाला दस्तखत शरमाता हुआ फिरे। ... पुरानी तारीखों की सेल डीड, सालों पहले आपके पिता द्वारा किया गया जमीन बेचने का करारनामा - यहाँ सब बन सकता है।"

"पर ये तो ठीक नहीं।" सज्जन बड़बड़ाए।

"तो इसे ठीक कौन कह रहा है?"

"फिर तो ओरिजिनल कागजों का कोई मतलब ही नहीं रहा?" सज्जन बोले।

वकील साहब ने उन्हें पुचकार के कहा, "ऐसी भी बात नहीं है। अदालत में तो ओरिजिनल पेपर ही सही सिद्ध होंगे परन्तु मुकदमे का काम बड़ा लम्बा है। जमीन सालों के लिए फँस जाती है। मुकदमे में फँसी जमीन फिर मिट्टी के मोल भी नहीं बिकती।"

"पर हमें तो इसे अभी के अभी बेचना है। पैसों की ज़रूरत तो हमें अभी है।" सज्जन के स्वर में घबराहट है।

"तब तो मुकदमेबाजी की रिस्क नहीं ली जा सकती। हमें बाहर ही बाहर सेटल करना पड़ेगा।"

"किससे सेटल करना होगा?"

"जिसकी जमीन है।"

"ज़मीन? ज़मीन तो हमारी है।"

"ये तो आप कहते हैं न?"

"मतलब?"

"हम उसकी बात कर रहे हैं जिसके पास अभी यह जमीन है।"

"यादवजी से?"

"यादव ने दबाई है आपकी जमीन?" पंडिज्जी ने बीच में पूछा।

"आप जानते हैं उसे?" वकील ने पूछा।

"अरे, आप भी तो जानते होंगे? मोँठ का सी.पी. यादव है न? स्साले का जेई धंधा है।" पंडिज्जी बोले।

सज्जन दोनों का मुँह देखने लगे। वकील साहब भी पहिचान गए।

"वो तो बड़ा ही हरामी आदमी है साहब। वैसे भी, इस तरफ आजकल यादवों के ठाठ चल रहे हैं। लखनऊ में इनकी ही सरकार है। मूतते लखनऊ में हैं, चिराग मोँठ, कालपी तक जल रहे हैं।" वकील साहब सज्जन को बताने लगे।

"जानते हैं आप उसे?... तो आप समझाइए न उसे।" सज्जन बोले।

"समझोगा नहीं। यह उस तरह का आदमी है जिसे पैदा करने के बाद ईश्वर भी आज तक नहीं समझ सका है कि अपनी इस गलती को अब कैसे सुधारे?"

"कहकर तो देखें।"

"मैं फाड़ के पैसे माँगूँगा।"

"अपनी ही जमीन के लिए कैसे पैसे ? मैं एक धेला नहीं दूँगा।" सज्जन बिफर गए।

"बाहर ही बाहर सेटल करना है तो यह पैसे से ही तो करना होगा न भाई साब वरना..." वकील साहब बोले।

"...वरना?"

"वरना बस दो रास्ते हैं। एक तो कानूनी रास्ता है, और दूसरा यह है कि आप जाकर यादव की कनपटी पर तमंचा धर दें..."

"... आपको मैं क्रिमिनल लगता हूँ?"

"वही तो! आप बिलकुल नहीं लगते। आप चाहें तो भी क्रिमिनल नहीं लग सकते। शक्ल से ही इत्ते शरीफ लगते हैं कि डाकू की ड्रेस डाल के भी खड़े हो जाएँगे तो लगेगा कि फैसी ड्रेस में खड़े हैं।"

वकील ने माना कि भाई साहब द्वारा तमंचे वाला रास्ता नहीं पकड़ा जा सकता।

"...और आप पैसे देंगे नहीं?" वकील ने दोबारा पूछा।

"वो मैं क्यों दूँ?" सज्जन उल्टा पूछने लगे।

"फिर तो अपुन कानूनी रास्ता ही पकड़ते हैं। ... हम अभी कोर्ट ही जा रहे हैं। आप हमारे साथ चले चलें। अपुन तहसील में आज ही जमीन की हदबंदी का आवेदन लगा देते हैं।" वकील ने कानूनी रास्ता बताया।

"हदबंदी?"

"आप जेई सब दस्तावेज लगा के तहसील में प्रार्थना करेंगे कि जे हमारी जमीन है, इसकी तस्दीक करा दी जाए।"

"फिर?"

"फिर हमें हदबंदी की तारीख मिलेगी। पटवारी और गिरदावर वहीं मौके पर पहुँचेंगे।" वकील ने समझाया।

"आज शाम तक तो हो जाएगा न यह काम?"

वकील साहब उनकी यह भोली बात सुनकर हँसने लगे। पंडिज्जी भी मुस्कुरा दिये।

यार, आदमी भोला हो, शरीफ हो, पर ऐसा चूतिया न हो। "आज? आज तो, बस आपकी अर्जी लगेगी। फिर पन्द्रह दिन का नोटिस पीरियड। फिर हदबंदी की जो भी तारीख मिले। उस तारीख पर गिरदावर, पटवारी, सब मौके पर पहुँचेंगे। खसरा खतौनी के रिकार्ड से आपके कागजों का मिलान होगा। गाँव के राजस्व नक्शे के हिसाब से नपती होगी।" वकील ने बताया।

"पन्द्रह दिन? मेरा तो परसों का रिजर्वेशन है।" वे बोले।

“अब आप खूब सारे रिजर्वेशन करा के रखें।”

“मतलब?”

“पन्द्रह के पचास दिन भी हो सकते हैं।”

“ऐसे कैसे?”

“भाईसाहब, आप हर बात में ‘ऐसे कैसे’ बोलना तो छोड़ ही दें...।”

वकील साहब ने विस्तार से कुछ यूँ समझाया : “कानून के रास्ते पर नियम, कायदे, प्रोसीजर आदि की इतनी बजरी, गिट्टी, डामर आदि पड़े रहते हैं (और इनको कभी भी प्रशासन द्वारा ठीक से कूटा नहीं गया है) कि कानून के रास्ते पर तेज-तेज चलना ठीक नहीं माना जाता है। प्रोसीजर की बजरी पर कभी आपका पैर जरा-सा भी गलत पड़ गया तो आदमी सीधे मूँ के बल ही गिरता है। कानूनी प्रोसीजर में समय लगता है। और यह भी जरूरी नहीं कि जो तारीख मिली है उस पर पैमाइश हो ही जाए। न हों पाई तो फिर से अगली तारीख लेनी पड़ेगी। यहाँ तो मर्डर केस में भी यही होता है, आपका तो, बस जमीन का मामला है।”

अब सज्जन हताशा की चपेट में थे। माथे पर हाथ धर के बैठे रह गए वे। कुछ देर तक ‘लॉ चैम्बर’ में एकदम चुप्पी रही। वकील साहब उनको मन ही मन तौल रहे थे। पंडिज्जी ने भी आँखें मूँद ली थीं।

अन्दर से आता हुआ शोर अब इसी चुप्पी को दबोचे हुए ‘लॉ चैम्बर’ में घूम रहा था।

“नपती हो जाने पर तो मुझे कब्जा मिल जाएगा न?” सज्जन ने चुप्पी तोड़ते हुए एक और भोला प्रश्न किया। वकील साहब उन्हें गौर और आश्चर्य से देखते रहे। ... अब इस इस आदमी को क्या कहा जाए?

“कब्जे का तो खैर केस चलेगा ही चलेगा।”

“नपती के बाद भी?”

“एसडीएम को यादव की भी तो सुननी पड़ेगी न?”

“पर उसने तो हमारी जमीन पर गैरकानूनी कब्जा...”

“...यह तो आप कह रहे हैं न भाई साब? यादव भी तो अपने कागज दिखा सकता है?”

“वह क्या दिखाएगा वकील साहब? कागज तो हमारे पास हैं।”

“आपकी जमीन का बिक्रीनामा, उसके गिरवी रखने के दस्तावेज, आपके पिताजी द्वारा हस्ताक्षरित एफिडेविट-उसके पास कुछ भी हो सकता है।”

वे इसके प्रत्युत्तर में ‘ऐसे-कैसे’ बोलते-बोलते रह गए। वे प्रश्नवाचक मुद्रा में वकील साहब को देखने लगे।

“तब?” उन्होंने पूछा।

“तब एसडीएम की अदालत में केस चलेगा। फिर गवाही, पेशी, दस्तावेज, जवाबी दस्तावेज - जे सब खेल चलेगा। चलता रहेगा।”

“फिर असली कागज होने का मतलब ही क्या हुआ?”

"मतलब क्यों नुहीं? मतलब तो है। ... इन्हीं कागजों से तो आप अन्ततः एसडीएम कोर्ट में केस जीतेंगे। ... हाँ, वकालत के दाँव-पेंच हमको देखने होंगे। ... जीतेंगे आप ही।"

"हम जीते, फिर तो जमीन हमें मिल जाएगी?"

"जीत का आर्डर मिल जाएगा आपको।"

"और जमीन?"

जमीन? आप आर्डर लेकर जाएँगे और यादव को उसकी कॉपी दिखाएँगे।"

"फिर? यादव जमीन हमें दे देगा?"

"यह उस पर निर्भर है कि वह क्या करेगा। वो मान भी सकता है, और नहीं भी।"

"मानेगा कैसे नहीं?"

"वही, पुंगी वाला मामला। वह अदालती आदेश की पुंगी बनाकर आपको वापस कर सकता है कि इसे अपने या जज साहब के स्थान विशेष में डाल लें।"

"अरे! तब?"

"तब आपको थाने जाना होगा। यादव के विरुद्ध एक एफआईआर दर्ज करानी होगी। अदालती आदेश के तामील की प्रार्थना करनी पड़ेगी। थानेदार का रेट पता करना पड़ेगा। उसे पैसे देने होंगे।"

"थानेदार को काहे के पैसे?"

"थानेदार को तो उसके थानेदार होने के पैसे देने पड़ते हैं भाईसाहब।"

"थानेदार हमें ज़मीन दिलवा देगा?"

"दिलवा भी सकता है, पर जे भी हो सकता है कि तब तक यादव सिविल - कोर्ट चला जाए।"

"अरे!"

"फिर सिविल कोर्ट में केस चलेगा।"

"अभी तो चला था?"

"वो वहाँ चला था, अब यहाँ चलेगा।"

"यह कितने दिन चलेगा?"

"आपकी क्या उम्र है?"

"क्यों?"

"बताइए न?"

"यही, बासठ के आस-पास।"

"तो मान लें कि आप यदि सौ साल तक जीने की ठान लें तो शायद केस आपके जीते जी तय हो जाए। ... फिर हाईकोर्ट। ... सुप्रीम कोर्ट।"

"इत्ती देर!"

"देर है, पर अंधेर नहीं। जीतेंगे आप ही। पक्का।"

"क्या और कोई रास्ता नहीं है?"

"है न।" वकील साहब ने कहा पर यह नहीं बताया कि वह रास्ता क्या है? वे, बस उनका चेहरा देखते रहे। जमीन डेढ़ करोड़ से कम की नहीं है। इस आदमी से अगर पच्चीस लाख निकलवा सकें तो यादव को तो दस बारह में मनाया जा सकता है। हो सकता है कि वह इससे भी कम में सेट हो जाए।

इधर पंडिज्जी आँखें मूंदकर सारी बातें बड़े गौर से सुन रहे हैं। इसी बीच अन्दर से आता हुआ शोर अचानक ही बढ़ गया है। एक छोटा-सा बच्चा धड़ाम से दफ्तर के अन्दर तक आकर गिरा है और तुरन्त उठकर हँसता हुआ गलियारे से होता हुआ अन्दर भाग गया है। जिस बच्चे ने उसे धकेला था, उसके ठहाके अभी तक सुनाई दे रहे हैं।

वकील साहब ने पैरों में जूता एडजस्ट किया।

दीवार पर लगी घड़ी में एक बार ज़ोर से टन्न बजा। दोपहर के डेढ़ बज रहे हैं।

वकील साहब असमंजस में हैं। अन्दर जाकर किसी बच्चे को ठीक से कूटकर आएँ या फिर सामने वाली पार्टी के सामने दाना डालकर देखें?

"देखिए, आउट ऑफ कोर्ट ही मामला सेटल करने की कोशिश करते हैं। वैसे, यादव भौत ही हरामी है। पर वह हमसे हरामीपन नहीं करेगा। पक्का। ... हम उसके पीछे लगेंगे तो वह मानेगा ही।"

"तो बात करिए न उससे। ... प्लीज!"

सज्जन लगभग गिड़गिड़ा रहे थे। वकील साहब जान गए कि इन तिलों से काफी तेल निकाला जा सकेगा।

पंडिज्जी ने आँखें खोल लीं।

वकील साहब मौन का अंतराल बढ़ाते रहे। क्लाइंट की बेचैनी बढ़ेगी तो मामला और भी तर होगा।

"पंडिज्जी, आप बताइए? आप क्या कहते हैं?" वकील साहब ने सज्जन की जगह पंडिज्जी से पूछा।

"आदमी बदमाश है। भौत बड़ा मूँ खोलेगा।" पंडिज्जी ने अपना आकलन दिया। उनसे यही तो कहलवाना भी चाहते थे वकील साहब।

"वो ऐसे नहीं मानेगा; भौत पैसे लेगा भाई साब।" वकील साहब भी बोले।

"आप थोड़ा दबाव डालेंगे तो..."

"...वो स्साला, अपने बाप की नहीं सुनता साहब। बात-बात पे तो तमंचा निकाल लेता है।"

"आप ही ठीक-ठाक सेटल करा दें वकील साहब।" सज्जन अब आत्मसमर्पण पर आ गए हैं। यही वकील साहब चाहते भी थे।

"पैंतीस लाख से नीचे नहीं मानने वाला।" वकील साहब ने कहा।

"पैंतीस!"

"हम भौत कोशिश करेंगे भी तो शायद तीस-बत्तीस तक आ जाए, बस।"

"यह तो..."

"...पर आपकी जमीन भी तो डेढ़ करोड़ से कम की नहीं है। आप कमाएँगे तो वह भी तो कमाना चाहेगा।"

अन्दर शोरशराबा बढ़ गया है। वे फिर उठे।

"रहने दें। मारने से बच्चे बिगड़ते हैं। दो बजने को हैं। कोर्ट चलें?"

"हमें भी तैयार ही मानिए, जूते पहिने और निकले। ...बस, जरा भाई साब बता दें कि फाइनली ये क्या चाहते हैं?"

सज्जन ने सिर उठाया।

सज्जन ने पंडिज्जी की तरफ देखा, "आप क्या कहते हैं?"

पंडिज्जी कुछ देर तक सोचते रहे, फिर बोले, "भाई साब, कोटरा में दो तरह की पापुलेशन है- कम हरामी, और ज्यादा हरामी। मान लें कि सीधा तो यहाँ कोई है नहीं। यहाँ सीधों को भी हरामी बनना पड़ता है। इधर जीने की एक जरूरी शर्त यह है कि आदमी तिकड़म सीखे। यहाँ, अदालती केस को अटकाने, बढ़ाने, फँसाने, लटकाने के इत्ते तरीके बच्चे-बच्चे को आते हैं कि जज लोग तक बौखला जाते हैं। ... हमारी मानें तो 'आउट आफ कोर्ट' मामला सेटल कर लें। जो मिल जाए, लेकर निकल जाएँ।"

वकील साहब पंडिज्जी को ऐसी श्रद्धा से सुनते रहे मानो वे कानून-व्यवस्था की सत्यनारायण कथा बाँच रहे हों।

सज्जन यकायक उठे।

जेब से मोबाइल निकाला।

"मैं इस बाबत जरा अपने बेटे से बात कर लूँ। अभी आता हूँ। ... ठीक?"

सज्जन बोलते-बोलते काँच का दरवाजा ठेलकर गली में उतर गए और गली में यहाँ से वहाँ टहलते हुए फोन पर बतियाने लगे। दरवाजे के काँच से उनकी बेचैन आवाजाही दिखाई दे रही है। वे अपने हाथों को जोर-जोर से हिलाते हुए, बहस-सी करते, अपने गंजे होते सिर पर बमुश्किल टिके बालों में उँगलियाँ घुमाते, उत्तेजित होते हुए फोन पर चर्चा करते दिख रहे हैं।

वकील साहब काँच के दरवाजे से दिख रहे इस दृश्य को अपनी तरह से ही समझने का प्रयास कर रहे हैं।

आँगन से आता हुआ शोर जरा ज्यादा ही बढ़ गया है।

पंडिज्जी भी गली में टहलते हुए सज्जन को लगातार देख रहे हैं और मुस्कुरा रहे हैं।

"चूतिया हैं..." पंडिज्जी ने मानो इस बारे में अपनी फाइनल राय दी।

"जल्दी में कोई राय न बनाएँ पंडिज्जी। अभी देखना पड़ेगा। ... चूतिया आदमी को हरदम चूतिया ही न मानें। क्या पता कि वह दिखता तो चूतिया हो पर हो बड़ा होशियार। चूतिया जैसा दिखना उसकी होशियारी भी हो सकती है।" वकील साहब बोले।

पंडिज्जी मुस्कुरा दिये। प्रशंसा में हाथ जोड़ दिये वकील साहब के।

अन्दर से आता शोर बढ़ता जा रहा है।

ईमानदारी का भगंदर

"तो क्या सारे अफसर बेईमान ही होते हैं?"
चबूतरे पर बैठे नौजवान ने अचानक ही चर्चा में उतरते हुए पूछ लिया।

कोटरा के बाज़ार में बने इस चबूतरे का ज़िक्र हम पहले भी कर चुके हैं। गजानन बाबू का भी यही स्थायी ठीया है।

पीपल का एक बहुत पुराना-सा पेड़ है। उसी के साथ बना है यह चबूतरा। फुरसती लोग बैठे रहते हैं यहाँ। कभी ताश की फड़, कभी चौपड़। कभी यूँ ही, बस अलसाते हुए। कुछ लोग यहाँ बैठकर अखबार भी पढ़ते हैं। इन लोगों के बीच बतकही चलती रहती है। इससे थोड़ी दूर पर ही चाय का एक खोखा है। यहाँ तंबाकू, बीड़ी, सिगरेट, गुटखे की झालरें- अर्थात् आनंदपूर्वक समय काटने के समस्त साधन उपलब्ध हैं। चबूतरे पर बिराजा व्यक्ति आवाज़ दे तो चाय वहीं पहुँचा दी जाती है।

"तो क्या सारे अफसर बेईमान ही होते हैं?" नौजवान ने पूछा।

सबने चर्चा रोककर उसे गौर से देखा।

कोई नौजवान है। नौजवानों को हक है कि वे ऐसे मूर्ख प्रश्न उठाएँ। गौर से देखा गया तो सब उसे पहिचान भी गए।

गंगेलेजी का लौंडा है। अभी-अभी शहर से पढ़-लिखकर लौटा है। इसने पंडिज्जी के स्कूल में मास्टरी की नौकरी के लिए कागज भी डाल रखे हैं। उस तरह के कॉम्पिटिशन की तैयारी भी कर रहा है, जिनमें बैठ-बैठकर इस तरफ़ के नौजवान एक दिन ओवर-एज होकर अन्ततः कहीं कुछ छोटा-मोटा काम पकड़ लेते हैं। इस नौजवान की अभी शुरुआत है। अभी यह सपनों की पकड़ में है। इसे उम्मीदें हैं। होती ही हैं। पढ़-लिख लो तो शुरू-शुरू में कुछ ज़्यादा ही होती हैं। इसे भी हैं तो ऐसी कुछ गलत बात नहीं। धीरे-धीरे समझेगा। दुनिया को उस तरह से समझना अभी इसे बाकी है जैसी वह वास्तव में है। इसीलिए जब नौजवान ने यह मूर्खतापूर्ण प्रश्न किया तो चबूतरे पर बैठे लोगों ने उसे माफ़ कर दिया।

इससे पूर्व वह नौजवान वहाँ चुपचाप बैठकर कोई किताब पढ़ रहा था परन्तु साथ-साथ वह, वहाँ एकत्रित फुरसतियों के बीच चल रहे विमर्श को भी बड़ी देर से सुनता जा रहा था।

किसी अधेड़ ने बात यहाँ से शुरू की थी कि वैसे तो सारे ही अफसर हरामी होते हैं पर अभी आया ये वाला कुछ विकट ही हरामी लग रहा है। स्साला ऐसा बेईमान है कि अब पुराने वाले अफसरों की सोचें तो वे तो संत टाइप लग रहे हैं। बात एक बार चल पड़ी, फिर तो सभी उसमें उतर गए। खूब छपाछप मची। हाँ, इस एक बात पर लगभग सर्व-सहमति दिखी कि अफसर है, तो वह बेईमान होगा ही। सबने माना कि बेईमान होना तो अधिकार है अफसर का। भाई साहब, किसी अफसर से यह उम्मीद ही क्यों करना कि वह बिना आपसे पैसा लिए आपकी कटी उँगली पर मूँतेगा? ऐसा सोचना भी आपकी नादानी है! वास्तव में, यह संयम तो अफसरी की ट्रेनिंग में ही सिखा दिया जाता है कि कैसे अपनी पेशाब और दस्तखत को तब तक रोक के रखा जाए जब तक कि कटी उँगली लेकर प्रस्तुत हुआ शख्स उचित रिश्त प्रस्तुत न कर दे।

फिर विभिन्न अफसरों की अफसरी के किस्से चल पड़े। रिश्त की बात चली तो थानेदार साहब की बात तो सबसे पहले निकलनी ही थी। 'हुस्न की बात चली तो सब तेरा नाम लेंगे' वाला मामला।

याद करते हुए पूछा गया, "बघेल साब की याद है कि नहीं?" ऐसा कड़क थानेदार कि एक बार ठीक से घूर के देख ले तो आदमी के बदन पे नील पड़ जाएँ। ... जरा-जरा-सी बात पर आदमी को घर से उठवा लेता, और एक बार उठवा ले तो फिर आदमी कहीं बैठने लायक नहीं रह जाता था। गाल से लेकर अपने चूतड़ तक सुजवाकर ही आदमी थाने से लौट पाता था। पन्द्रह दिन तो आदमी अपने घर मूँ के बल लेटा रहता था। ... ऐसे में कभी एक मानवाधिकार वाले साहब थाने पहुँच के उनसे फालतू के तर्क-वितर्क करने लगे। बोले कि निरपराधी को ऐसे पकड़ना तो ठीक नहीं है। थानेदार साहब ने पुचकारते हुए उनसे पूछ लिया कि फिर आप ही हमें गाइड करें कि इनको कैसे पकड़ना ठीक रहेगा? गर्दन से पकड़ें कि कलाई से? या कहें तो पिल्ले की तरह इनके दोनों कान पकड़ के इन्हें उठाया जाए? आप जैसा भी निर्देश देंगे, हम आगे से इन स्सालों को वैसा ही उठाया करेंगे। मानवाधिकार वाले साहब के पास इन यक्ष प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं था। वे मौन रह गए। फिर, वे चुपचाप ही उठकर जाने को हुए तो थानेदार ने उनसे पूछा कि तुम अभी जा कहाँ रहे हो? तुम अपनी तो बताते जाओ; तुम्हें कैसे पकड़ा जाए? और पकड़ के तुम्हें कहाँ लटकाया जाए? फिर बघेल साब ने उनकी चैंथी के बाल अपनी मुठ्ठी में पकड़ के, उन्हें वहीं तीन चक्कर घुमा के कहा कि बेटा, जब तक हम यहाँ के थानेदार हैं तब तक इधर आस-पास भी न दिखियो वर्ना हवाई जहाज बना के उल्टा टाँग देंगे और नीचे हवाई पट्टी पे तेल डाल देंगे तो जहाज उतर भी न पाएगा।"

सब देर तक हँसे। नौजवान, किताब पर आँखें गड़ाए उनकी हँसी सुनता रहा।... अरे, कैसे हैं ये लोग?

इसी तारतम्य में पिछले तहसीलदार साब के भी कसीदे काढ़े गए। सबने उनकी इस बात के लिए भूरि-भूरि प्रशंसा की कि उन्होंने रिश्त देने का सिस्टम इतना आसान तथा बोधगम्य बना डाला था कि वे सीधे ही क्लाइंट को अपना फाइनल रेट खुद बता देते थे। वे यहाँ तक बता देते थे कि यदि तुम आज शाम तक बंगले पर दस हजार रुपए पहुँचा देते हो, तो ठीक, वरना हम कल के रेट का आज खुद भी नहीं कह सकते। हो सकता है कि परसों आओ तो हम इसी काम के तुमसे पूरे पन्द्रह हजार माँगें। हवाई जहाज का किराया रोज-रोज बदलता रहता है कि नहीं? रिश्त का सिस्टम भी वैसा ही मान लो। रिश्त के भी फ्लैक्सी रेट होते हैं। ... उनके इस खुले व्यवहार से आम जन के लिए चीजें बड़ी आसान हो गई थीं। आदमी सीधे उनसे ही पूछ लेता था कि साहब हमें ये काम कराना है, इसका भाव बता दिया जाए तो हम वैसा इंतजाम करके आ जाएँ? ... एकदम दुकानदारी टाइप मामला बना दिया था साहब ने। दुकान में क्या होता है? सामान सामने रखा होता है। रेट भी सामने हैं। पैसे दो। सामान लो। निकलो। किसी भी दुकान पर आप बिना पैसे के जाते हो क्या? नहीं न? वहाँ पहुँचकर आप यह तो नहीं कहते न कि यार, हमें जे साबुन मुफ्त में दे दो? जानते हैं, कोई नहीं देगा। मार के भगा देगा। काम कराना है तो दाम तो देने पड़ेंगे न?... "बिना पैसे के आ गए तो हम तुम्हारी क्या गत करेंगे यह बात तो खुद हमें पता नहीं है। सच्ची।" ... वे लोगों से कहते। ... ऐसेई एक नादान बलम कभी इनके पास पहुँच गए थे। कहने लगे कि सरकारी काम कराने के कैसे पैसे? यह तो हमारा अधिकार है। आप तुरन्त हमारा काम करके दें क्योंकि हमारा केस एकदम कानून-सम्मत है।

सारी बात को सुनकर तहसीलदार साहब पहले तो खूब हँसे, फिर बोले कि "यार, तुम यहाँ एकदम गलत जगह आ गए हो। यहाँ कोई चुटकुलों वाला कम्पटीशन नहीं चल रहा। वो होता तो हम तुम्हारे इस चुटकुले पर स्वयं तुम्हें फर्स्ट प्राइज देते" शुरू में हँसने के बाद फिर साहब गुस्सा खा गए। गरम हो के पूछने लगे कि "तुम्हें यह किसने समझा दिया है कि नियम-कायदे के काम की रिश्त न माँगी जाएगी?" गुस्से में तमतमाकर कुर्सी से खड़े हो गए

साहब। नादान सज्जन का कंधा पकड़कर पूछने लगे, "अरे, अगर तुम्हें गर्भगृह में खड़े होकर प्रसाद चढ़ाने से ही इनकार करना था तो फिर अपने घर पर ही बैठकर भगवान का ध्यान कर लेते न। यहाँ मन्दिर में क्यों आए?"

"अभी देंगे एक चपाटा..." कहकर तहसीलदार साब झापड़ मारने ही वाले थे कि उस आदमी का एक समझदार दोस्त भागा-भागा वहाँ पहुँच गया। उसने खूब हाथ-पाँव जोड़े।

माफी माँगी। बताया कि साब, ये बेचारा एकदम सीधा-सादा आदमी है। तहसील भी पहली बार ही आया है। तहसील की हवा में पहली बार श्वास ले रहा है। इसे पता ही नहीं, यहाँ की हवा में कितना आक्सीजन है, कितना कार्बन डाई आक्साइड? नादान है। चूतिया ही मान लें।...

यह किस्सा सुनकर भी चबूतरे पर बैठे सब लोग खूब हँसे। फिर और भी अफसरों की दंत कथाएँ निकलीं। अफसरों की अफसरी, रिश्त वसूलने के हरेक के अलग तथा अनोखे तरीकों, गरीबों को लतियाए जाने के दृश्यों का ऐसे हँस-हँसकर बयान किया गया मानो समाज ने अफसरी, रिश्त, शरीफों और गरीबों की दुर्गति आदि को न केवल नियति के तौर पर स्वीकार कर लिया है, उसे इस बात पर गर्व मिश्रित आनन्द भी है कि ऐसे प्रशासन-तंत्र में भी उसके लोग कितने कौशल से जिए जा रहे हैं। सबके पास अपने-अपने किस्से थे कि कैसे उन्होंने एकदम असम्भव-सा लगता गैरकानूनी काम रिश्त देकर मिनटों में करा लिया था क्योंकि दुनियादारी यही कहाती है।

नौजवान बेचैन होकर तब से सब कुछ सुने जा रहा था। अन्ततः कसमसाकर उसने किताब बन्द कर दी और व्यंग्यात्मक लहजे में पूछा, "तो क्या सारे अफसर बेईमान ही होते हैं?"

सब लोग पलटकर उसे देखने लगे।

वह बोला, "मैं तबसे आपकी अजीब-अजीब बातें सुन रहा हूँ। ऐसा लगता है, बिना बेईमान हुए यहाँ कोई अफसरी कर ही नहीं सकता है। क्या आपने कभी कोई ईमानदार अफसर देखा ही नहीं? यहाँ हमेशा ऐसे ही अफसर आते रहे हैं क्या? अरे, ईमानदार अफसर भी तो होते हैं कि नहीं?"

सब उसका मुँह देखते रहे। ... बोल लेने दो। पेट की गैस है, जित्ती बाहर निकल जाए उत्ती बढ़िया।

अपनी बात बोलकर वह क्षोभ में भरा हुआ किताब-कागज समेटने लगा।

तब कोई उसकी बात के उत्तर में बोला, "तुमने एकदम सही कहा। क्यों नहीं हो सकता! जरूर हो सकता है। अफसर ईमानदार भी हो सकता है। जैसे कि आदमी पागल भी हो सकता है। क्यों नहीं हो सकता? बिलकुल हो सकता है।"

सब हँसने लगे। नौजवान खिसिया गया।

एक ने उसे पुचकारते हुए समझाया कि होने को तो दुनिया में कुछ भी हो सकता है। हम उसकी तो बात ही नहीं कर रहे कि क्या-क्या हो सकता है? हम तो यहाँ उसकी बात कर रहे हैं, जो है। ...तो भैया, है तो जेई; हमारी तो ऐसेई अफसरों से निभाते हुए जिंदगी गुजरी है भैया। वैसे तुम भी ठीक ही कह रहे हो। ईमानदार अफसर भी कहीं होता ही होगा। ... जरूर होता होगा। ... परन्तु सरकार ऐसे ईमानदार आदमी को कहाँ रखती है, उसको टिकट लगाकर दिखाती है कि बिना टिकट के; यह सब हमें नहीं पता। ... अलबत्ता, हमने तो कोई ईमानदार अफसर कभी देखा नहीं।

एक बुजुर्ग सज्जन ने इस बात पर तुरन्त एतराज प्रकट किया। उन्होंने कहा, "नहीं, ऐसा भी नहीं है। तुम भूल रहे हो। ...एक ईमानदार अफसर इतें भी आए तो हते। भूल गए उनको? कैसी आग मूती थी बिनने; याद नहीं?"

:

फिर वे उस ईमानदार अफसर का किस्सा सुनाने बैठ गए

पन्द्रह साल पहले यहाँ भी आए थे ऐसे एक अफसर। बड़े ईमानदार। बड़े कड़क। सब तरफ उनकी चर्चा कि एक ईमानदार नायब तहसीलदार ने ज्वाइन किया है भैया। पहले तो कोई इस अनहोनी पर भरोसा करने को राजी नहीं हुआ कि अरे, ऐसे कैसे? फिर दूर-दूर के लोग मात्र इसीलिए तहसील आने लगे कि देखें तो, ईमानदार अफसर स्साला दिखता कैसा है?... कई लोग तो अपने बाल-बच्चों को भी साथ लेकर आए कि ठीक से देख लो, ऐसी शक्ल निकल आती है ईमानदार आदमी की।

एक ईमानदार अफसर की आमद से ही यहाँ का जीवन उथल-पुथल हो गया था। रिश्त देकर ही सारे काम कराने के आदी नागरिकों के लिए वे छह माह बड़े ही कठिन गुजरे थे।

ईमानदार होकर भी कोई नायब तहसीलदार था, या नायब तहसीलदार होते हुए भी कोई ईमानदार था- इस दैवीय चमत्कार पर लोगों को तब जाकर विश्वास हुआ जब स्वयं उनका कोई काम इनसे फँस गया। ... वैसे तो उनका चपरासी ही लोगों को बाहर चेता देता था कि अन्दर रिश्त का इशारा भी मत कर बैठना वरना हमारे ये नए साहब क्या कर बैठें, उन्हें खुद नहीं पता। ... रिश्त की बात सुनकर एकदम बौखला जाते हैं नए साहब।

सबको पता चल गया कि ये तो वास्तव में रिश्त नहीं लेते ! यही नहीं, लोगों को यहाँ तक पता चला कि अपनी इस मूर्खता पर इन साहब को खासा गर्व भी है। यह बात तो और भी चिंतनीय थी। इसका मतलब यह हुआ कि ये इस मजबूरी में ईमानदार नहीं थे कि बेईमानी करने में अक्षम रहे हों बल्कि इनको तो ईमानदारी का रोग था। इनकी ईमानदारी भगंदर टाइप थी जो आदमी को न तो ठीक से बैठने दे, न लेटने।

इस तरह न केवल आमजन, तहसील कर्मचारी भी उनसे बेहद परेशान हो गए। स्साला, हर फाइल ऐसी खराब कर देता है कि फिर उसे सुधारना भी असम्भव - वे सब कहते ! अब इसकी ईमानदारी का क्या इंतज़ाम किया जाए? पूरे कोटरा में लोग चिन्तित रहने लगे थे।

लोग परेशान थे। वैसे वे आपस में सांत्वना भी देते रहते थे कि यह आदमी यहाँ ज्यादा दिन नहीं चलने वाला। सबको विश्वास था कि गवर्नमेंट इसे लम्बा बरदाश्त नहीं करेगी। स्साले की ईमानदारी का घड़ा जल्दी ही फूटेगा !... पर ऐसा नहीं हुआ। उनका ट्रांसफर किसी लूप लाइन में नहीं किया गया जैसा कि आमतौर पर ऐसों के साथ होता है। वे कोटरा में ही बने रहे। उनके रहते चहल-पहल वाली तहसील एकदम विधवा टाइप उदास तथा उजाड़ लगने लगी। रिश्त का सिंदूर माथे पर नहीं लगने से ऐसा लगे मानो आफिस का सुहाग ही लुट गया हो।

फिर?

कैसे ठीक किया जाए इन्हें? विचार-विमर्श चले।

फिर इलाके के कुछ जिम्मेदार नागरिक इनके बड़े साहब तक जा पहुँचे। उनसे प्रार्थना की गई कि आप इनको ठीक से समझा लें कि दुनिया ऐसे नहीं चलती है। ... साहब ने भी माना कि इनके द्वारा फालतू की ईमानदारी झाड़ने से तहसील का सौहार्दपूर्ण वातावरण खराब हुआ है। बड़े साहब सहमत थे कि आदमी को प्रैक्टिकल होना चाहिए। साहब ने आश्चर्य किया कि हम भी इन्हें एक दिन बुलाकर समझाएंगे। पर उन्होंने साथ में यह भी कहा कि यह आदमी बहुत टेढ़ा है। हमसे भी समझेगा कि नहीं, कहना कठिन है। इसकी रेपुटेशन बड़ी खराब है। घुन्ना आदमी है।

फिर?

फिर एक दिन साहब ने उन्हें अपने चेंबर में पिलाई। बात करने की कोशिश की : शश की: बुलाकर चाय

लिया। "यार, आप लेते क्यों नहीं?" साहब ने सीधे ही पूछ

"क्या लेना है सर?"

"वही, जो सब लेते हैं..."

"...जी सर?" वे समझे ही नहीं।

"यार, लोगों की फाइलें क्लियर करते ही हो, कुछ ले लिया करो।"

"थक जाते हैं तो चाय ले लेते हैं, सर।" वे बोले।

"तुम ऐसे ही हो, या फिर जानबूझकर चूतिया टाइप बिहेव कर रहे हो? क्यों?"

"सर, मैं तो एकदम नियम-कायदे से चल रहा हूँ।"

"क्यों चल रहे हो?"

"जी?"

"जी। ... अच्छा, अब हम तुमसे सीधे ही पूछते हैं। तुम रिश्त क्यो नही लेते?"

वे चुप रहे। मौन होकर रुआँसा चेहरा लिए साहब को देखते रहे।

"पैसे खराब लगते हैं तुम्हें?" साहब ने पूछा।

"सर, यह मेरे सिद्धांतों के खिलाफ़ है।"

"कौन-सा सिद्धांत? न्यूटन का, कि आर्किमिडीज का? यार, यह कौन-सी साइंस पढ़ ली है तुमने? तुम क्या समझते हो? हमारा कोई सिद्धांत नहीं है?"

"सर, मैं आपका कैसे कहूँ?"

"यार, सिद्धांत ऐसा हो जो थ्योरी भर का न हो, वह प्रिक्टिकल भी तो हो। तुम अपना सिद्धांत थोड़ा ठीक कर लो।"

"सर, मैं ईमानदारी नहीं छोड़ पाऊँगा। क्षमा करें।"

"मूर्खता को ईमानदारी मानने की भूल मत करो।"

नायब तहसीलदार साहब मौन हो गए। कुछ बोले नहीं। उनकी आँखें भर आईं। मुँह लाल हो गया। होंठ थरथराने लगे। चैंथी के बाल खड़े हो गए। बोले, "सर, मैं यह सब नहीं कर सकूँगा।"

साहब ने गहरी श्वास ली।

नायब तहसीलदार साहब लाल आँखें और उतरा हुआ मुँह लिए वहाँ से उठ आए। फिर, बात एमएलए साहब तक भी पहुँची। वे बोले कि भगाने को तो स्साले को हम आज भगवा दें पर इसे कोई अपने यहाँ लेने को राजी तो हो। कोई इसे लेने को ही राजी नहीं। लूप लाइन वाले तक इसे अपने यहाँ नहीं चाहते। ऐसा डिब्बा लूप लाइन की पटरी पर भी बोझ माना जाता है। वहाँ भी यह अपने बोझ से पटरी को खराब ही करेगा।

फिर?

फिर क्या, एक दिन अपनी ईमानदारी की गठरी उठाकर यहाँ से मुँह काला कर गए। लोकतंत्र है भाई। निकल गए। सरकार ने न जाने कहाँ, किस कोने में, कोई ऐसी कुर्सी खोज निकाली जो एकदम आरामकुर्सी टाइप की थी। पड़ी थी कहीं। वहीं बिठा दिया इनको। कहा कि अब तुम यहीं रहे आओ। झूलते रहो।

नौजवान ने सारी कहानी सुनी।

कहानी की शिक्षा कहीं इस नादान नौजवान को समझ में न आई हो तो वह भी उन बुजुर्ग ने विस्तार से बता दी। कहा,

"इसीलिए यह मत समझना कि सरकार में ईमानदार अफसर नहीं होते। होते हैं। खूब होते हैं। सरकारी मशीनरी में ईमानदार अफसर भी देखे जाते हैं। बस, होता यह है कि वे इस मशीन में फिट नहीं हो पाते। हरदम खड़-खड़ करते रहते हैं।"

यहाँ बुजुर्ग सज्जन थोड़ा रुके। नौजवान का मुँह देखते रहे। मुस्कुराए भी। फिर आगे बोले : "हाँ, तुम जैसे नौजवान कोई क्रांति कर डालें तो शायद कुछ हो।

"वैसे क्रांति से भी कुछ बदलता नहीं। क्रांति हो भी गई तो क्या होगा? क्रांति करने वाले भी बाद में क्रांति करने का मुआवजा वसूलने लगते हैं। हर क्रांति अन्ततः इस या उस सिस्टम में ढल जाती है। मशीन तो सबको यही लगती है न? सो तुम परेशान न हो। अभी नौजवान हो। अपना खून फालतू में ऐसे न छनकाओ। तुमाई आगे शादी-ब्याह की उम्र है। खून को सही काम के लिए बचा के रखो वर्ना शादी के बाद हकीमों के चक्कर काटते फिरोगे।"com

सब हँसने लगे। नौजवान खिसियाकर कसमसाने लगा। वह कुछ कह पाता कि तभी मुन्ना मास्साब वहाँ से तेज-तेज निकलते दिखे।

लोगों ने आवाज दी तो उनको रुकना पड़ा।

"जल्दी-जल्दी कितें खों जा रये मास्साब?" कोई बोला।

"स्कूल जा रये; इस टेम पे और कितें जाएँगे?"

"अरे, रुक के थोड़ी चाय तो पी लो हमारे साथ।"

"नहीं, आज तो बिलकुल भी टेम नहीं है भैया।"

"अरे, ऐसी क्या जल्दी मची है? टेम पे पोंच के कौन-सा किसी लड़के को विद्वान बना दोगे?"

"उन्हें विद्वान बनाने की स्कूल में व्यवस्था अलग से है। वो बात नहीं है।"

"फिर बैठो न।"

"नहीं, हम बैठ न पाएँगे।"

"काय? नीचे कछू हो गओ का?"

सब हँस पड़े।

"आप हमारे नीचे की चिन्ता न करो। उतें सब दुरुस्त है। हमें अभी पंडिज्जी के साथ कालपी जाना है। पंडिज्जी भी पहुँच रहे होंगे।"

"कालपी? काये के लाए?"

"नए शिक्षाधिकारी आए हैं। अभी-अभी ज्वाइन किए हैं। उनके दर्शन करने जाएंगे पंडिज्जी। हम साथ में।"

"भौत ईमानदार अफसर तो नहीं हैं न?" किसी ने पूछा।

सब लोग नौजवान की तरफ देखकर हँसने लगे। वह और भी खिसिया गया।

मुन्ना मास्साब हँसी का कारण तो नहीं समझ पाए परन्तु हँस दिये। ईमानदारी का जिक्र आया है तो जरूर कोई मजाक की ही बात रही होगी- यह मानकर हँस दिये मुन्ना मास्साब।

"ईमानदार तो नहीं, कड़क हैं- ऐसा कहते हैं।" मुन्ना मास्साब ने कहा।

"कड़क अफसर को मुलायम करने का टोटका खूब जानते हैं अपने पंडिज्जी।" किसी ने कहा।

"वो तरीका तो पूरा हिंदुस्तान जानता है भैया। अफसर को मुलायम करने का एक ही तरीका पूरे हिंदुस्तान में चलता है; गांधीवादी तरीका। जेब में कड़क कागज वाले गांधीजी हों तो सब मुलायम हो जाते हैं।" कोई और बोला।

सब फिर से हँसे।

नौजवान सिहर गया। ... रोने की बात पर कोई कैसे हँस सकता है?

नौजवान मुन्ना मास्साब को जाता हुआ देखता रहा।

उसने भी तो इसी कॉलेज में नौकरी के लिए आवेदन दे रखा है। क्या वह भी एक दिन इन जैसा ही हो जाएगा? नौजवान के शरीर और मन में झुरझुरी-सी उठ गई।

चबूतरे पर फिर से किसी बात पर सब लोग हो-हो करके हँस रहे हैं।

मर्डर का आमंत्रण

"काय भैया, कल थोड़ी फुरसत है?"

"तुमाए लाने तो हरदम फुरसत है। ... बोलो?"

"थोड़ा-सा एक मर्डर करने चलना था।"

"कल?"

"हओ कल, क्यों?"

"यार, हमें थोड़ा पहले तो बताते।"

"हम कोई बारात में जाबे की कह रहे हैं क्या? मर्डर के लिए तुम्हें कौन-से पैट-कोट प्रेस कराने हैं?"

"अरे, वो बात नहीं है।"

"फिर?"

"असल में कल हमारा पहले से ही एक प्रोग्राम बना हुआ है..."

"... कैसा प्रोग्राम?"

"एक गवाह की ठुकाई करनी है।"

"तो उसे परसों ठोंक लेना?"

"परसों तो उसकी पेशी ही है भैया। कल न ठोंका तो परसों तो स्साले की गवाही भी हो जाएगी।"

"ऐसो कौन-सा केस है?"

"मर्डर का केस है। मामाजी फँसे हुए हैं।"

कौन, अपने चिम्मन मामा?"

"बे समझो।"

"अरे।"

"वोई तो। समझ सकते हो न? ममियारे तरफ का मामला है।"

"फिर?"

"तो तुम परसों कर लो न। जरा-सा मर्डर ही तो है; परसों कर लेंगे।"

"फिर भी, कल का ही कुछ हो जाता तो..."

"...यार, कल की जिद छोड़ दो न भैया। अगर कल हम न पहुँचे तो मामाजी जिन्दगी भर को बुरा मान बैठेंगे। वैसे भी, आजकल बे हर बात को सीधे दिल पे ले लेते हैं। उमर हो गई है न; बोलेंगे कुछ नहीं, बस, मूँ बना के बैठ जाएंगे। ... समझा करो।"

"तो फिर परसों का तो पक्का न?"

"हओ, एकदम्म पक्का।"

"यार, फिर तुम परसों कोई गड़बड़ न करियो। वो स्साला नौकरीपेशा आदमी है। चार दिन की छुट्टी लेकर कोटरा आया हुआ है। अभी उसका मर्डर न हुआ तो स्साला फिर से निकल जाएगा।"

"मर्डर करवाने के लिए भी छुट्टी का प्रावधान हो गया है आजकल? जे स्साली, भौत बढ़िया नौकरी है यार, क्यों सगे?"

दोनों हँसने लगे।

"चलिए। फिर परसों चलते हैं। हमें तुम चौरसिया की दुकान से उठा लेईयो। ... वैसे, तुमाई मोटरसाइकिल तो ठीक चल रही है?"

"ऐन फरटि से दौड़ रही है।"

"तब ठीक। और, पेट्रोल पूरा भरवा लेईयो भैया। जे न हो रा भरवा लेईयो भैया कि इतें तो हम मर्डर करके भाग रहे हैं, उतें चार कदम पे गाड़ी का तेल खत्म हो जाए।"

"अरे, ऐसा न कहो राजा। मर्डर को जाना हो, न जाना हो, टैंक हमेशा फुल ही रहता है हमारा।"

"अच्छी आदत है। ... अच्छा, एक बात और बताओ। उसे मारना भर है कि लूटपाट का भी कछू संयोग बनेगा?"

"नहीं, मार के तुरन्त निकल लेना है।"

"फिर ठीक। तुम अपना भी कट्टा रख लेना। हमारा तो है ही।"

"जे भी कोई कहबे की बात है? कट्टा तो हम चौबीसों घंटे अपने पास रखते हैं। ... टट्टी भी जाएँ तो हमारा कट्टा लोटे के पास ही धरा रहता है।"

"चलता भी है कि बस दिखावे का है?"

"सटीक चलता है। ...क्यों?"

"नहीं, हमने सोची कि लोटे के बगल में धरते हो तो कभी उसमें पानी-बानी न घुस गया हो।"

दोनों हँसने लगे।

"हमारा भी जेई है। किसी को जूता मारने भी जाना हो तो जेब में कट्टा रख के ही जाते हैं।" वे बोले।

"वोई तो, भैया, धरना पड़ता है। सब तरफ बैरी घूमते हों तो आदमी के पास कट्टा तो चइए। मान लो कि टट्टी करते में ही कोई मारबे खों आ जाए तो उससे जे थोड़ेई कहोगे कि हमें अपनी धो-धवा के जरा कट्टा ले आने दो।"

दोनों देर तक ठठाकर हँसते रहे।

फिर वे उठकर जाने लगे।

इन्होंने जाते-जाते, आवाज़ देकर उनसे एक बात और साफ़ करने का निवेदन किया, पूछा, "मारना कब है? रात में कि दिन में? घर में कि बाहर? सड़क पे कि खेत में?"

"यार, तुम तो ऐसे पूछ रहे हो मानो हिरनाकश्यप को मारना हो। उसे कोई वरदान नहीं मिल रखा है भैया; जितें मारोगे, मर जाएगा।"

"पर तैयारी के लाने तो जे सब जानना जरूरी होता है भाई साब, कि नहीं?"

"कैसी तैयारी यार? रात में मर्डर करें तो क्या गैसबत्ती लटका के चलोगे?"

"वो बात नहीं है सगे। जैसे कि अगर दिन में मर्डर हो तो मूँ पे ढट्टी बाँधोगे कि नहीं?"

"कायदे से, वो तो रात में भी बाँधनी चइए भैया।"

"सो तो है। वैसे, बाहर ही मारना है?"

"खेत पे टपकाएँगे स्साले को।"

"चलते हैं फिर..."

"...हओ, तुम चलो।"

दोनों विदा हुए।

यहाँ पाठकों के मन में प्रश्न उठ सकता है कि आखिर कौन हैं ये लोग, और यह बातचीत आखिर कहाँ हो रही है?

महत्त्वपूर्ण यह नहीं कि ये कौन लोग हैं जो मर्डर करने की बात इतनी सहजता से कर रहे हैं? और ऐसी बातें यहाँ सब तरफ़ हो रही हैं; ऐसी, या इस जैसी ही। मर्डर न सही तो 'सिर खोलने' की बातें। टाँगें तोड़ डालने की बात। 'पटक-पटक के' मारने के मंसूबे। घर से 'घसीट के' निकालने की बातें। जूते मारने की योजनाएँ। घर के मारने के दावे। पेट में 'रामपुरी पेलने' की धमकियाँ। एक लप्पड़ में 'मूँ तोड़' कर रख देने की बातकही। इलाका ऐसा है जहाँ मारपीट से लेकर मर्डर तक, सब कुछ सहज क्रिया मान ली गई है। समाज ने स्वीकार-सा कर लिया है कि यह सब तो होगा ही। ... किसी को अब इन बातों पर गुस्सा, हैरानी या विरोध करने जैसा कुछ नहीं लगता। ... यह सब तो चलता है भाई। चलेगा ही। मर्डर होते रहते हैं भाई साहब, इसमें ऐसा क्या है? किसी का भी हो सकता है। कोई भी कर सकता है। अरे, हो गया होगा। ज़रूर, कोई बात रही होगी। खुद को ही बच के चलना चाहिए भाई साहब। ज़माना ठीक नहीं। कहीं कुछ देखो भी तो चुपके से निकल लो वहाँ से।

"भौत दिनों से अपने योगेश भैया नहीं दिखे... कहीं बाहर गए हैं क्या?"

"अरे, तुम्हें पता नहीं?"

"क्यों क्या हुआ?"

"उनका तो मर्डर हो गया, अब के जलबिहार मेले में। चकरी वाले झूला पे पहले चढ़बे के चक्कर में दबंगों से विवाद कर बैठे।"

"अरे!"

"तुमको पता नहीं चला?"

"अरे, हम खुद चले गए थे कानपुर। वहाँ चाचाजी को किसी ने चक्कू मार दिया था। सिनेमा हाल में उनकी थोड़ी-सी बहस हो गई। पीछे बैठे लौंडे बातें कर रहे थे। हँसी-ठट्टा कर रहे थे। चाचाजी ने उनसे बस इत्ता कहा कि चुप रह के फिल्म देखी जाए। लौंडे बोले कि फिल्म चल रही है कि स्कूल की क्लास?... चाचाजी गरम होने लगे। लौंडों ने उन्हें पीछे से चक्कू मारा और निकल गए।"

"बच तो गए न?"

"हाँ, बच तो गए। ... डाक्टर बता रहे थे कि चक्कू दो इंच और घुस जाता तो उनका दिल निपुर जाता।"

"पीछे से चक्कू मारबे में अक्सर ऐसा हो जाता है। निशाना सटीक नहीं चल पाता।"

तो ऐसा है साहब, इधर का तो। यहाँ कोई दो दिन भी दिखाई न दे तो पहला डर यही लगता है कि कहीं इनका मर्डर न हो गया हो। वैसे दूसरा डर यह भी लगता है कि भाई साहब खुद तो किसी केस में फरार नहीं हो गए हैं? इसीलिए यहाँ अमूमन हथियार लेकर चला जाता है। ऐन मौके पर आप किसी से माँग तो नहीं सकते न कि भाई साब, तनिक अपना चक्कू देंगे क्या, हम थोड़ा-सा मार के आते हैं!

अब यहाँ आप कानून का प्रश्न उठा के मत बैठ जाइएगा। कानून की फोटू देखी है न आपने? न्याय की? अरे वही, जिसमें वह अपने एक हाथ में तराजू लिये और आँखों पर पट्टी बाँधे खड़ा रहता है? कानून की यही धज यहाँ सबको बड़ी भाती है। लोगों ने इसके तराजू के पलड़े गायब कर दिये हैं। कानून भी खुश है कि जैसा, जिस स्थिति में है, कम से कम, है तो! कहने को ठीक रहता है कि हमारे यहाँ भी कानून है। कानून का राज है। वैसे, अपराधी पकड़े भी खूब जाते हैं। फिर छूट भी जाते हैं। गवाह मिलते नहीं। गवाही यहाँ केवल व्यक्तिगत दुश्मनी निकालने के लिए दी जाती है बस, वरना इसे एक सामाजिक अपराध भी माना जाता है। ... उनकी उन्हें निबटने दो न यार, तुम काहे गवाही-फवाही के फेर में पड़ गए हो? उनका मामला है। वे जानें, उनका काम जाने।

युँ तो लोगों का कानून पर विश्वास भी है। मुकदमे भी चलते हैं। लम्बे चलते हैं। चलते ही चले जाते हैं। अटके रहते हैं। रुके रहते हैं; ठीक किसी पैसिंजर ट्रेन की तरह जो जंगल में बेवजह रुकी पड़ी हो और ड्राइवर तथा गार्ड भी न बता सकें कि ख़िर यह रुकी क्यों है?

वैसे, लोग भी परवाह नहीं करते। केस अदालत में पड़ा है तो पड़ा रहे स्साला। हमें क्या करना? लोग यहाँ अदालत या कानून के निर्णय की प्रतीक्षा नहीं करते; वे अपना निर्णय स्वयं करते हैं। समाज ऐसे लोगों की यहाँ बड़ी इज्जत भी करता है जो अपराधी को खुद सजा दे दें। बड़ा मान है उनका। आन-बान-शान का मामला होता है यहाँ अपराध। ... मर्डर हुआ है। अदालत में केस है। मारने वाले जेल में हैं। देखियो, तगड़ी सजा होगी। ... पर कब होगी? तब तक तुम ऐसेई हिजड़ों टाइप बैठे रहोगे क्या? बाप तुम्हारे मरे हैं कि जज साब के? अरे, सजा तो तुम्हें देनी चाहिए थी और तुम नामर्दों जैसे जज साहब के लिए बैठे हो? इत्ती फट रही है क्या? जो लोग अदालत द्वारा अपराधी को सजा दिये जाने की प्रतीक्षा में धैर्यपूर्वक बैठे हैं, समाज उन्हें कायर मानता है। ... हिजड़े हो क्या बे? ... देखो रे, जे जा रहे हैं अपनी माँ के लाल ! इनके बाप के दो टुकड़े करके फेंक गए थे बे, और जे ऐसे पनसाखा कि नपुंसक की घाई जज्जी के चक्कर काट रहे हैं। ... स्साले को खुद मारो न। वो जेल में है, तो? उसके परिवार के इत्ते लोग तो बाहर, छुट्टा घूम रहे हैं। चाचा, ताऊ, मामा... मारो न स्सालों को। या जेल में घुस के उसे ही मार के आओ न। ऐसेई पिल्लों घाई कब तक दुबक के घूमोगे? ऐसेई जज साब के सामने कब तक घिघियाते रहोगे कि हमारे बाप के हत्यारों को कड़ी से कड़ी सजा दी जाए मी लार्ड? यार, गांडू हो क्या? खुद के कल्ले में दम नहीं क्या? अपना बदला खुद ही लो न।

तो क्या सारा समाज ऐसा हो गया था?

क्या अपराध की स्वीकार्यता और महिमामंडन यहाँ की सामाजिक संरचना का अंग हो चुका था? क्या शराफ़त के लिए इसमें कहीं कोई जगह नहीं रह गई थी?... इसका उत्तर 'न' भी था, और 'हाँ' भी। कानून का पालन करने वाले भी यहाँ खूब थे, बल्कि हज़ारों थे। इतने थे कि इनकी बलैया लेने को आपका मन उतावला हो उठे ! शरीफ़ लोग ढेर सारे थे; पर वे थे मात्र, इससे ज्यादा कुछ नहीं। वे चुप रहते थे। किसी के पचड़े में नहीं पड़ते थे। किसी विवाद में नहीं थे। किसी को टोकते नहीं थे। दृश्य प्रतिकूल लगे तो आँखें मींच लेते थे। घटनास्थल को भाँपकर दूर से ही निकल जाते थे। गाली का जवाब देने से कतराते थे। कमीनों को सलाम और दबंगों की जुहार करते थे। कहते थे कि भैया, हम शरीफ़ आदमी हैं; न किसी के लेने में, न देने में। ऐसा करके वे न जाने क्यों ऐसा सोचते थे कि वे सुरक्षित हैं। ... पर यह सच नहीं था। वे अक्सर कुट-पिट भी जाते थे। वे इससे भी लात खाते और उससे भी। लात लगाने वाले लोग यही कहते कि स्साला, खुद को बड़ा शरीफ़ गिनता है। ... कुछ शरीफ़, इस चक्कर में कमीने हो

गए थे वर्ना तो ज्यादातर शरीफ़ अपनी शराफ़त को एक ठीक न हो पाने वाले घाव की भाँति चाटते हुए बैठे रहते थे।

यहाँ बदमाशी की कद्र थी। बदमाशों का बड़ा मान था। शराफ़त यहाँ अकर्मण्यता मानी जाती थी। शराफ़त के लिए हाथ-पाँव नहीं हिलाने पड़ते हैं, बस, पड़े रहो। चुप बैठो। न तो कुछ बोलो, न आवाज़ उठाओ। किसी की तीन-पाँच में न पड़ो। अकर्मण्य आदमी आसानी से शरीफ़ हो जाता है। इसके ठीक उलट बदमाशी ऐसी आसान चीज़ नहीं। इसे करने के लिए पहले तो आपको अपनी खटिया छोड़नी पड़ती है। खटिया पर पड़े-पड़े आप किसी का सिर नहीं फोड़ सकते। सिर फोड़ने के लिए दौड़-भाग करनी पड़ती है, डंडा चलाना पड़ता है, मौके से भागना पड़ता है। इसमें बड़ी मेहनत लगती है। इसके बरअक्स शराफ़त बड़े आराम का काम है। लेटो। बैठो। टिको। पाँव फैलाओ। जम्हाइयाँ लो। आँखें मूँदो। डकार लो। और बिना हाथ-पाँव डुलाए शराफ़त भी झाड़ते रहो। कोटरा में ऐसे शरीफ़ खूब थे। आम राय यह थी कि ये बिल्ली के गू टाइप हैं-न लीपने के हैं, न पोतने के। बस, पड़े हैं। पड़े रहते हैं। पड़े रहने दो।

लोग शरीफ़ों पर तरस खाते। ... छोड़ो, बेचारे शरीफ़ हैं। शराफ़त बेचारगी का पर्याय भी मानी जाती। लोग शरीफ़ आदमी पर आश्चर्य करते कि ख़िर चक्कर क्या है? यह आदमी आज तक कामचलाऊ बदमाशी भी क्यों नहीं सीख पाया? वास्तव में, यह शराफ़त है कि कोई दिमागी कमज़ोरी? बचपन में कभी सिर के बल गिरे तो नहीं थे? पैदाइश के टेम पर दाई के हाथ से फिसलकर खुपड़िया के बल टपक गए थे क्या? पेट में थे तब माँ ने कुछ ऐसा-वैसा तो नहीं खा लिया था? बचपन में इन्हें आयोडीन वाला नमक नहीं मिल पाया क्या? ओखर, कुछ तो वजह होगी ऐसी शराफ़त की?

कोटरा में शराफ़त की जगह धीरे-धीरे सिकुड़ती चली गई है।

मर्डर करने वाले इनको कभी नहीं मारते। कहते हैं कि मरे को मारा, क्या मारा!

सिद्धांतवादी का इलाज

शौकिया अपराध, मारपीट, सिर फोड़ना, हड्डि चटका देना, घर में घुस के मारना, खानदानी बदला लेना और जाति-उपजाति-गोत्र आदि की मान-मर्यादा के नियत नियमों की अनदेखी करने वालों की अक्ल ठिकाने लगा देना के वायुमंडल में श्वास लेता है कोटरा। इसी हवा में वह खुश भी है। खुश न भी हो, दिखता तो खुश ही है। और इसी वायुमंडल का एक टुकड़ा विपिन बिहारी इंटर कॉलेज के इस कोने तक आया हुआ है। कॉलेज के पी.टी. ग्राउंड के इस कोने में ऐसी ही हवा बह रही है। दसवीं से बारहवीं कक्षा के बीच के कोई चार युवक, जो अभी स्कूल ड्रेस में न होते तो यह बता पाना असम्भव था कि ये छात्र हैं या लफंगे, एक घेरा बनाए खड़े हैं। उनकी आँखों, चेहरे तथा शरीर के हावभाव में जो है वह तब जाकर आता है जब कोई तीन-चार सालों से लगातार मारपीट, जूतमपैजार, अड़ीबाजी, लड़कियों से छेड़छाड़ कर करके थक चुका हो और अब चक्कू, तमंचा और थाना कचहरी के अरमान बना रहा हो।

इन लोगों के घेरे के बीच में अपोली खड़े हैं।

अपोली की संटी-सी लफ़ती काया, पतली कमर तथा दस्तावर-टाइप के बमखटाखट शरीर में अभी बला का जोश दिख रहा है। वे इस कॉलेज के मैनेजर हैं। कॉलेज उनके बाप का है। यहाँ के सारे ग्रह उनके बनाए हुए मार्ग पर ही घूमें, वे यह छोटी-सी बात चाहते हैं। ज्यादातर घूमते भी हैं। एकाध अपनी निर्धारित कक्षा से छिटकता, भटकता है तो उस पर वे कड़ी निगाह रखते हैं। उनकी मिचमिची आँखों में चालाक चुस्ती है।

अपोली गंभीरतापूर्वक निर्देश दे रहे हैं चारों लड़कों को :

"बस, दो-चार लप्पड़ मार के छोड़ देना। ठीक?... जे न हो कि जोश में आ के तुम उनकी कोई हड्डी-फड्डी तोड़ दो। ऐसा बिलकुल न करना। फालतू का तमाशा खड़ा हो जाएगा। अपना काम तो बस, दो लप्पड़ से ही हो जाएगा। हाँ,

उनकी शर्ट-वर्ट फाड़ सकते हो। एकाध बार धूल में दचक भी सकते हो। ... पर बस, इत्ता ही। इससे ज्यादा कुछ नहीं। और उसे ऐसे स्थान पर ठोको कि सब उसे ठुकता देख लें। ऐसा आदमी बेइज्जती से बड़ा घबराता है। सिद्धांतवादी का येई इलाज है कि स्साले को ऐन पब्लिक के बीच लतिया दो। इसी में वो सारे सिद्धांत भूल जाता है। तो उसे लतियाना भर है। और कुछ नहीं करना है। ... और तुम, गजेन्द्र ! तुम स्साले, नन्हे मास्साब को चक्कू-वक्कू न मार देना रे। बस, दो लप्पड़ मारने हैं और जे बात समझानी है कि बेट्टा, मास्टर हो तो मास्टर जैसे रहो। ... पंडिज्जी के खिलाफ तुम जो इतें-उतें फड़फड़ा रहे हो न सो कल से एकदम बन्द कर दो; इत्ती धमकी देना है, बस। इत्ते में ही अपना काम बन जाएगा। ... ठीक?"

छात्र आज्ञाकारी हैं।

"कल ही ठोंक देंगे, आप बिलकुल चिन्ता न करें।" गजेन्द्र ने ही कहा।

"ऐसी जल्दी भी नहीं है। कभी भी ठोंक दो। कल नहीं, तो परसों, कभी भी। बस, ठोंक दो तो आ के हमें बता जरूर देना। ... फोन पर न बताना। खुद आ के बताना कि काम कर दिये हैं। ठीक?"

"जी", सबने कहा।

एक जूते की अभिलाषा

जूता बहुत दिनों से चला नहीं था।

उस तरह से तो चला था कि पाँव में फँसकर इधर-उधर हो आए पर यहाँ उस चलने की तो बात ही नहीं हो रही। बात दूसरी है। जूते की अभिलाषा है कि कभी हम भी वैसे चलें जैसा चलने के लिए ईश्वर ने हमें यह जूता जन्म दिया है। कभी हम भी अपने मालिक के हाथों से चलें। कभी हम भी किसी की खोपड़ी पर बजें। कभी हमें भी भिगोकर किसी को मारा जाए। कभी हम भी शस्त्र बनें। कभी हम भी अस्त्र बनें। कभी कोई हमें भी फेंककर किसी को मारे। कब तक हम यूँ ही शरीफों की भाँति सड़क पर चलते रहेंगे? खिर कब तक?

कोटरा के उस जूते के दर्द को भी समझें जो एकमात्र जूता ही बनकर रह गया। उसकी भी कुछ आकांक्षाएँ हैं। उसकी अभिलाषा है। वह चाहता है कि कोटरा के जूतों के बीच उसकी भी इज्जत हो।

पता नहीं कब, वह भी शान से चलेगा?

जूता अपने मालिक पर शर्मिंदा है। यह मुझे बस, पहिनकर घूमता रहता है। कभी मुझे चलाता ही नहीं। कम से कम इस स्साले को तो जूता पड़ना ही चाहिए।

शिक्षा के खंडहर की पुताई

कोटरा की बाहरी सीमा पर 'विपिन बिहारी इंटर कॉलेज' का बड़ा-सा अहाता है।

यही पंडिज्जी का कॉलेज है। पढ़ाई इंटर तक की ही है परन्तु कहलाता यह कॉलेज है।

पच्चीस साल से पंडिज्जी कोटरा में यह कॉलेज चला रहे हैं। पिता के नाम का एक ट्रस्ट बना रखा है उन्होंने। ट्रस्टी घर के लोग ही हैं। एक मैनेजमेंट कमेटी भी है। उसमें भी घर जैसे लोग ही हैं। पंडिज्जी ट्रस्ट के आजीवन चेयरमैन हैं। कहने को कॉलेज संचालकों की एक समिति भी है। इसके सदस्यों का नियमित चुनाव भी होता है। अलिखित

नियम यह है कि वे ही लोग सदस्य तथा संचालक बनते हैं जो पंडिज्जी की टाँग के नीचे से निकलकर कुर्सी तक पहुँचने को तैयार हों। कॉलेज को ठीक-ठाक-सा सरकारी अनुदान मिलता है। सरकारी अनुदान का वही खुला खेल यहाँ भी चलता है जैसा सरकारी अनुदानों का पूरे देश में चलता है। मास्टर्स को नौकरी में रखने, निकालने से लगाकर बिल्डिंग रिपेयर फंड तक की अनुमति यहीं कमेटी देती है। वैसे, कमेटी को यह मेहनत भी नहीं करनी पड़ती। पंडिज्जी यह सब काम कर लेते हैं। कमेटी का काम पंडिज्जी के सफेद कागज पर हस्ताक्षर करके उसे कानूनी जामा पहिनाना होता है। पंडिज्जी भी सबका खयाल रखते हैं। सबको कुछ न कुछ मिल जाता है। पंडिज्जी का दिमाग इत्ता पेचदार है कि सिस्टम की सीधी कील भी उसमें से ऐसा घुमावदार पेच बनकर निकलती है कि फिर वह पेच सरकार के हर सिस्टम में घुस सकता है। पंडिज्जी के पास सरकारी मशीनरी की पूरी डिजाइन का नक्शा रखा हुआ है। कौन-से पुर्जे में कितना तेल, कितने कितने दिनों के अन्तर पर डालना पड़ता है, उन्हें यह सब सहज ही पता है। कौन-सी कुप्पी का तेल किधर लगेगा यह भी वे जानते हैं। सरकार के शिक्षा विभाग पर उनकी इस मायावी पकड़ के सब कायल हैं। किसी को वे गर्दन से पकड़ते हैं, और किसी के चरण। सरकार की शिक्षानीति में कभी कोई पुर्जा खड़खड़ करने लगे तो पंडिज्जी घबराते नहीं।

ऐसे पुर्जे की मरम्मत और समुचित तेलपानी से लेकर उस पुर्जे को बदलवाने तक के जादूगर हैं वे। इसी के लिए पूरी कमेटी में बड़ा मान है उनका। कोटरा की शान हैं वे। कम से कम, इंटर कॉलेज वाले तो यही कहते हैं। इसी चैयरमैन के बूते वे लोकल राजनीति में भी विकट सक्रिय हैं; राजनीति के सहारे कॉलेज चला रहे हैं या कॉलेज के कारण उनका राजनीतिक कद है - यह बहुत स्पष्ट नहीं है। यूँ भी दोनों ही कामों में बड़ी राजनीति लगती है। वे इलाके के सवर्णों के एकछत्र नेता हैं परन्तु उन्होंने इसी राजनीति के तहत पिछड़ों के लिए कॉलेज में विशेष सुविधाएँ भी दे रखी हैं। पिछड़ों की राजनीति की काट ऐसे ही करनी होती है।

विपिन बिहारी इंटर कॉलेज के प्रति उनका समर्पण सबको पता है। लोकचर्चा यही रहती है कि ऐसा कॉलेज चलाने के लिए, और कॉलेज को ऐसा चलाने के लिए बड़ा हरामी आदमी चाहिए। पंडिज्जी अपने बाप की सच्ची औलाद हैं। बाप महाहरामी थे। एक ज़माने में विपिन बिहारी दीक्षित का नाम कोटरा की राजनीति से लेकर थाने के एफआईआर रजिस्टर तक में बड़े आदर से दर्ज रहता था। सब यही कहते थे कि कभी इस हरामी से मत भिड़ जाना। वही परम्परा अब भी चल रही है।

कॉलेज अहाते के चारों तरफ ईंट की दुबली-सी बाउंड्रीवाल है जिसका पलस्तर किसी बूढ़े के दाँतों-सा झर गया है। पोपली सी दीवार किसी तरह बस खड़ी है। बाउंड्रीवाल के इस तरफ कोटरा में प्रवेश करती ऊबड़-खाबड़ सड़क है। सड़क और बाउंड्री के बीच कच्ची ज़मीन है जिस पर झाड़-झंखाड़ उगे हुए हैं। बाउंड्रीवाल के उस तरफ कॉलेज का मैदान है। बड़ा-सा मैदान। सड़क से निकलकर एक रास्ता बाउंड्री से होकर कॉलेज में अन्दर आता है जो मैदान को पार करता हुआ दूर वहाँ खत्म होता है, जहाँ एक चबूतरा-सा बना है। इस गोल चबूतरे पर एक खंभा गड़ा है। यहीं राष्ट्रीय पर्वों पर तिरंगा झंडा फहराया जाता है। इस खंभे से कुछ दूरी पर बहुत से कमरे बने हैं और एक लम्बा बरामदा है। बस, यही कॉलेज है। एक पंक्ति में बने हुए बहुत सारे कमरे। रेल के

डिब्बों जैसी इमारत, मानो शिक्षा की पैसिंजर खड़ी हो; आज तक यह तय नहीं हो सका है कि यह पैसिंजर चलने को तैयार खड़ी है, या फिर बिगड़कर यार्ड में खड़ी कर दी गई है!

इसी इमारत के सामने, अभी बेतरतीब ढंग से यहाँ-वहाँ, दस-बारह मोटरसाइकिलें खड़ी हुई हैं। ये मास्टर लोगों की गाड़ियाँ हैं। अभी शाम का समय है। कॉलेज खत्म हुए आधा घंटा हो चुका। छात्र लोग घर जा चुके हैं। टीचर भी एक-एक करके निकले जा रहे हैं। कुछ लोग अभी भी स्टाफ रूम में कॉलेज राजनीति चलाते हुए बैठे हैं। वे लोग भी थोड़ी देर में निकल जाएंगे। पंडिज्जी बस, कभी-कभी ही कॉलेज आते हैं। इधर एक कमरा है उनका। आज आए थे। अन्दर बैठे भी रहे। सारे स्टाफ ने कमरे में जाकर पंडिज्जी पालांगी का कर्तव्य भी निभाया। वे अभी निकले ही हैं और निकलते-निकलते बाहर बाउंड्रीवाल के गेट के पास रुक गए हैं। बाउंड्री के साथ की कच्ची ज़मीन पर एक ट्रैक्टर झाड़ियाँ उखाड़ रहा है।

ट्रैक्टर देखकर मोटरसाइकिल रोक ली पंडिज्जी ने। थोड़ी देर तक चुपचाप ही देखते रहे वे ट्रैक्टर को।

कॉलेज की बाउंड्री के साथ-साथ दूर तक झाड़ियाँ उग आई हैं। पूरी बाउंड्रीवाल ही ढक गई है, यहाँ-वहाँ। ये झाड़ियाँ 'स्कूल का शो' खराब करती हैं, ऐसा मानना है पंडिज्जी का। एक बार बढ़िया से इस पर ट्रैक्टर घुमा के सबको निकलवा दिया जाए-ऐसा प्लान रहा है उनके मन में। कई दिनों से है। सभापतिजी को इसके लिए कह भी रखा था। दूरअसल, ग्रामसभा के पास एक ट्रैक्टर है। एक महीने से पंडिज्जी उनके पीछे लगे हैं कि वे अपना ट्रैक्टर यहाँ भेज दें। आज जाकर भेजा है। ... हरामी हैं स्साले। ग्रामसभा पिछड़ों के हाथ में है। कभी किसी सवर्ण का काम फँसे तो कटी उँगरिया पर भी वे लोग बस दो बूँद ही मूतेंगे, वह भी काँख काँख के। अभी उनका ही ट्रैक्टर बाउंड्री के साथ चलता हुआ झाड़ियाँ उखाड़ रहा है। एक आदमी ट्रैक्टर पर है। एक पीछे खड़ा होकर ड्राइवर को दिशा बतला रहा है। कुछ दूर तक बाउंड्री साफ भी हो गई है। पंडिज्जी ने साफ निकल आई इस बाउंड्री को बड़े प्यार से देखा।

"बढ़िया।" वे बोले और मोटरसाइकिल पर अपने पीछे बैठे मास्टर की तरफ मुस्कुराकर देखा उन्होंने। मास्टर को किसी काम के लिए पीछे बिठाकर घर ले जा रहे हैं पंडिज्जी।

"जी महाराज।" मास्टर पिछली सीट से उतर गया।

"सारी झाड़ियाँ एक बार बढ़िया से साफ हो जाएँ तो अपनी जे बाउंड्री एकदम चकाचक निकल आए। देखिएगा, कॉलेज का जलवा हो जाएगा। क्यों, है न?"

"जी काफी पंडित हैं।"

"वाह!"

"जी।"

पंडिज्जी मोटरसाइकिल मास्टर को पकड़ाकर ट्रैक्टर की तरफ चल पड़े। इस चक्कर में उन्हें कच्चे में उतरना पड़ा। उनको आते देखा तो ड्राइवर ने ट्रैक्टर रोककर पालांगी की। नीचे खड़े कर्मचारी ने पास आकर पंडिज्जी के पाँव छूने की भंगिमा में उनके घुटने छुए। पंडिज्जी ने दोनों हाथ को उठाकर आशीर्वाद दिया; जब तक ये लोग पाँव छू रहे हैं बड़ा सुरक्षित और अच्छा लगता है।

"बेटा, बस ऐसेई लगन से बाकी की झाड़ियाँ भी साफ करनी हैं।"

"वोई कर रहे हैं पंडिज्जी।"

"करो, करो। भौत बढ़िया। ... स्साली, पूरी बाउंड्री ढक गई है। देखना, एक बार तुमने जे झाड़ियाँ हटाईं तब तुम खुद देखना-कॉलेज कैसा झकाझक लगेगा।" पंडिज्जी ने कहा तो वे दोनों कॉलेज की तरफ देखकर मुस्का दिये।

"हँस काय रये? कोई बेजा बात कह दी हमने?" पंडिज्जी ने मुस्कान पकड़ ली।

"वो बात नहीं है पंडिज्जी।"

"तो कछू और होगी, क्यों? तुम हँसे क्यों?" पंडिज्जी ने आँखों में आँखें डालकर पूछा।

"हम तो जे कह रहे थे कि अकेले झाड़ियाँ उखड़वाने भर से काम न बनेगा मालिक..."

"...फिर? सब जगह ताजमहल जैसा संगमरमर लगवा दें?"

"पत्थर का बोझ सहन न कर पाएगी जे। पुरानी बिल्डिंग है। ... आप तो बस, एक बार इसे ठीक से पुतवा दें। पूरी बिल्डिंग पुताई माँग रही है महाराज।"

“माँग तो वो न जाने क्या-क्या रही है। हमारे पास कुछ हो तब न हम उसे कुछ दें?”

“जब कोटरा के मालिक लोग ही ऐसी बात कहेंगे तो...” “... भैया, मैनेजिंग कमेटी का खीसा है एकदम खाली और इसी खाली जेब से हमें सारा जलवा खेंचना है; जित्ता खिंच जाए।”

“खिंचेगा मालिक...”

“...हमें पता है, खिंचेगा। हम खेंचेंगे न! तुम तो अपना काम बढ़िया कर जाओ, बस। ... उतें देखो, वो उतें उतें की झाड़ियाँ ऐन घनी हैं।”m

“उतें ट्रैक्टर न डाल पाएँगे मालिक। ऐन ढलान है उतें। ट्रैक्टर पलटी मार सकता है।”

“ऐसे कैसे यार?”

भौत ढलान है पंडिज्जी। ... उतें की झाड़ियाँ निकालने के काम पर अपने मास्टरों को लगा दो न पंडिज्जी?”

“मास्टर वैसे भी कॉलेज में घास ही छील रहे हैं। और कितनी छिलवाएँ उनसे? तुम तो जे काम भी कर जाओ भाई।”

“एकदम टीला है मालिक। जे टीले वाली झाड़ियाँ न हट पाएँगी हमसे। कहीं ट्रैक्टर धसक गया तो सभापति हमें अलग फटकारेंगे कि इत्ती बहादुरी दिखाबे की का जरूरत हती?”

“तुम तो अपनी पूरी बहादुरी दिखा दो यार। शाम की अद्वी के पैसे कॉलेज की तरफ से, ठीक?”

“दिल बड़ा है मालिक का। ... चलिए, कर देंगे। जे काम भी कर देंगे।”

“बस, कॉलेज चमक जाए। बीस स्कूलों का अकेला इक्जाम सेंटर है यह। अभी तो मैट्रिक की परीक्षा होनी है।

फिर इंटर की। बाहर के मोंड़ा-मोड़ियन को जरा लगे तो कि हाँ, जे कहाता है कॉलेज। ... है कि नहीं?”

“जी मालिक।”

“तो हम चलें?”

“चलिए मालिक।”

पंडिज्जी वापस मोटरसाइकिल के पास आ गए।

प्रतीक्षारत मास्टर ने मोटरसाइकिल को स्टैंड से हटाकर, बड़े अदब से गाड़ी का हैंडिल पंडिज्जी को पकड़ाया। वे अभी मोटरसाइकिल स्टार्ट कर ही रहे थे कि सामने से पटवारीजी की मोटरसाइकिल आती हुई दिखी। पंडिज्जी ने इशारा किया तो वे रुक गए।

किसनलाल यादव ठीक वैसे पटवारी हैं जैसे कि पटवारी होते हैं। उनमें पटवारी तत्त्व इस कदर कूट-कूट कर भरा हुआ है कि उनके और कुछ हो पाने की गुंजाइश ही नहीं बची है। वे नखशिख पटवारी हैं। वे इस हद तक पटवारी हैं कि उनकी रग- रग पटवारी है। वे अहर्निश पटवारी हैं। वे बेहद पटवारी हैं। उनका मुँह देखकर ही आप जान जाते हैं कि यह शख्स कहीं न कहीं का पटवारी है। उनकी चाल में भी एक किस्म का पटवारीपन है और आँखों का खसरा इतना रहस्यमय है कि वहाँ उन्होंने किसके नाम पर क्या चढ़ा रखा है पता करना असम्भव है। पत्नी, जो पिट जाने की रिस्क लेकर भी यादवजी के चाल-चरित्र पर शक किया करती है, वह बहुत गलत भी नहीं है।

पटवारीजी ने मोटरसाइकिल रोककर अतिशय विनम्र होते हुए "पांलागी पंडिज्जी" कहा और दोनों हाथ कुहनियों तक जोड़ दिये।

पटवारीजी की यह अतिशय विनम्रता उनकी ढाल भी है, तलवार भी। बड़े आदमियों के समक्ष ऐसा विनम्र होकर वे पहले ही वह मोर्चा खोल देते हैं, जिस पर चढ़ाई आसान नहीं।

"खुश रहिए" कहकर पंडिज्जी ने आशीर्वाद भी दे डाला गो कि वे खूब जानते हैं कि पटवारी को खुश रहने के लिए किसी के आशीर्वाद की जरूरत नहीं; खुशी तो उसके पटवारी होने में स्वयं ही अंतर्निहित (इनबिल्ट) है।

"हमारे कागज तो नहीं मिले होंगे न यादवजी?" पंडिज्जी ने पूछा।

"कौन-से कागज महाराज?"

"यार, अब जे न पूछन लगो। पूरी रमायन बाँचवें के बाद अब जे न पूछा जाए कि राम कौन, रावण कौन?"

"आप कब्रिस्तान की भूमि वाले कागजों की बात कर रहे हैं?"

"चलो, आपको याद तो आया।" पंडिज्जी मुस्काए।

पंडिज्जी ने सालों पहले, कब्रिस्तान के लिए तय सरकारी भूमि के एक बड़े हिस्से पर कब्जा करके वहाँ एक 'कोल्ड-स्टोरेज' तान डाला था। फिर सालों गुज़र गए। फिर बीच में वहाँ कोई ऐसा गलत डिप्टी कलेक्टर आया जिसने कोटरा की सारी सरकारी ज़मीन पर गैरकानूनी कब्जे हटाने की मुहिम-सी चला दी थी। जब वह सामान्य साम, दाम, दंड, भेद के समयसिद्ध तरीकों से न माना और गोदाम गिराने पर उतारू ही हो गया तो पूरे मामले को पंडिज्जी कोर्ट में ले गए। यहाँ उन्होंने माननीय न्यायालय को आदरपूर्वक बताया कि यह हमारी पुश्तैनी ज़मीन है और डिप्टी साहब का यह अन्याय रोका जाए, क्योंकि 'कोल्ड स्टोरेज' इसी पुश्तैनी ज़मीन पर बना हुआ है। कागजों का इंतज़ाम हो गया था सो वहाँ कागज भी पेश कर दिये गए। कोर्ट केस चल पड़ा। अब चल रहा है। कागजों की बात उसी संदर्भ में हो रही है। सरकार की तरफ़ से भी कागज पेश किए गए हैं। सम्मन अफसर के नाम भी गया है।

अदालत ने दोनों के कागजों पर गौर किया है। माननीय न्यायालय ने चाहा है कि दूध का दूध और पानी का पानी करने के लिए डिप्टी कलेक्टर साहब कुछ और भी कागज अदालत में पेश करें। नई तारीख़ दे दी गई। पंडिज्जी ने इसी बाबत पटवारी साहब की सहायता ली है। कलेक्टरेट में धरे कागजों की एक फाइल को यदि ठीक से दबा दिया जाए तो इस डिप्टी कलेक्टर के बच्चे का बाप भी अदालत में उनका घंट कुछ नहीं उखाड़ पाएगा। वही हुआ भी। नई तारीख़ें लगती गईं। माँगे गए कागज पेश न हो सके। इधर डिप्टी कलेक्टर ने भी अपने नायब तहसीलदार की गर्दन पकड़ रखी थी। नायब तहसीलदार साहब एक दिन आफिस में इत्ता गुस्सा हुए कि मुँह से झाग फेंकने लगे। चार क्लर्कों को काम पर लगा दिया कि यह फाइल मिलनी ही चाहिए। पंडिज्जी को पता चला तो वे डर गए। पटवारीजी ने आश्वस्त किया कि ये कागज तो अब भगवान भी नहीं ढूँढ़ सकेंगे। कागज नहीं मिले। केस टलता गया। फिर वे डिप्टी कलेक्टर ही ट्रांसफर हो गए। इस तरह मामला दब तो गया पर बीच-बीच में उघड़ भी जाता है। केस तो चलेगा ही। चल ही रहा है। पेशी की तारीख आती है तो ससाला नया साहब भी पूछ लेता है कि ...।

पटवारी जी से अभी उसी बाबत पड़ताल की जा रही है।

"कागज दबाए रखना बड़ा कठिन होता जा रहा है पंडिज्जी।"

"क्यों? इत्ता भारी बजन तो रखवा लिए थे आप हमसे?" "क्या करें। हवा भौत तेज हो गई है। पिछली दफा कोर्ट बड़ी सख्त होकर बोली थी कि यदि फाइल न पेश की गई तो फिर कोर्ट इसकी जिम्मेदारी तय करने का आदेश देगी।"

"पर बे वाले सरऊ जज तो रिटायर हो गए न पटवारीजी? आपको भी पता है।"

"वोई तो, वरना भौत ही कठिन हो जाता। पर नायब तहसीलदार तो रोज पूछ ही लेते हैं।"

पटवारी जी अब चुप खड़े हैं। पंडिज्जी सोच रहे हैं कुछ। मोटरसाइकिल पर उनके पीछे बैठा हुआ मास्टर, बस बैठा हुआ है।

"नए जज कैसे हैं?" पटवारी ने पूछा।

"नए का ठीक से पता नहीं चलता। पर अच्छी बात जेई है कि जे भी रिटायरमेंट के करीब हैं। लटकाते रहेंगे सारे मामले।"

"जब तक अपना मामला सामने आएगा, जे भी रिटायर हो जाएँगे। ... है ना?"

"सही समझे।"

"तब तक इधर भी नए नायब तहसीलदार आ जाएँगे। तीन साल में ट्रांसफर की पॉलिसी है सरकार की।"

"अफसर और जज बस, ऐसेई बदलते रहें, और क्या चइए।"

"बस, तो फिर जेई चलता रहेगा। चिन्ता न करें।"

"भगवान चाहेगा तो जेई चलेगा।" दोनों हँसने लगे।

"वैसे भी ज्यादातर साहबों को भौत झंझट नहीं चाहिए। कैसे भी टाइम कट जाए, और पैसे बनते रहें, बस।"

"खूब करें, बस, हमें न छेड़ें।"

"न छेड़ेंगे।"

"आप बैठे हो पटवारी साहब, तो वैसे भी हमें चिन्ता नहीं रहती। साहब लोग जिस कुर्सी पर बैठते हैं उसके पैदे पर तो कब्जा आपका है।"

"अरे, नहीं मालिक। हम तो भौत छोटे आदमी हैं पंडिज्जी।"

"हमारे लिए तो आप ही सबसे बड़े हैं।"

दोनों ने एक-दूसरे के हाथ जोड़ दिये।

"देखते रहें। कहीं कुछ और करना हो तो बताइएगा।" पंडिज्जी ने कहा।

दोनों ने फिर एक-दूसरे के हाथ जोड़ दिये।

विनम्रता की तलवारें दोनों के पास थीं। तलवारें चल भी रही थीं।

पटवारी जी हाथ जोड़कर गाड़ी बढ़ाने लगे।

"कल बिस्मिलजी मिले थे।" पटवारी ने चलते-चलते कहा।

"हमें भी मिले थे। परसों।"

"फिर ठीक है। उनसे अपना काम तो आपको बता ही दिया होगा?"

"क्यों? नहीं तो?"

"कह रहे थे कि उनके पास एक सालिड पार्टी है। बोल रहे थे कि पंडिज्जी से टेम दिला दो।"

"हरामी आदमी है जे स्साला बिस्मिल का बच्चा। खुद हमसे भी जे बात कह सकता था पर देखिए, आपसे कहलवा रहा है। जानते हैं क्यों?"

"हमें कैसे पता?"

"वो पूरे कोटरा को बताना चाहता है कि पंडिज्जी नकल कराते हैं। पार्टियाँ आती हैं। उनसे मिलती हैं। नकल के पैसे देती हैं। स्कूल की बदनामी करना चाहता है स्साला।"

"ऐसा न सोचें। उसके पास वास्तव में कोई पार्टी है। एक बार मिल तो लें।"

"आप तो इस बिस्मिल के बच्चे को कह दें कि इस साल नकल न होगी। हमारे पास अभी किसी को भी न भेजे।"

"ऐसा जुल्म न करें पंडिज्जी। अभी तो भौत पार्टियाँ हैं जिन्हें हम..."

"...आपकी बात अलग है। जे बिस्मिल स्साला, बीच में खुद खूब पैसा बनाएगा। पार्टी से कहेगा कि पंडिज्जी ने माँगे हैं।"

"पेट तो बिस्मिल को भी लगा है भाई साहब। किसकी किस्मत में किसका पेट भरना लिखा है, क्या कह सकते हैं पंडिज्जी?"

"जे बात भी सही है।"

"तो फिर उनकी पार्टी को कब भिजवा दें? एक बिस्मिलजी की तो है ही, एक हमारी भी है।"

"इस बार काम भौत मुश्किल होने वाला है यादवजी। कालपी में नए साहब आए हैं। कहते फिर रहे हैं कि लखनऊ से मंत्रीजी का नकल रोकने का इशारा है। इस बार कोई नकल न होने देंगे।"

"भगवान राम आए हैं क्या?"

"राम की भगल पहिनबे में आदमी का क्या जाता है? राम होना सम्भव नहीं तो रामलीला वाली ड्रेस तो है। वैसे ही कोई साहब आ गए हैं। अपनी पूरी रामलीला दिखाने पर उतारू हैं।"

"तो आपने उनकी पूजा-पाठ नहीं की? प्रसाद नहीं चढ़ाया?"

"अभी उनकी पूजा के विधि-विधान पता करने में ही तो लगे हुए हैं। नया देवता है। विधान भी अलग ही होंगे।"

"तो?"

"तो अभी तो कुछ दिन किसी को न भेजें।"

"फिर हमें बता तो दीजिएगा न?"

“बताएँगे न। जरूर बताएँगे।”

“चलें फिर?”

“निकलिए...”

पटवारीजी ने मोटरसाइकिल बढ़ाई और फिर से रोक ली।

“अब अपने कॉलेज की बढ़िया-सी पुताई करा दो पंडिज्जी...” पटवारी ने कहा।

मोटरसाइकिल चालू है, दोनों की।

पंडिज्जी ने दो बार जोर से एक्सेलेटर लिया फिर इंजन को न्यूट्रल में डालकर चलता हुआ छोड़कर बोले, “तनिक लखनऊ से अनुदान तो रिलीज होने दो, फिर देखियो। बढ़िया चमका देंगे।”

“तो रिलीज कराइए न?”

“ऐसा आसान काम समझे हैं क्या?”

“आप कुछ रिलीज करें तो बे भी आपका क्यों न रिलीज करेंगे।”

“वो तो हम करेंगे ही। हमें पता है। बिना चढ़ावे के वरदान नहीं मिलता, यही जीवन की रीत है भैया।”

“पर पुताई जरूर करा दें। भगवान कसम, खंडहर टाइप दिखता है।”

“जो है, सो दिखता है। इसे शिक्षा का खंडहर ही मानें।”

कहकर पंडिज्जी ने हँसकर मोटरसाइकिल ऐसे अचानक झटके से बढ़ाई कि पीछे की सीट पर बैठे मास्साब टपकते-टपकते बचे।

“देख के गुरुजी...” किसी गुज़रने वाले ने चेताया।

धूप कमज़ोर हो रही है।

पंडिज्जी तेज़ी से निकल गए।

अब यहाँ बस, ट्रैक्टर की आवाज़ है और सामने सूना पड़ा कॉलेज का बड़ा सा कैंपस।

हरावल दस्ते आ रहे हैं

‘नीलगाय आ रही हैं क्या’ बूढ़ा चौंककर उठ गया।

अब वह घबराया-सा बैठा हुआ है खेत की मेंड़ पर बनी अपनी झोंपड़ी में।

आधी रात से ज्यादा का टेम तो होगा अभी। घने अँधेरे से भरी आसमान की देग ठंडी पड़ी हुई है। शाम से ही हल्के बादल रहे हैं। बादल अभी भी हैं यहाँ-वहाँ, इक्का-दुक्का सितारे; मानो धरती से मुँह छुपाते हुए फिर रहे हों आसमान में। सर्दी बढ़ गई है। प्लास्टिक की पन्नी डालकर बनी झोंपड़ी की छत बल्लीनुमा लकड़ियों पर टिकी है। बे-दरो-दीवार का आशियाना। नीचे, मिट्टी पर पुआल बिछा रखा है। उसी पर एक झीनी सी दरी। ओढ़ने के लिए बुरी तरह छीज गई एक फटी हुई कथरी। बस, इन्हीं अस्तों के सहारे सर्दी से लड़ता हुआ रात की चौकीदारी निभाता है बूढ़ा। वैसे पंडिज्जी ने खेत पर कँटीले तार की बागड़ भी लगा रखी है। बागड़ मजबूत हो तो नत्थू जैसा बूढ़ा भी खेत की रखवाली कर सकता है-ऐसा विश्वास है पंडिज्जी का।

बूढ़ा इससे पहले देर तक जागता रहा था।

उसे नींद ही नहीं आ रही थी। नहीं, चिन्ता के कारण नहीं। चिन्ताएँ तो जीवन भर उसका पीछा करती रही हैं। अब चिन्ताओं से नींद नहीं खराब होती है उसकी। आदत-सी हो गई है चिन्ताओं में ही जीने की। श्वास का तो हिस्सा हैं चिन्ताएँ। उसकी हर श्वास पर एक न एक चिन्ता सवार रहती है। हर श्वास के साथ चिन्ता अन्दर तो जाती है पर बाहर नहीं निकलती। चिन्ताओं का भारी भीड़-भड़क्का मचा रहता है उसके भीतर। मन में भारी कोलाहल रहता है। अब तो इसी कोलाहल में सोने की आदत पड़ चुकी है उसे। यह कोलाहल न हो तो वह सो ही न पाए। ...तो नींद तो बस यूँ ही नहीं आ रही थी। चिन्ता? नहीं, चिन्ता जैसा कुछ नहीं। अरे, काहे की चिन्ता? जीवन में जब सब कुछ बुरा ही होता चला जाए तो फिर आदमी चिन्ता करना छोड़ देता है। तो, नींद तो आ ही जाती है उसे। रोज़ रोज़ वह यही सोचकर सो जाता है कि आगे और कुछ ज़्यादा ही बुरा घटे, उससे पहले थोड़ा आराम कर लिया जाए। हाँ, आज तो यूँ नींद नहीं आई कि बीड़ी एक ही बची थी। अभी पिएँ कि बाद में? वह नित्य ही सोने से पहले एक बीड़ी पीता है और एक तुरन्त उठने पर। आखिरी कश खेंच कर, बीड़ी का टोंटा फेंक वह करवट लेकर सो जाता है। तय पाया गया कि इस बची हुई बीड़ी को बाद के लिए सहेजकर रखा जाए।

गहरी नींद क्या होती है - वह नहीं जानता। कभी यह चीज़ देखी या सुनी ही नहीं। वह मानता है, 'के सोए राजा का पूत, के सोए जोगी अवधूत।' वह न तो राजा का पूत है, न ही कोई जोगी। उसकी नींद तो बस ऐसेई है। सोता ज़रूर है, पर जागता-सोता रहता है रात भर। कभी कुछ देर को अच्छी नींद आई भी कि तभी फटी कथरी से हवा घुसकर पसलियों के पिंजरे से टकराती है और प्राणों का पंछी फड़फड़ाने लगता है। वह नींद से उठता है और एक बार फिर से फटी कथरी को कौशलपूर्वक ऐसे ओढ़ने का जतन करता है कि हवा और ठंड के खिलाफ़ ठीक-सी किलेबंदी हो जाए! रात भर, वह फिर-फिर सोता है, फिर-फिर जागता है। चौकीदारी, श्वासें, नींद, सपने और जागरण- सब एक साथ चलते रहते हैं।

आज रात भी काला आसमान देखते-देखते उसे कब नींद आ गई, पता नहीं चला।

फिर कोई सपना चल पड़ा। ऐसा कुछ खास नहीं। बस, बेतरतीब सपनों की लुका-छिपी। टुकड़ों में सपना। टुकड़े-टुकड़े सपने। झलकियाँ। अच्छे। बुरे। अबूझ। फालतू के सपने। और सपनों के पार्श्व में पास की रोड पर गुज़रती गाड़ियों की इक्का-दुक्का आवाज़ें वर्ना सन्नाटा तो हरदम बजता ही रहता है। तब वह यूँ ही कोई सपना देख रहा था। शायद रोटी का। रोटी के साथ चटनी भी तो थी शायद? हाँ, थी तो। शायद अपनी छत का सपना भी था। शायद सुख का सपना। शायद कम दुख का सपना। शायद हँसी का। शायद कम रोने का। ... ऐसा ही कोई फालतू फंड का सपना कि जो उठने के बाद सुबह याद ही नहीं रह जाने वाला। ... कि तभी सपने के पार्श्व में बेतरतीब टापों की तेज़ आवाज़ें उभर आईं। फिर ये आवाज़ें तेज़ होती चली गईं। तेज़। और तेज़। और, और तेज़। पास आती हुई टापों की आवाज़ें। दुश्मन की फौज पास आ रही है क्या - सपने में तैनात सैनिक ने साथी सैनिक से पूछा। साथी सैनिक ऊँघ रहा था। चौंककर उठ गया।

'हाँ, दुश्मन ही आ रहे हैं।'

टापों की आवाज़ सुनकर नत्थू अचानक ही चौंककर उठ गया।

घबराकर नींद से उठ बैठा था वह। कथरी को एकदम से झटक के सतर्क बैठ गया है अब बूढ़ा।

दौड़ते पशुओं की सामूहिक टाप की आवाज़ है जो क्षितिज से इसी तरफ़ तेज़ी से बढ़ रही है। बहुत से पशु भागकर इसी तरफ़ आ रहे हैं। वह खड़ा होकर टोह लेने लगा।

'नीलगाएँ आ रहीं हैं क्या?' भय से भर गया वह।

नीलगायों का इलाका है यह।

बेतवा नदी के साथ-साथ मीलों तक बीहड़ इलाका है। इसी बीहड़ में घूमते हैं, नीलगायों के झुंड। बेलगाम।

रात में टोलियाँ निकल आती हैं इनकी। आवारा घूमती हैं आस-पास। खेतों से, मैदानों से होकर गुज़रती है ये टोलियाँ। खड़ी फसल को रौंदती हुई। मिनटों में खेत के खेत बरबाद करतीं। कोई चौकीदारी करता हुआ खेत पर सो रहा हो, उसे कुचलते हुए भागती जाती हैं नीलगाएँ। मानो दुश्मनों की सेना की कोई टुकड़ी। चौकीदार जागा हुआ भी हो तो कैसे रोके इनको? कोई रोक नहीं सकता इन्हें। डंडे से, या हकालकर भगाने की बात तो सोचना भी सम्भव नहीं। बहुत बड़ा जानवर है। इलाके के दबंग आदमियों टाइप चलती आती हैं ये। कौन रोकेगा इनको?

खड़े होकर अब खुद के बचाव की तैयारी में है बूढ़ा। नहीं, कोई हथियार नहीं है उसके पास। उसे तो नीलगायों के रास्ते से भागकर ही बचना होगा परन्तु टूटे घुटने लेकर तेज़ भागना भी तो सम्भव नहीं। वह खड़ा होकर समझने की कोशिश में है कि पास आती नीलगायों की सही दिशा क्या है? अभी खेत एकदम शान्त है। खेत किसी हद तक नीलगाय से सुरक्षित भी है। पंडिज्जी ने तारों की बाड़ में करंट छोड़ने का इंतज़ाम कर रखा है। खेत से लगा हुआ बिजली का सरकारी ट्रांसफार्मर है। बूढ़े का रोज़ का काम है कि सोने से पहले, रात के टेम इस ट्रांसफार्मर से बिजली का तार लेकर बाड़ को जोड़ दे और सुबह-सुबह इसे हटा दे। रात भर करंट दौड़ता है खेत के चारों ओर। नीलगाएँ अगर खेत में घुसने की कोशिश करेंगी तो बिजली का ज़ोरदार झटका खाएँगी और बिदककर रास्ता बदल लेगी।

सो खेत तो सुरक्षित हैं। उसे ही अपनी जान बचानी है।

वैसे करंट तो आ ही रहा होगा। मान लो कि करंट न आ रहा हो, तब? तार को एक बार छूकर देखा जाए क्या? नहीं, तार को छूना सम्भव नहीं। करंट तो आ ही रहा होगा। तुम खेत की चिन्ता मत करो नन्हु, अपनी जान की देखो भैया। टापों की आवाज़ें और भी निकट आती जा रही हैं। नीलगाय कहीं इसी मेंड़ पर दौड़ती हुई आई तो उसे कुचलती हुई निकल जाएँगी। वह कानों को उसी तरफ़ करके उनके आने की दिशा का अनुमान करने लगा। अभी किती दूर होंगी? हमारे खेत की तरफ़ आएँगी या बगल के खेत से गुज़रेगी? तो भागकर अभी सड़क पर निकल जाया जाए क्या?

वह मेंड़ पर तेज-तेज चलने के प्रयास में लड़खड़ाता हुआ सड़क की दिशा में चल पड़ा।

निकल ही लिया जाए। बूढ़ा लँगड़ाती चाल से जितना तेज़ चला जा सकता है, उतना तेज़ चलकर सड़क तक जा पहुँचा।

सड़क पर, यत्र-तत्र पसरे हुए हैं बजरी के ढेर। सड़क कूटने का इंजन खामोश खड़ा है। अँधेरा है। सन्नाटा है। सड़क पर माहौल अभी भुतहा-सा है। दूर से, बहुत से जानवरों के भागकर आने की पदचापें सुनाई दे रही हैं। पास आतीं। और-और पास आतीं।

उसे पता है कि खेत सुरक्षित हैं, फिर भी उसने खेत की तरफ़ चिन्ता की नज़रों से से देखा। पंडिज्जी नाराज़ तो न हो जाएँगे कि तुमको खेतों की रखवाली के लिए रखा था कि खुद की जान बचाने के लिए?

कई बार करंट लगने से मर भी जाती हैं नीलगाय - एक के बाद एक, पटापट, दो-तीन तक। कभी नीलगाय के बोझ से तार टूट भी जाता है। तब करंट भी टूट जाता है। ऐसे में खेत को कुचलती हुई निकल जाती है नीलगायों की भीड़।

बूढ़ा नत्थू एहतियात के लिए अब सड़क कूटने के विशालकाय इंजन के पीछे छुपकर टोह ले रहा है नीलगायों की। इधर, तेज़ी से पास आती पदचापों ने अचानक ही दिशा बदल दी है। पश्चिम तरफ़ मुड़कर अब वे पंडिज्जी के खेत से दूर जा रहे हैं। पदचापों की आवाज़ अब दूर होती जा रही है। टापों की आवाज़ कमज़ोर हो रही है। राहत मिली उसी। बूढ़ा इंजन की आड़ से बाहर निकल आया। वह उस दिशा के काले आसमान को देर तक देखता रहा जहाँ से अभी नीलगायें आ रही थीं। अब राहत थी। उसने कुरते की जेब से बची हुई इकलौती बीड़ी निकाली। माचिस की तीली रगड़ी तो अँधेरे के कुंड में रोशनी की एक छोटी-सी भंवर-सी बनी। थोड़ी देर तक यह बनी रही। कमज़ोर-सी रोशनी में बूढ़े का चेहरा अँधेरे के बीच उभर आया।

बीड़ी सुलगा ली उसने।

बूढ़ा अब वापस लौट रहा है। बीच-बीच में वह बीड़ी का कश खींचता है तो खेत की अंधेरी मेंड़ पर जुगनू-सा चमक जाता है।

बेदखल लोग

कोटरा के खत्म होते होते बेतवा आ जाती है। एकदम सीमांत पर बहती है बेतवा नदी। गहरी, चौड़े पाट की बेतवा।

यहाँ बड़ी उथली-सी है बेतवा। यहीं इस पर एक कच्चा पुल बना हुआ है। इसी से साल भर कोटरा का काम चलता है। बस, बारिश में यह बह जाता है परन्तु बारिश निकल जाने पर इसे फिर से बना लिया जाता है। बारिश में बेतवा विकराल हो जाती है। ऐसे में कोटरा के इस दिशा से सारे संपर्क वैसे भी समाप्त हो जाते हैं। संपर्क मतलब मऊरानीपुर से संपर्क। इधर से मऊरानीपुर का छोटा रास्ता है। दूसरी तरफ़ झाँसी होकर जाओ तो छह घंटे ज्यादा लगते हैं। सरकार यहाँ एक बहुत ऊँचा पुल बनवा रही है। पंडिज्जी के खेत से लगकर जो राजमार्ग बन रहा है, वह इसी पुल से जुड़ेगा और आगे मऊरानीपुर होकर आगे जाएगा।

राजमार्ग शानदार बन रहा है।

और यह पुल तो और भी शानदार बनता दिख रहा है।

इस तरह विकास का एक शानदार घेरा कोटरा को छूता हुआ निकलने वाला है। सारा मामला शानदार है। हाँ, कोटरा ज़रूर शानदार होने से रह गया है। वैसे कोटरा को इस अफ़वाह पर पूरा विश्वास है कि एक दिन वह भी ऐसा शानदार हो जाएगा कि इस शानदार पुल को उसका पड़ोसी होने में कोई शर्म न आए। वैसे, कोटरा अपनी ना-शानदारी में भी उतना ही खुश है। टूटी सड़कों, संकरी और टूटी-फूटी गलियों, बहती, बन्द पड़ी नालियों, और अपनी कुल जमा चार ध्वस्तप्राय पुलियों के बीच बड़े मजे में दिन गुज़र रहे हैं कोटरा के। यही सब उसकी पहिचान भी हैं। कोटरा इन सबकी वजह से ही तो कोटरा है। कोई जन कभी इन चीज़ों की बुराई करे तो कोटरा बुरा मान जाता है-यार, तनिक बाहर क्या हो आए तो अपनी अम्मा ही बुरी लगने लगी तुम्हें, क्यों? कोटरा को कोटरा बने रहने में ही परम संतोष है। कोटरा को कोटरा बने रहने के लिए नित्य कितना कोटरा होना पड़ता है यह कोई कोटरा से ही पूछे ! यही कोटरापन तो कोटरा की जान है। एक दिन कोटरा, ऐसा कोटरा नहीं रहेगा- यहाँ भी शानदार सड़कें, पुल और विकास के दीगर तमाशे आ जाएँगे, ऐसा दावा किया जाता है कोटरा में आजकल। यह सुनकर कोटरा बहुत खुश नहीं होता है। नहीं, कोटरा विकास के खिलाफ़ नहीं है परन्तु उसका मत है कि कोटरा से उसका कोटरा होना नहीं छुड़ाया जाना चाहिए।

कोटरा इस बनते हुए राजमार्ग और बेतवा में उभर रहे निर्माणाधीन पुल के ऊँचे ऊँचे खंभों को आश्चर्य, गर्व और एक निश्चित दूरी बनाकर देखता है, मानो ये सब किसी और की धरोहर हों जो कोटरा को सौंप दी गई हों कि इनको थोड़ी देर तक तनिक सँभालकर रखना। इनसे कोई अपनापा नहीं बन पाया है कोटरा का। हाँ, बाहर वालों को दिखाने के लिए एक चीज़ हो गई है उसके पास भी। बाहर से कभी कोई रिश्तेदार कोटरा आए तो यहाँ के लोग उसे यह पुल दिखाने ज़रूर ले जाते हैं। पुरानी पुलिया पर बैठकर बीड़ी पीने वाले भी इस बड़े पुल की बात करते हैं। सबको गर्व है कि विकास की आँधी का कुछ कचरा कोटरा तक भी उड़कर आ रहा है।

बेतवा यहाँ ऊँचे टीलों के बीच, नीचे गहरे में बहती है।

इन्हीं टीलों के बीच से पुल तक की एप्रोच रोड बननी है। गिट्टी, रेत, पत्थर के ढेर भी इसी सिलसिले में यहाँ-वहाँ पड़ गए हैं। आगे काम भी होगा। फ़िलहाल तो इन ढेरों पर कुत्ते बैठे रहते हैं। विकास को अभी से सूँघ रहे हैं ये कुत्ते शायद। बेतवा के बीच चार बेहद ऊँचे पिलर निकल आए हैं। ऊँची मीनारों जैसे। एक तरफ से कुछ गर्डर भी चढ़ गए हैं। रेत का विस्तार, बेतवा का पानी और बीच में ये पिलर-प्रकृति के सीने में ये किसी खंजर से घुपे हुए दिख रहे हैं।

इनमें से ही एक पिलर से टिककर अभी दो लोग रेत में बैठे हुए हैं। दोनों लोग अलसा रहे हैं बैठे हुए।

दोनों ने बेतवा किनारे की मिट्टी की छोटी-सी पट्टी पर, जो रेत और टीले के बीच की जगह पर छोटे छोटे टुकड़ों में इधर-उधर निकल आई है- कुछ सब्जी-भाजी उगा ली है। पानी वहीं का, मिट्टी भी बेतवा की; बस किस्मत उनकी-कुछ न कुछ उग ही आया। डलिया में लेकर उसे बेच भी लेंगे। दोनों जन ऐसे भूमिहीन खेतिहर हैं विकास जिनका चेहरा पहिचानता तक नहीं। कौन हो भाई तुम? विकास के रजिस्टर में उनके नाम का पन्ना ही नहीं। एक पंक्ति भी नहीं। ये लोग वे नागरिक हैं जिनके लिए विकास या तो डराने वाली चीज़ है, या फिर हँसकर भूल जाने वाली बात।

दोनों लोग दिन भर यहीं रेत में पड़े रहते हैं। मन को तसल्ली रहती है कि हम भी कुछ काम कर रहे हैं; उगती सब्जी की देखभाल कर रहे हैं- बिता भर की मिट्टी में, मुट्ठी भर बीज बोककर समय काटने का एक जायज़-सा काम पैदा कर लिया है उन्होंने अपने लिए। जा

इसी रेत से गुज़रकर निकल रहे हैं इक्का-दुक्का लोग अभी। एक मोटरसाइकिल निकल गई है, अभी-अभी। रेत में डगमगाती। कच्चे पुल की तरफ़ जाती। टीलों की ऊँचाई तक खड़े पिलर मौन हैं। उन्हें भी कोई काम नहीं। अभी तो पूरे गर्डर भी नहीं रखे गए हैं कि बोझ उठाएँ। हाँ, विकास की मुनादी का काम ज़रूर कर रहे हैं वे। लोग इस मुनादी पर कान न दें, यह दीगर बात है।

कच्चे पुल पर गुज़र रही एक यात्री जीप रुकी है। एक छुटभैया टाइप अधेड़ उसमें से उतरा और झोला उठाए हुए इसी रेत से होकर तिरछा-तिरछा जाने लगा। उसे किनारे-किनारे चलकर, टीलों के बीच चलती कोई पगडंडी पकड़नी है। उसके गंतव्य का शार्टकट है यह।

पिलर के पास से गुज़रा तो वह रुक गया।

अधेड़ एक छुटभैया नेता है। ज़मीनी कार्यकर्ता होने के नाते न केवल यहाँ सबको जानता है, उसके पास यह हिसाब भी रहता है कि पिछले चुनाव में किसने उसकी पार्टी के उम्मीदवार को वोट नहीं दिया। वैसे पुत्तल जैसे लोगों के लिए तो सभी बड़े लोग हैं। सत्ता की कुर्सी की छोटी कील भी कभी गड़ जाए तो घाव गहरा ही करती है- जानता है पुत्तल।

दोनों को पिलर से टिका देखा तो अचानक ही रुक गया छुटभैया। “क्यों न जनसंपर्क कर लिया जाए?”

“कैसे हो पुत्तल?” नेता के तौर पर वह कहना तो पुत्तलजी या पुत्तल भाई चाहता था परन्तु ऐसे परम दरिद्र के लिए इतने आत्मीय संबोधन के लिए कंबख्त जीभ ही नहीं पलटी।

"ठीक हैं महाराज।"

"पर तुम जे अनर्थ काहे कर रहे हो?"

"कैसा अनर्थ मालिक? हम तो बस बैठे हैं महाराज।"

"खूब बैठो पर खंभे से काहे टिके हो भैया?"

"जरा-सी पीठ टिका ली है महाराज..."

"...तुम्हारे लाने तो जे जरा-सी कहाई, पर सरकार इसे पसंद नहीं करेगी। अभी तुम लोगन का चालान काट देगी, तो तुम भगत गेल न मिलेगी।"

"बिल क्या है, महाराज?"

"उनसे ही पूछना न। उनको तुम सब लोगों ने एकमुश्त वोट डाले थे न? क्यों? तुम लोगों ने ही सरकार बनवाई थी न उनकी? ... कि नहीं?"

"पर चालान? जे किस बात का?"

"बस, इसी बात का ! आजकल, जिसकी भी सरकार बनवा दो वोई तुमारा चालान काट देता है।"

"गरीबन पे ऐसा जुल्म न हो महाराज। हमारा क्या है, इस बार आपको वोट दे देंगे। वोट ही तो है, जो ले जाए। किसी को तो देना है, आप ले जाओ।"

"पर सोच-समझकर तो वोट दो न।"

"सोचकर ही देते हैं नेताजी।"

"फिर?"

"फिर भी चूतिया बन जाते हैं।"

"ठीक से सोचा करो न।"

"क्या सोचें- आप बताओ?"

"ऐसे को दो जो तुम्हारा चालान न काटे।"

"किसी को भी दें, चालान तो गरीब का ही कटना है महाराज।"

"ऐसा नहीं है। हमें देते, फिर देखते। एक बार दे के तो देखते। अरे, हम तो तुमारी गरीबी हटाने वाले थे। बताओ, हमने नारा भी लगवाया था कि नहीं? बोलो? गरीबी हटाने वाला नारा कौन लगवाया था? बोलो।"

"लगवाया तो आपने ही था।"

"फिर? चलो, कर दई एक बार गड़बड़ पर आगे से ध्यान रखियो। ग्राम पंचायत के चुनाव होने को हैं। तब हम आँगे तुमसे मिलने खातिर। तब हमें बतइयो - कंबल चइए कि दारू, बतइयो। बाँटबे को जिम्मा हमारा ही रहेगा।"

"कंबल, दारू नहीं दें मालिक; बस, हमें कोई काम दिला देते महाराज।"

"कलक्टर बनोगे?"

"मजाक न करो नेताजी। मनरेगा में हमारा नाम चढ़ा है पर बे काम नहीं दे रहे।"

"देबे वाले कौन? बताओ? काम देबे वाले हैं सरपंचजी। ... कितने जिताया है उनको? तुमने। देखो, हमारे हाथ में कुछ है नहीं पर कोशिश करते हैं।"

"न हो तो हमें इस पुल के काम में ही लगवा देते महाराज।"

"चूतिया हो का बे?"

"क्यों?"

"ऐसे काम में टेनिंग वाले मजदूर लगते हैं भइया। इसे कोई निराई-गुड़ाई समझे हो क्या? देख रहे हो- कित्ता ऊँचा बन रहा है? देखे हो कभी इत्ता ऊँचा पुल?"

"वैसे जे इत्ता ऊँचा काय को बना रये?"

"हम बना रहे हैं क्या?"

"नहीं, हमने तो एक बात कही। आप बुरा न मानो।"

"जो बना रये, उनसे पूछो न! सीधे सरकार से क्यों ही नहीं पूछते?"

"हमारे लाने तो आपई सरकार हो मालिक।"

"ऊँचा बने कि नीचा, तुम काहे परेशान हो रहे-तुमें तो नीचे ही रहना है।"

"पर आप तो कह रहे थे कि नीचे बैठबे पे भी सरकार चालान काट देगी?"

"बिलकुल! काट भी सकती है बिलकुल। सरकार का मन आ गया तो काट भी सकती है।"

"फिर? इतें से उठ जाँ का?"

"बैठो, पर खंभे से टिक के न बैठो, बस।"

"खंभा घिस जाएगा क्या?"

"खंभा सरकारी संपत्ति है भैया। सरकार बुरा भी मान सकती है कि उसकी चीज को तुमने काहे हाथ लगाया। वैसे भी सरकारी खंभे का भरोसा करना ठीक नहीं। कभी टिके और जे तुम्हारे मुँड़ पे गिर गिरा गया, तो?"

"ऐसो है तो भैया न टिकेंगे महाराज। हम इससे दूर जा के बैठेंगे। दूर बैठने पे तो किसी को उज्ज्र न होगा मालिक?"

"वो तो पुल बनने के बाद ही पता चलेगा।"

"सच्ची बतइयो! पुल बन जेहे तो क्या बे हमें नीचे से भी हकाल देंगे?"

"हकाल भी सकते हैं। बड़ा पुल है। जे कोई पुलिया थोड़ेई है। कभी कोई इसके नीचे बम-फम लगा दे, तो?..."

"कौन लगाएगा?"

"दुश्मन के जासूस, और कौन!"

"कैसे दुश्मन?"

"पाकिस्तानी जासूस। ... वे अपने झोले में बम छुपा के, भेस बदलकर ऐसेई यहाँ आकर बैठ जाँ तो? मान लो कि बे भी एकदम ऐसेई टिक गए खंभा से और अपने हाथ पीछे करके चुपके से बम लगा दिया, फिर?"

"हम ऐसे लगते हैं क्या?"

"दुश्मन अगर भिखारी का भेस धर के आ गया, तो? तुम जैसा ही तो दिखेगा न? फिर?... सही बात तो जेई है कि एक बार जे पुल पूरा बन गया तो तुम इसके नीचे न रह पाओगे भैया।"

"फिर ऐसो पुल काय को बना रही है सरकार कि आदमी ही बेदखल हो जाए?"

"जे पुल नहीं है भैया, जे है विकास। तुम्हें पता है कि नहीं? कोटरा का विकास हो रहा है। विकास होगा तो जे सब तो चलेगा। आदमी की बेदखली को तुम विकास का ही हिस्सा मान लो। विकास के लिए जगह बनानी पड़ती है न भैया।"

"और जो पूरे कोटरा की पुलियाँ टूटी पड़ी हैं?"

"तो?"

"पहले बे सब ठीक करा देते तब तो इत्ते ऊँचे पुल को कछू मतलब था।"

"अब बे तुमसे मतलब सीखेंगे क्या? पुल का मतलब भी पता है तुमें? एक बार जे पुल बन जाए, जे राजमार्ग बन जाए – फिर देखियो। ...अभी मऊ जाने में लगते हैं, छह घंटा, फिर लगेंगे बया दो घंटोभी els Chat Hooiin

"तो?"

"तुमारे चार घंटे बचे कि नहीं?"

"तो?"

"अरे, दूरी घट जाएगी। तुरन्त मऊ पहुँच जाओगे।"

"वहाँ तुरत पहुँच के भी हम क्या करेंगे?"

"पुल को बन तो जाने दो, फिर सरकार तुम्हें जे भी बता देगी कि जल्दी पहुँच के वहाँ तुम क्या क्या कर सकते हो। करेगी कुछ न कुछ इंतजाम सरकार। हो सकता है, मऊरानीपुर में दो-तीन बड़े मॉल खुलवा दे। एलर्जी पहुँचेगी तो

आदमी तो घूमेगा, फिरेगा।"

"हम समझे नहीं महाराज?"

"समझोगे भी नहीं। विकास का गणित बड़ा जटिल है। गणित के अपने बाबूजी मास्साब तक इसे नहीं समझ सकते।"

तभी पुल के ठेकेदार की बड़ी-सी दैत्याकार एसयूवी कार ऊपर कहीं आकर रुकी। चमचमाती हुई गाड़ी। धूप में दमकते शीशे। गाड़ी से एक देवता जैसा, भरा-भरा, चिकनी, दमकती, कांतिपूर्ण त्वचा वाला, आभा मंडल से युक्त व्यक्ति बाहर आया। 'बाहर आया' - यह कहना भी गलत होगा। यूँ कहें कि गाड़ी के चालक ने लपककर दरवाजा खोला तो वह 'प्रकट हुआ'। पुल पर काम करते कारिंदे, मुंशी आदि गाड़ी देखकर पहले ही गाड़ी के पास आ गए थे।

अब वे देवता के चारों तरफ़ खड़े थे। गाड़ी और देवता के व्यक्तित्व की चमक ऐसी थी कि पुल के नीचे बैठे लोग तक चकाचौंध हो गए। पुतल और उसके साथी ने ऊपर की दिशा में देखा।

"ठेकेदार साहब हैं।" छुटभैये ने बताया।

वे लोग उसे देखते रह गए।

"कानपुर में कोठी है। पूरे यूपी में दस पुलों का ठेका ले रखा है। राजमार्ग भी जेई बनवा रहे हैं। भौत बड़े आदमी हैं।"

ऊपर ठेकेदार किसी को ज़ोरदार फटकार लगा रहा है। फटकार की आवाज़ यहाँ तक आ रही है। बात ज़रूर पूरी साफ़ नहीं सुनाई दे रही है। दूरी है। ऊँचाई है। हवा है। बात बिखर रही है। फटकार का सुर टूट रहा है। शब्द टूट-टूटकर बेतवा में गिर रहे हैं। बीच-बीच में माँ-भैन की गालियाँ अवश्य स्पष्ट सुनाई दे जाती हैं। गालियाँ समझने के लिए शब्द स्पष्ट सुनाई दें, यह कतई आवश्यक नहीं। गालियों की परिचित ध्वनि और लय हो, समझने को वही पर्याप्त है। मालिक लोग, कोटरा के दबंग, दरोगाजी, तरह-तरह के अन्य बड़े लोग -गरीब गुरबा हर दिशा से गालियाँ खाते ही रहते हैं। गालियों की पहिचान है पुतल जैसे लोगों को।

"मालिक तो बहुत गुस हो रये।" पुतले ने कहा।

नेता ने एक वाक्य में उनके गुस्सा होने की स्थिति पर सारगर्भित टिप्पणी कर दी :

"बड़ा आदमी है। जब भी गुस्सा होगा, भौतई होगा।"

"बड़े तो खैर भौत हैं।"

"बड़े आदमियन का गुस्सा समझना भी बड़ा कठिन होता है भैया। क्या पता कि कहाँ का गुस्सा कहाँ निकाल रहे हों।"

"आपको इनका ज्यादा पता है महाराज। बड़े आदमियन के बीच तो आपई उठते-बैठते हैं, हमें इसका क्या पता?"

नेताजी चलने को हुए। जाते-जाते उन्होंने फिर याद दिलाया :

"इस बार चुनाव में पूरा ध्यान रखना है।"

"रखेंगे मालिक।"

"देखियो, इस बार कोई धोखा न होने पाए।"

"माँ की कसम ले लें..."

"... झूठी कसम खाओगे तो माँ मर जाएगी।"

"वो तो दस साल पहले ही मर चुकी।"

"वोटरलिस्ट में नाम चल रहा है कि कट

"किसका?"

"माँ का।"

"पता नहीं महाराज।"

"बे अपना नाम क्या लिखती थीं?"

"हम जैसी थीं। लिख-पढ़ नहीं पाती थीं।"

"अरे, उनका नाम क्या था बे?"

"किसुनी बाई कहाती थीं।"

"किसुनी बाई?" नेताजी ने जेब से कागज निकाल के नाम लिख लिया।

"चलते हैं।" कहकर नेताजी चल दिये।

रेत से होते हुए दूर एक टीले में बनी पंगडंडी पर चढ़ते हुए वे नज़रों से ओझल हो गए। इधर, ऊपर खड़ा ठेकेदार, सबको डाँट-फटकार के अपनी बड़ी कार में बैठ गया था। गाड़ी चली और धूल का एक बवंडर पीछे छोड़ती तेज़ी से निकल गई।

पीछे रह गए कर्मचारी जाती हुई गाड़ी को सलाम कर रहे हैं।

नीचे, पिलर से टिके दोनों लोग बात करने लगे :

"देखा?"

"होना।"

"इत्ती बड़ी गाड़ी में अकेले बैठे हैं भैंचो ! हद है कि नहीं?"

"पैसा है भैया।"

"इत्ता पैसा आता कहाँ से है सगे?"

"है कोई रास्ता जिस पर हमारा चलना मना है।"

"गरीबन की मौत है।"

"नेताजी बता रहे थे, गरीबी हटबे वाली है?"

"पर उनने जे तो नहीं कही कि अमीरी आबे वाली है?"

"मतलब?"

"मान लो कि गरीबी हट गई, और अमीरी आई नहीं -फिर हम किते जाएँगे?"

"इतें ही पड़े रहेंगे, और क्या!"

"पर इतें से तो सरकार हमें हटा देगी- नेताजी अभी बताई रये थे न?"

"तो भैया, फिर हमारी ऐसी गरीबी न हटाएँ कि हम कहीं के न रहें। हम गरीब ही अच्छे।"

"जेई तो पहिचान है हमारी। गरीबी हटी तो हमें कोई पहिचान भी न पाएगा। सब हँसेंगे हमें देख-देख के।"

"सही बात! एक बार एक साहब ने हमें मजदूरी तो दी, साथ में हमें अपनी पुरानी कमीज भी दे दी। एकदम चमाचम कमीज; न कहीं से फटी, न उस पे कोई थिगला। हम उसे पहिन के कोटरा में निकले तो सब लोग हम पे खूब हँसे। सब कहें कि तू तो लाटसाब बन गया रे पुत्तल !... हम पे तो भैया, फटे कपड़े ही जँचते हैं।"

दोनों चुप हो गए।

दोपहर उतर रही है। एक कुत्ता टीले पर घूमता हुआ न जाने क्या खोज रहा है। ऊपर पुल पर काम चल रहा है। ठंडी हवा का एक झोंका आया। बेतवा के पानी को छूता हुआ वह झोंका इन दोनों के पास से निकला है।

"रामजी सबका भला करें।" पुत्तल ने आसमान की तरफ देखकर कहा और खंभे से पीठ टिका ली।

सरकार जब तक यहाँ से न भगाए, तब तक तो खंभे से टिक ही लिया जाए। गरीब को इतनी बेईमानी का अधिकार तो है अभी।

दर्शन दो घनश्याम

जिला शिक्षा अधिकारी का ऑफिस।

साहब का कमरा।

कमरे के दरवाज़े पर अभी परदा खिंचा हुआ है। साहब चिलमन में हैं।

परदे के इस तरफ़ एक छोटा-सा कमरा है। इसमें बस एक मेज़ है और एक कुर्सी। तीन टेलीफोन। कई फाइलें। मेज़ के इस तरफ़ भी दो कुर्सियाँ रखी हुई हैं। इस छोटे कमरे में साहब का पीए बैठता है। इस छोटे कमरे के भी बाहर एक भृत्य बैठा है। यूँ तो वह एक छोटे-से स्टूल पर बैठा है परन्तु भृत्य के बैठने की भंगिमा तथा ठसक से वह स्टूल एक सिंहासन में तब्दील हो गया है।

इन भव-बाधाओं के उस पार साहब बैठते हैं।

पंडिज्जी इस घाट के पुराने जजमान हैं। यहाँ के सब पंडे उन्हें पहिचानते हैं। पंडिज्जी को भव-बाधाओं से निबटने के पूजा विधान, चढ़ावों के ब्योरे तथा कीर्तन, सब कंठस्थ हैं। हाँ, इन भव-बाधाओं को पार करके आज जिनके

दर्शनों का संकल्प लेकर वे यहाँ आए हैं, अभी उस देवता को साधने का मंत्र उनको नहीं मिला है। साहब नए-नए ज्वाइन किए हैं। कोटरा तक इस नए देवता के प्रताप के किस्से ही पहुँचे हैं अभी तक तो। यूँ तो साहब की जन्मपत्री से लेकर आज तक का सारा इतिहास पता करके ही पंडिज्जी यहाँ आए हैं पर असली काम तो गर्भगृह में प्रवेश करने पर ही शुरू होगा। एक बार लेन-देन का पुल बन जाए, फल-प्रसाद तय हो जाए, देवता के चरणों में उचित जगह आवंटित हो जाए तो पंडिज्जी का भक्ति-आन्दोलन स्वयं ही गति पकड़ लेगा।

वैसे अभी तो साहब से उनका तुरन्त ऐसा कोई कार्य नहीं फँसा है। आज तो बस यूँ ही मिलना है साहब से। उनके सौजन्य दर्शन करने हैं, बस। नया साहब कुर्सी सँभाले तो वह भी पूरा हिसाब रखता है कि कौन उससे आकर मिला, और किसके दिमाग उसे ठिकाने लगाने पड़ेगे? परीक्षाओं में अभी कुछ माह शेष हैं पर साहब को अभी से टटोलकर रखना पड़ेगा। पुराने वाले साहब यहाँ चार साल तक रहे। उनकी रग-रग टटोल चुके थे पंडिज्जी। उनका तो सब पता था। अँधेरे में भी कभी कोई टाँग पकड़ में आ जाए तो बता सकते थे कि ये साहब के चरण हैं या नहीं? स्कूल में नकल चलवाने के कारोबार में पुराने साहब का कमीशन तय था। भले आदमी थे। लेन-देन में झिंकझिंक नहीं करते थे। जो दिया, ले लेते थे। चीजें आसान थीं। कहते थे कि पंडिज्जी, आप काहे कष्ट करते हैं, किसी के भी हाथ से भिजवा देते - एक लिफाफा ही तो है! भले आदमी थे। सीधे-सादे। एकदम गऊ कह लें। थन पर हाथ रखो कि तुरन्त दूध दे देते थे। कोई कागज धर दो, बिना हीलो-हुज्जत के अपनी चिड़िया उस पर बिठा देते थे। पैसे पकड़ाओ तो कहते थे कि यार, तुम ही धर दो न सीधे हमारे बैग में? बिना गिने धर लेते थे। एकाध बार कहा भी कि गिन तो लें सरकार, तो हँसने लगे; बोले, यार, चार पैसे कम भी हुए तो इत्ते में न तो हम गरीब हो जाएँगे, न ही आप अमीर। दिलवाले साहब थे।

अब इनका देखना पड़ेगा।

नए-नए साहब हैं। इससे पहले झाँसी में इनकी पोस्टिंग रही है। अब दो माह से यहाँ हैं। झाँसी में भी लेते ही रहे होंगे। खिर, झाँसी में भी तो अभी तक शिक्षा चलती रही है, वह बिना लिए- दिये तो चलती न होगी? सरस्वती पूजा के विधान तो सर्वत्र होते ही हैं। वहाँ भी इनको भोग लगता ही होगा। यहाँ भी लगेगा। बस, पता यह करना है कि लेंगे कितना? हम इत्ता लेके पहुँचे और साहब बिफर जाएँ कि बस, इत्ता- हमें चूतिया समझो क्या, तब? सो पहले से आड़िया लेना बेहतर। बाद में, ये ऐन नकल के दौरान यज्ञ में विघ्न पहुँचाने की राक्षस टाइप पहुँच जाएँ, उससे तो अच्छा है कि अभी पता कर लें कि कितना लेंगे? ज्यादा मुँ खोलेंगे तो हमें भी नकल कराने की रेट बढ़ानी होगी न। फिर हमें भी अपने क्लाइंटों से ज्यादा पैसे माँगने होंगे। ... यही सब टोह लेने आए हैं पंडिज्जी अभी !

पंडिज्जी को आते देखा तो भृत्य उचककर खड़ा हो गया। बड़ी इज्जत करता है पंडिज्जी की। जो भी पैसा दे, उसी की करता है।

"कैसे हो बाबूलाल जी?"

पंडिज्जी रुक गए। रुकना ही था। वे पहले यहीं रुकते हैं। हरदम। सर्वप्रथम नंदी को प्रणाम कर लिया जाए।

"किरपा है आपकी।" भृत्य प्रणाम मुद्रा में बोला।

"मानव की कृपा से कुछ नहीं मिलना है बाबूलालजी। कृपा तो आप पर है उस परमपिता परमेश्वर की। इत्ती बड़ी जिम्मेदारी पकड़ा रखी है सरकार ने, तो क्या ऐसेई?" पंडिज्जी ने आसमान की तरफ पहले उँगली, फिर हाथ पहले उठाकर हवा में ही जोड़ डाले

अभिवादन समाप्त हुआ।

बिना आध्यात्मिक हुए जितनी भी आध्यात्मिकता झाड़ी जा सकती थी, वह भी समाप्त हुई। अब दोनों मतलब की बात पर आए।

"साहब बैठे हैं?" पंडिज्जी ने उँगली आसमान की दिशा से हटाकर दरवाज़े की तरफ कर दी। परमात्मा फ़िलहाल उसी दिशा में बिराजा हुआ था।

"साहब? हैं न।"

पंडिज्जी थोड़ी देर तक वहीं खड़े रहे।

"क्या कहते हो? रिपोर्ट कैसी है?" पंडिज्जी के चेहरे पर अर्थपूर्ण भाव थे।

"अभी तो ठीक से कुछ पता नहीं चल पा रहा पंडिज्जी।"

"फिर भी?"

"होना क्या है साहब? ऐसा मान लें कि शुरू-शुरू का तामझाम चल रहा है। सारे नए साहब यही करते हैं।"

"खैर, जे भी सही है। आपने तो भौत देखे हैं ..."

"...जे सातवें हैं।"

"तो जे पहले के छह जैसे ही हैं कि कछू अलग दिख रहे हैं?"

"का अलग होना है महाराज? आदमी कित्ता भी अलग निकल आए, उसकी साहबी तो वोई रहती है। सबका खटका इसी से खुलता है।" भृत्य ने सिक्का उछालने का अभिनय किया।

पंडिज्जी मुस्कुराते रहे।

"सबको जे चइए! कोई सीधे लेता है, कोई हाथ घुमा के। हर साहब का असल सच जेई है। ... और बदनाम हम हैं कि साहब से मिलवाने के पैसा माँगते हैं, बताइए? कभी हमने आपसे माँगे?" भृत्य के चेहरे पर नूर टाइप बसरने लगा।

"आप क्यों माँगेगे? यह तो अधिकार है आपका।"

"वो बात नहीं है।"

"और वो भी तो साहब हैं, वे भी लेंगे ही। आदमी, साहब क्यों बनता है आखिर? अगर साहब लोग भी न लें तब उनमें और आदमी में कोई अन्तर ही न रह जाए?"

"एकदम सच्ची बात महाराज।"

"व्यवहार कैसा है? फालतू के बदतमीज तो नहीं हैं? साहबी इनके दिमाग पे तो नहीं चढ़ गई है? बात-बात पे ऐसे तो नहीं बिदकते मानो गरम तवे पे बैठे हों?"

"नहीं, नहीं, सो तो शरीफ हैं।"

"अभी तो अन्दर ही हैं न?"

"निकले नहीं हैं तो अन्दर ही हैं।"

"अकेले हैं?"

"अकेले ही हैं। कौन-सा लेटे हुए हैं कि साथ देने को कोई चइए।"

“जे तो बड़ी बदमाशी वाली बात कर दी बाबूलालजी आपने।”

“नहीं महाराज, जे भी होता है। यहीं, आफिस में, जे भी होते देखा है हमने। सरन साहब की याद है न मालिक ? उनका लेटने का काम भी यहीं हो जाता था। हमीं पहरा देते थे बाहर खड़े हो के।”

“खैर, सरन साहब जैसा जल्वा तो किसी का नहीं रहा कभी। राजा आदमी थे। रिश्त भी खुलेआम लेते थे। यहीं बैठकर पूरी गड्डी गिनते थे। लड़की भी माँगते थे तो साफ बता देते थे कि इत्ती उमर की, ऐसी चाहिए। साहबी हो तो ऐसी ही।” पंडिज्जी ने भावविभोर होकर सरन साहब का स्मरण किया।

भृत्य ने मुस्कुराकर पंडिज्जी को प्रणाम किया। पंडिज्जी ने दो सौ रुपए निकाल के उसके हाथ में दे दिये। भृत्य ने पैसे जेब में सरकाते हुए कहा :

“अरे, इसकी क्या जरूरत थी? घर की बात है।”

“हिसाब तो बाप-बेटे के बीच भी साफ रहना चाहिए बाबूलाल।” पंडिज्जी ने कहा।

“अरे, हम पे तो बस, आपकी किरपा बनी रहे, जेई भौत है।” भृत्य अभी भी प्रणाम मुद्रा में था।

दरवाजे की तरफ इशारा करते हुए भृत्य ने बड़े आदर के साथ “जाइए मालिक” कहा।

पंडिज्जी ने पीए के छोटे-से कमरे में घुसने से पूर्व जेब से निकालकर एक तावीज भृत्य को दिया।

“बाईं भुजा पर बाँध कर रखिए।”

“पर कमजोरी भुजा में नहीं, कहीं और है; हम बताए थे न?”

“हमें पता है पर वहाँ तावीज नहीं बाँध सकते न। ढीला होकर टपक जाएगा। भुजा में बाँधिए। यह स्तंभन यंत्र है। इसका असर होने दें, स्त्रियों के बीच आदरणीय हो जाएंगे।”

“हमें आप पर पूरा विश्वास है पंडिज्जी। ... आप तो स्वयं बड़े आदरणीय हैं।” भृत्य ने हँसकर कहा।

पंडिज्जी भी हँसने लगे। दरवाजे से अन्दर जाते हुए हँसकर बोले, “तू भारी बदमाश होता जा रहा है रे...।”

उन्हें अन्दर आते देखा तो पीए अपनी कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। पंडिज्जी की अगवानी करते हुए पीए ने कहा, “हमने तो बाहर से आती आवाज़ से ही पहिचान लिया था कि अपने पंडिज्जी हैं।”

“अरे, जरा बाबूलाल का हाल-चाल ले रहे थे।” कुर्सी पकड़ते हुए पंडिज्जी बोले।

अब दोनों इत्मीनान से आमने-सामने थे और उतने ही इत्मीनान से मुस्कुरा रहे थे।

“इनका हाल-चाल लेना भी बहुत जरूरी है। हिंदुस्तान में जिसने भी साहब के भृत्य का ध्यान रखना सीख लिया, मानिए कि उसने शासन व्यवस्था की ‘मास्टर-की’ बना ली।”

“खैर ‘मास्टर-की’ तो आपकी कस्टडी में रहती है।”

“चलिए, जेई मान लें। पर भृत्य के पास इसी की डुप्लीकेट चाभी रहती है पंडिज्जी।”

पंडिज्जी इत्मीनान से बैठ गए।

पीए से बहुत पुराना परिचय है। परिचय भी क्या, मान लें कि कारोबारी रिश्ता है। वर्षों से साहब लोग बदलते रहे हैं पर पांडेयजी पीए की इसी कुर्सी पर रहे। वे शिक्षा विभाग की हर ऊँचाई, नीचता, गहराई और उथले इलाकों के चोर रास्ते जानते हैं। इलाके की शिक्षा व्यवस्था में उनके प्रति आभार का एक स्थायी भाव है। यूँ तो वे भी ब्राह्मणवाद के कट्टर हामी हैं पर रिश्त लेने के मामले में वे और भी कट्टर हैं। ब्राह्मण हो या पिछड़े वर्ग का, सभी से रिश्त पूरी लेते हैं। रिश्त दिये बिना भी यहाँ कोई काम हो सकता है, ऐसे विचार को वे दिमागी खलल मानते हैं। रिश्त लेने-देने की बात वे ऐसी सहजता से करते हैं मानो कोई उस्ताद शास्त्रीय-गायक बेहद कठिन स्वर को पूरी सहजता से उठा रहा हो। रिश्त माँगते हुए, यह कहते हुए कि इसमें एक पैसा भी कम न होगा, आपसे यह शिकायत करते हुए कि आप जो नोट पिछली बार हमें पकड़ाकर गए थे उसकी एक गड्डी में सौ का एक नोट कम निकला था- यह सब करते हुए न तो उनके चेहरे पर रत्ती भर शर्म आती है, न ही उनकी जुबान लड़खड़ाती है। रिश्त के सिस्टम पर गहन भरोसा रखने वाले सरकारी कर्मचारी के मुख पर जो अनोखी चमक नज़र आती है वह तो है ही, उसके अलावा इनके चेहरे पर बेईमानी के आत्मविश्वास का अनोखा आभामंडल भी रहता है। इस आभामंडल के कारण किसी की हिम्मत ही नहीं होती कि उन्हें रिश्त न दे।

"और पंडिज्जी?" पूछा पांडेयजी ने। पीए का पूरा नाम दीनानाथ पांडेय है।

"बढ़िया!" पंडिज्जी ने हाथ जोड़ दिये।

"खैर, आपका तो हमेशा बढ़िया ही रहता है।"

"वो तो आप जैसे कृपालु जैसा रखते हैं, वैसे हम रहते हैं। ... जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिए।" 'राम' कहते हुए उन्होंने साहब के कमरे के दरवाज़े की तरफ इशारा करते हुए हल्के से एक आँख दबा दी।

पांडेयजी मुस्कुरा दिये।

"साहब ठीक हैं?" पंडिज्जी ने उसी इशारे के तारतम्य में पूछ लिया।

"ठीक होने के लिए ही तो आदमी साहब बनता है तो आदमी साहब पंडिज्जी। ... ठीक क्यों न होंगे?"

"सही कहा आपने। आदमी और साहब में यही तो अन्तर होता है। साहब हमेशा ठीक होते हैं; खराबी तो आदमी की होती है।"

"बड़ी बात कह दी पंडिज्जी आपने।"

"काहे के बड़ी बात पांडेयजी। हम तो बस एक युगसत्य बता रहे हैं।"

पांडेयजी मुस्कुरा दिये। बटुआ खोलकर तंबाकू बनाने लगे। पंडिज्जी चुप हो गए थे। थोड़ी देर तक पांडेयजी तंबाकू बनाते रहे और पंडिज्जी उनकी हथेली पर रगड़ी जा रही तंबाकू को देखते रहे। पंडिज्जी अचानक ही हौले-हौले मुस्कुराने लगे। पांडेयजी ने उनकी मुस्कान पकड़ ली।

"काहे मुस्का रहे हैं पंडिज्जी?"

"सोच रहे थे कि आप रगड़ते बढ़िया हैं।" पंडिज्जी हँसने लगे।

"आपने फिर से एक बड़ी बात कह दी है पंडिज्जी।" पांडेयजी ने हथेली बढ़ाकर तंबाकू पेश की।

अपने हिस्से की तंबाकू ग्रहण करते हुए पंडिज्जी बोले, "इस देश में जिसे ठीक से रगड़ना न आता हो तो उसकी अफसरी तो मान लें कि फेल है।"

"अरे, हम काहे के अफसर..."

"...हमारे लिए तो आप ही असली अफसर हैं। ये लोग तो आते-जाते रहते हैं। अमर तो आत्मा होती है।"

पंडिज्जी ने इशारा करके बताया कि वे किसे अमर बता रहे हैं। पांडेयजी हँसने लगे।

"आत्मा प्रसन्न हो जाती है आपकी बातें सुनकर, कसम से।"

पंडिज्जी मौन रहकर तंबाकू की गमक का आनन्द ले रहे हैं।

"फिर मिलवा देते इनसे तनिक।" पंडिज्जी ने साहब के कमरे की तरफ इशारा किया।

"मिलवाएँगे न। आपको न मिलवाएँगे तो किसको मिलवाएँगे? उनसे मिल लीजिएगा पर अभी थोड़ी देर हमसे भी तो मिल लिया जाए।" पांडेयजी ने अर्थपूर्ण लहजे में कहा।

"वो भी कोई कहबे की बात है पांडेजी? आपसे पूरा मिलकर ही उधर जाएँगे। हमें पता है कि उधर गर्भगृह है, पर पूजा-पाठ कौन-सा पंडित कराता है- जे भी हम जानते हैं।"

दोनों हँसने लगे।

"इस बार मार्च-अप्रैल की तैयारी अभी से चालू कर दें पंडिज्जी। साहब का यही इशारा है।"

"हम तो पूरे साल ही तैयारी करते रहते हैं। वैसे, साहब का असली इशारा किस तरफ है?"

"कल पूछने लगे कि इस जिले में नकल की क्या, कैसी स्थिति है? हमने साहब से यही कहा कि सर, जैसी व्यवस्था देश में सर्वत्र है सो इधर भी है-ऐसा मान लें।"

"फिर?"

"सुनकर बड़ी ज़ोर से मुस्कुराने लगे। बोले, कि हमने झाँसी में नकल माफिया पर लगाम लगा दी थी।"

"एक लगाम इधर भी लगा दी जाए मालिक। हम राजी हैं। लगाम लगाकर हमें जिस तरफ भी मोड़ेंगे, हम मुड़ने को भी तैयार हैं।" पंडिज्जी ने हँसकर कहा।

पांडेयजी मुस्कुराते रहे।

"हमें तो बस जे पता कर दें कि लगाम की कीमत क्या रहेगी?"

"साहब उसका भी इशारा करेंगे। हम नजर रखे हैं। चिन्ता न करें।" पांडेयजी ने आश्वस्त किया।

"और क्या कह रहे थे साहब?" पंडिज्जी ने टोह ली।

"कह रहे थे कि इस बार समस्त परीक्षा केंद्रों में सीसीटीवी कैमरे लगेंगे। इन कैमरों को जिला मुख्यालय से जोड़ा जाएगा। साहब लोग यहीं से बैठकर देखेंगे कि कहाँ क्या चल रहा है?"

"महाभारत टाइप व्यवस्था करने वाले हैं क्या? पर जे तो भौत बढ़िया बात कहाएगी। अरे, जे कहाता है स्साला, सक्षम प्रशासन। वाह!" पंडिज्जी ने कहा।

"आप बात के मर्म तक पहुँचने में विलंब नहीं करते हैं पंडिज्जी।"

"बस, गांधारी वाली पट्टी को यहाँ के संजय लोगों की आँखों पर बाँधने की फीस क्या रहेगी, तनिक इसका भी इशारा पकड़ के हमें बता देंगे तो..."

"वो सब पता करने का काम हमारा है पंडिज्जी; हम यहाँ हस्तिनापुर में काहे के लिए बैठे हैं?"

"आपने अच्छा बता दिया। अभी मिलेंगे तो हम इस बहाने साहब के सक्षम प्रशासन की तारीफ कर देंगे। है कि नहीं?"

"बिलकुल। साहब खुश हो जाएँगे।"

"अरे, कहने में हमारे बाप का क्या जाता है? बाकी कैमरों से नकल रुक गई होती तब तो..."

"...तो नकल रुकवाने की बात ही कौन कर रहा है महाराज? कैमरे की बात तो बस रेट बढ़ाने का इशारा भर है।"

"वैसे, क्या कर रहे हैं साहब अभी?"

"परदा खेंच रखा है- कैसे बताएँ?"

"पांडेयजी, परदे के पीछे की बातें अगर पीए से भी छुपने लगीं तब तो सरकार इस पद को ही खत्म कर देगी। पीए के साथ साहब की कोई परदादारी नहीं चलती है मालिक। बताइए न? और क्या चल रहा है, परदे के पीछे?"

"अभी तो स्कीमें बन रही हैं..."

"... कैसी स्कीमें?"

"कहते हैं कि परीक्षा केंद्रों पर छापा मारने वाले दलों को फिर से सक्रिय करेंगे। हर दल को नकल पकड़ने के टारगेट दिये जाएँगे..."

"... जरूर करें, पर समझा देना कि इसके लिए वे कहीं खुद न पहुँच जाएँ। साहब को इस एरिया के सारे खतरे ठीक से समझा दीजिएगा। गाँव-खेड़ों का माहौल खराब है। हम वहाँ कितने खतरे उठाकर परीक्षाएँ कराते हैं उसे साहब लोग यहाँ बैठकर जान ही नहीं सकते। पहले तो केवल छात्र-छात्राएँ ही नकल करते थे। अब लौंडों के माँ-बाप, रिश्तेदार भी नकल लेकर स्कूल की बाउंड्री पर खड़े रहते हैं। छापामार दलों से ये लोग बाहर ही बाहर निबट लेते हैं।"

"कहते हैं, पुलिस की सहायता लेंगे।"

"परीक्षा हो रही है कि डकैती पड़ रही है? सारी पुलिस इधर लग गई तो चोर-डकैतों के पीछे कौन भागेगा? हमें तो अब आपके साहब की चिन्ता हो रही है, जनता उजड़ू है; वो कभी जे पूछकर नहीं मारती कि आप किस पोस्ट पे हो। ... सबके पास तमंचे हैं। पिछली बार गुरसराय में कैसी गोली चलाई थी फ्लाईंग स्क्वाड पे, याद है न? मारी तो जीप के टायर पे थी कि भस्ट हो जाए पर लगी थी जीप में बैठे मास्टर की टाँग में। बेचारा आज तक अदालत-अदालत लँगड़ाता फिर रहा है।"

"हमें पता है पंडिज्जी।"

"तो उनको ठीक से सब कुछ समझाइए न!"

"चिन्ता न करें। सब सेट करा दिया जाएगा। हम यहाँ बैठे हैं न।"

"बस, आपका ही सहारा है।"

"अरे, सहारा तो उस परमपिता का है पंडिज्जी।"

"उसका तो है ही; उसी ने तो हमारे लिए आपको यहाँ बिठाया है।"

"खैर आप पूजा-पाठ वाले आदमी हैं। आपकी पूजा तो इलाके भर में मशहूर है। कहते हैं कि आप सुबह चार बजे से उठकर पूजा-पाठ शुरू कर देते हैं?"

"ब्रह्ममुहूर्त में ईश्वर जल्दी सुनता है पांडेयजी। तब, इतनी सुबह, उसके चारों तरफ भक्तों की भीड़ कम रहती है।" पीए हँसने लगा।

"हमने साहब को आपकी यह बात पहले ही बता रखी है। कहने लगे कि भाई, ऐसे धार्मिक व्यक्ति से तो हम जरूर मिलेंगे। साहब भी आपकी तरह ही धार्मिक हैं। खूब पूजा-पाठ करते हैं।"

ईश्वर का संदर्भ आया तो पंडिज्जी भाव-विभोर हो उठे। भाव-विभोर हुए तो आँखें मिंच गईं। उन्हें आँखें मींचे हुए ही छोड़कर पीए उठ गया।

"आप बैठो, हम साहब से पूछकर आते हैं..." कहकर वह परदा हटाकर अन्दर चला गया। फिर काफी देर तक वह बाहर ही नहीं आया।

पंडिज्जी शुरू में तो चुस्त होकर कुर्सी पर सतर बैठे रहे कि साहब बुलाते ही होंगे परन्तु पीए तो अन्दर का होकर ही रह गया। अब? पंडिज्जी धीरे-धीरे ढीले होते गए, फिर देर होती ही गई तो वे ऊँघने लगे। फिर और भी देर हुई तो ऊँघते हुए सपना तक देखने लगे।

सपने में उन्होंने देखा कि वे रिश्वत दे रहे हैं और साहब खुशी-खुशी उनसे ले भी रहे हैं।

न तो साहब ने रेट की कोई हुज्जत की, न फालतू के नखरे दिखाए। और उनके हाथ से सीधे ही ले ली। रिश्वत लेकर अभयदान भी दिया कि जाइए, जहाँ जितनी नुकल करवानी हो, करवाइए। ... बताइए ! रामराज्य आ गया कि नहीं? इसी खुशी में नुँद टूट गई उनकी। जागी आँखों का सपना हमेशा सच निकलता है-कभी पिताजी ने कहा था उनसे। आज का यहाँ आना जरूर सार्थक सिद्ध होगा, यह सोचकर वे पुनः सतर बैठ गए और परदे पर निगाह रखकर अन्दर बुलाए जाने की प्रतीक्षा करने लगे।

पिटाई विमर्श में शान्तिदूत

कहीं मारपीट हो रही हो तो बीच-बचाव कराने वाले लोग भी प्रकट हो ही जाते हैं। मानव जाति का स्वभाव है यह। ऐसे शान्तिदूत कोटरा में भी बहुत थे। वैसे उनके रहते हुए भी डंडे चल ही जाते थे। इस चक्कर में वे स्वयं भी डंडा खा जाते थे। परन्तु शान्तिदूत चैन से नहीं बैठते थे। वे कोटरा में यहाँ-वहाँ घूमते ही रहते। विवाद को दूर से सूँघ लेते। खट से वहाँ पहुँच जाते। अच्छी-भली गुथमगुथा होने की तैयारी को खामखाँ बिलोरने की कोशिश करते।

कोटरा में दो तरह के शान्तिदूत थे। एक तो वे जो लड़ाई के बीच उतरकर डायरेक्ट एक्शन में विश्वास करते थे- इनकी चर्चा अभी हमने ऊपर की परन्तु ज्यादातर दूसरी तरह के शान्तिदूत थे। ये कहीं दूर, सुरक्षित दूरी पर खड़े

होकर, शान्ति की बातें करने वाले शान्तिदूत थे। कभी, कहीं लोगों के बीच किसी विवाद, फौजदारी या गाली-गुप्ता की घटना की चर्चा हो रही हो तो ये उसमें ऐसे उत्साह से भाग लेते कि बोलते-बोलते मुँह से झाग फेंकने लगते। हाँ, चर्चा करते हुए वे तीन बातों का खयाल जरूर रखते : (एक) वे दोनों पार्टियों को बराबर का दोषी मानकर बात शुरू करते। किसी ने किसी को पीटा है तो यह गलत काम किया है पर पिटने वाले ने भी अवश्य कोई पिटने वाला काम ही किया होगा- वे उसी तारतम्य में यह भी जोड़ देते। अपनी बात में वे यह आप्त-वाक्य भी जोड़ देते कि भाई साब, मारपीट किसी भी चीज का हल नहीं है। (दो) वे सबके मन की बात कहते हैं; किसी भी बात पर वे किसी से असहमत नहीं होते हैं। चर्चा कर रहे हर व्यक्ति से वे सहमत होते चले जाते हैं और साथ-साथ अपनी बात भी कहते जाते हैं। कोई इनकी बात काट दे तो हँसकर मान भी जाते हैं। कहते हैं कि भाई साहब, आपने भी भौत सही पाइंट से काटी है हमारी बात। सही कहा आपने, असल में अभी हमने बात ही बड़े चूतियापे की कह डाली थी। कभी-कभी हमसे भी गलती हो जाती है। ... वे खुद की बात काटने वाले शख्स की खूब तारीफ़ करते। कहते कि आपकी यही बात हमें भौत बढ़िया लगती है कि आप फालतू की मुरव्वत में नहीं पड़ते हैं। चूतियापे की बात कही जा रही हो तो आप उस बात को वहीं काट देते हैं, वो भी फटाक से। (तीन) वे बार-बार, और बीच-बीच में कहते जाते हैं कि कोटरा में शान्ति की बड़ी आवश्यकता है। वे यह भी बताते जाते हैं कि शान्ति तथा सद्भाव से ही समाज का विकास होता है और नई पीढ़ी को दिशा मिलती है। उनके इस विमर्श से कोटरा में कितनी शान्ति पैदा होती थी, इसे कभी मापा नहीं गया परन्तु यह तय था कि इनकी बातों से मनोरंजन तो सबका होता था।

वैसे शान्तिदूत वाली यह बात अभी यहाँ कैसे निकल आई है?

हुआ यूँ कि दो दिन हुए, पंडिज्जी के खेत से लगी उस कच्ची पगडंडी पर, जो उसे दूसरे खेत से अलग करती थी, शाम की जब अँधेरा-सा हो रहा था, कुछ लोगों ने पड़ोसी खेत के मालिक सुरेंलेजी के लौंडे की कनपटी पर तमंचा धर के उसकी बढ़िया पिटाई कर दी। जाते-जाते वे सुपुत्र का पैंट-शर्ट भी उतरवा कर ले गए। बताते हैं कि पैंट में दस हजार रुपए भी थे। फिर तो यह डकैती कहाई भाई साहब? वही तो, पर कोई सुन ही नहीं रहा। सुरेंलेजी भी तो यही चाहते हैं कि थाने वाले इसकी एफ़आईआर को डकैती के तौर पर दर्ज करें पर वहाँ उनकी कोई सुनवाई ही नहीं हो रही। वे अपने पिटे सुपुत्र को लेकर थाने पहुँचे थे। थानेदार ने उनसे यही कहा कि "श्रीमान, रिपोर्ट में आप वही चीज लिखवाओ जिसका बजन उठाबे की आपमें कूबत हो। आप भी जानते हो कि जे दस हजार रुपए वाली बात एकदम गलत है। कौन घूमता है इत्ते रुपए जेब में डालकर? आपका बच्चा पिटा है, यह सच है। पर, बस यही, और इत्ता ही सच है। अब अगर तुम ऐसी छोटी-मोटी मारपीट में भी डकैती की धारा लगवाना चाहते हो तो वह लग तो जाएगी पर वह सब तुमको बड़ा महंगा पड़ जाएगा; और जो तुम किसी विशेष व्यक्ति को डकैती में फँसाने के चक्कर में हो, तो याद रखना कि यह और भी महंगा पड़ जाएगा; और जो तुम किसी बड़े आदमी को अन्दर कराबे की ठाने हो तो हमारे रहते तो यह अन्याय कोटरा में होगा नहीं।"

थानेदार ने आगे उनको ठीक से चेताया :

"सबको पता है कि इस ठुकाई के पीछे लौंडियाबाजी का चक्कर है। जे तुम्हें भी खूब पता है। उचित तो यह रहता कि तुम लौंडे को लेकर खेत से ही डायरेक्टली घर निकल जाते और एकदम चुपचाप रह जाते। सुपुत्र को हल्दी का दूध पिला देते और समझाते कि आदमी को इश्क में पिटने-पिटाने का ऐसा बुरा नहीं मानना चाहिए। वैसे तो आदमी लौंडिया के चक्कर में न ही पड़े तो यह सबसे अच्छा परन्तु लंगोट की डोरी यदि बहुत कच्चे सूत की बुनी हुई हो तो फिर उसे पिटबे के लाने भी तैयार रहना चाहिए। ... इसमें बुरा मानने, उज्झर करने या थाने में रिपोर्ट करने की बात कहाँ से आ गई-बताइए? हम फिर तुमसे जे भी पूछ सकते हैं कि जे दस हजार रुपए कहाँ से लाए थे और खेत में किसे देने जा रहे थे? सो तनिक सोच लो पहले।"

थानेदार ने अन्ततः उनसे एक सादे कागज पर साधारण मारपीट की शिकायत लिखवाकर अपनी दराज में धर ली थी।

सुरेलेजी ने थाने में यह भी बताया था कि पीटने वालों को हमारा मोंड़ा मात्र इसीलिए नहीं पहिचान पाया है क्योंकि सबने अपने मूँ पे गमछा बाँध रखा था, पर वे थे पूरे तीन। एक ने पीछे से कनपटी पर कट्टा धरा। दो ने पीटा। मोंड़ा ने जे जरूर बताया है कि उनमें से एक जन की आवाज हमें पहिचानी-सी लगी हती। एकदम पंडिज्जी के लौंडे की आवाज हती वो। पक्का है कि उनमें से एक आदमी अपोली ही रहा। अपोली ने ही पिटवाया है साहब। देखिए न, कित्ता मारा है; सिर फोड़ दिया मोंड़ा का। तो कम से कम अपोली का नाम तो डाल ही दें शिकायत में।

सुरेलेजी जोर देते रहे कि एफआईआर में आरोपी के नाम में अपोली का नाम डाला जाए।

थानेदार ने कहा, फिर चेताया भी कि शिकायत में किसी का भी गलत नाम लिखवा दिया तो उल्टा तुम पे ही तोहमत आ जाएगी। पता है न, झूठा केस दायर करने की धारा और भी खराब होती है?

अन्ततः बात अज्ञात लोगों द्वारा मारपीट की शिकायत दर्ज कराने पर टूटी थी।

शाम को पिटाई सम्पन्न हुई, देर रात तक सारे कोटरा को इस बात की खबर भी हो गई।

अब शान्तिदूत का रोल आता है। वह कैसे? वह यूँ:

कि सुबह चाय की दुकान पर इसी घटना पर विमर्श जारी था और मात्र इस कारण से, चाय और भी मीठी, हवा और भी सुकून भरी, सुबह और भी सुहानी लगने लगी थी। शान्तिदूत महोदय भी वहीं चाय पी रहे थे। विमर्श में वे भी उतर गए।

"बताते हैं कि कनपटी पे तमंचा धर दिया था।" घटना को पूरी नाटकीयता से बता रहा था कोई।

"और कहाँ धरते?" किसी ने पूछा।

शान्तिदूत को मौका मिला। वे बोले: "तमंचा तो भैया कनपटी पर ही रखते हैं। यही रिवाज है। वैसे आदमी तमंचा कहीं भी धर सकता है। कोई ऐसी रोक भी नहीं है। इसे कहीं भी धरो, असर वही होता है।"

शान्तिदूत की किसी ने नहीं सुनी। उनकी वैसे भी कोई सुनता नहीं है। उन्हें भी इसकी परवाह नहीं।

"पर ऐसा मारना ठीक नहीं।" किसी ने इसी बीच कहा।

"तो फिर कैसा मारना ठीक कहाएगा? किसी को नंगा करके पीटने में ऐसी क्या बुराई है?"

"नहीं, यह ठीक नहीं।"

"ठीक कह रहे हैं आप। वैसे, ठीक तो आप भी कह रहे हो कि मारना, मारना सब एक बराबर; नंगा करके मारो, चाहे कोट-पैट में कूट दो।" शान्तिदूत ने दोनों की सहमति दर्ज की।

"वैसे तो किसी को भी मारना ही क्यों? बैठकर चर्चा क्यों नहीं..." शान्तिदूत ने मौका देखकर शान्ति की पेशकश भी कर डाली।

"...बैठ के क्यों? खड़े-खड़े क्यों नहीं?" किसी ने पूछ लिया।

"क्योंकि खड़ा आदमी लात भी मार सकता है।" किसी और ने ही जवाब भी दे डाला।

"हम तो कहते हैं, लेट के चर्चा करो न।" किसी और ने एकदम नए कोण से बात पकड़ी।

"यार, आप तो चुप ही रहो ददा। लेटना क्यों है भैया? कोई चूमाचाटी होनी है क्या?"

"बैठो, लेटो, जो करो; पर बात तो करो। जब बातचीत से समस्या सुलझाई जा सकती है तो उसमें मारपीट का भला क्या काम?...बताइए?" अब जाकर शान्तिदूत को शान्ति प्रस्ताव आगे बढ़ाने का मौका मिला।

"भाई साहब, चर्चा करना एक अच्छी बात है पर लातन के भूत बातन से मानते हैं क्या?"

"खैर, जे भी सच है।" शान्तिदूत को स्वीकार करना पड़ा। कुछ देर को वे चुप हो गए। कुछ सोचते रहे।

इधर अन्य लोगों के बीच पिटाई-विमर्श जारी रहा :

"कुटाई जोरदार भई है मोंड़ा की। फींच के धर दिया है बेचारे को।"

"भौत चोट आई है क्या?"

"थाने में मूँड़ पे पट्टी बाँध के तो बैठा हुआ था।" किसी चश्मदीद ने बताया।

"मतलब जे कि कोई खास चोट नहीं है। पट्टी-फट्टी तो सब ठनगन होते हैं। सच्ची में मूँड़ फूटा होता तो आदमी अस्पताल में होता कि थाने में?"

"ऐसा नहीं है। मूँड़ तो उसका जरूर ही फूटा है। पट्टी पर खून भी दिख रहा था।"

"लाल रंग का मतलब जे नहीं होता कि धब्बा खून का है।"

"सही बात। लाल रंग की तो स्याही भी आती है। वैसे पिटे हैं, तो फिर खून ही होगा।" शान्तिदूत ने कहा।

"चलो, मान लिया, खून का धब्बा था, तो? अरे यार, पिटे हो तो थोड़ा खून भी निकलेगा कि नहीं? जे कोई बड़ी बात तो नहीं कहाई।"

"तो फिर बड़ी बात कब कहाती भाई साब? जब एकाध की लाश गिर जाती, तब? क्यों?"

"गिर जाती का क्या मतलब? गिरी तो नहीं न? फिर? खुपड़िया पे बस, जरा-सी पट्टी बँधी है और बात ल्हास गिरने की कर रहे हैं! क्या सोचते हैं आपके सुरेलेजी? मूँड़ पे धर्जी बराबर पट्टी लगा के कोटरा वालों को चूतिया बना लेंगे?"

"तो आप ही बताइए न? आप कब जाकर मानेंगे कि चोट ठीक-सी लगी है?"

"जब ठीक-सी लगी हो, तब..."

"...पर उसे लगी तो है न?"

"जरा-सी खरोंच को बड़ी चोट कहोगे तो कौन मानेगा? सुरेलेजी को पता नहीं है, दरोगाजी पुराने खिलाड़ी हैं। तभी तो दरोगा ने भी उन्हें फटकार दिया कि आप हमें जे जरा-सी खरोंच, छोटा-सा नील, इत्ता-सा गूमड़ा और थप्पड़ के निशान न दिखाओ। कानूनन इनकी कोई भेल्यु नहीं है; जे सब सिम्पल इन्जुरी में आते हैं। कुर्त्त-बिल्ली को तो अगर ऐसी चोट लगे तो वे उसे चाट-चूट के खुदेई ठीक कर लेते हैं; और तुम मूँ उठाए, आदमी के इस बच्चे को थाने ले आए?"

"थानेदार ऐसा बोला सुरेले जी से?" शान्तिदूत ने आश्चर्य प्रकट किया।

"और क्या बोलेगा वह? अगर इत्ती-सी पिटाई पे भी पुलिस एफआईआर भरन लगे तो थाना तो एफआईआर रजिस्ट्रों से ही भर जाएगा।"

"पर कायदे से तो जे भी पुलिस का ही काम है भाईसाब।"

"तुमने इतें तो हमें कह दिया, कभी थाने में जाकर न बताने लगना कि उनका क्या काम है।"

"क्यों भला?"

"क्योंकि उल्टा टाँग देना भी उनका एक स्पेशल काम है।"

"पर जनता की रपोट तो उनको लिखनी पड़ेगी कि नहीं? दरोगाजी ऐसे किसी को रिपोर्ट के लिए मना नहीं कर सकते।" "क्यों भैया? मना भी करें तो तुम क्या कर लोगे?" किसी ने वह जटिल सवाल कर डाला जिसका उत्तर उनके पास नहीं था जो अभी कायदा बताने की कोशिश कर रहे थे। उन्होंने विषय ही बदल दिया, बोले, "पर मारा तो बहुत है भाई साब।"

"यह आपको कैसे पता? आप वहाँ थे? ऊपर से तो लौंडा एकदम बढ़िया दिख रहा है।"

"ऊपर से तो ठीक दिखेगा ही। मुँदी मार मारी गई है।"

"तुम जे सब इत्ते विश्वास से कैसे कह रहे हो?"

"लौंडिया का मामला है भाई साब। ऐसे में ठुकाई जम के ही की जाती है। मर्डर तक हो जाते हैं।"

"ठीक कहते हैं आप। स्त्री के मामले में हमेशा हमेशा बढ़िया ही पिटाई होती है। और मुँदी मार ही मारी गई होगी।" शान्तिदूत ने दोनों से सहमति जताई।

"मुँदी मार का मतलब?" किसी नादान ने प्रश्न किया।

"तुम मुँदी मार नहीं जानते?" लोग हँसने लगे।

"एक दिन अइयो, हम तुम्हें मार के बताते हैं।" किसी ने प्रस्ताव दिया।

"यार, मुँदी मार का मतलब जे कि तुम कुटपिट तो खूब गए पर ऊपर से एकदम बढ़िया दिख रये, समझे कछू?"

"मोंड़ी के मामलों में मुँदी मार का ही चलन है।"

"यार, जे मोंड़ी वाला क्या मामला है सगे?" कोई उत्कंठित होकर पूछ रहा है।

"है पंडिज्जी के स्कूल की कोई मोंड़ी। ग्यारहवीं कक्षा में पढ़ती है। उसी की क्लास में सुरेंलेजी के सपूत भी पढ़ते हैं।"

"फिर?" शान्तिदूत भी अति उत्सुक हैं।

"फिर क्या? लगे हैं सुरेंलेजी के सपूत उसके पीछे।"

"सुरेले के मोंड़ा को थोड़ा संयम रखना था।" शान्तिदूत ने गंभीरतापूर्वक बताया कि सभी पराई स्त्रियों को माँ-बहन मानने वाला देश है यह।

"भाई साहब, सब तरफ पराई स्त्रियाँ ही दिखें तो आदमी क्या करे? मोड़ी दिखे तो मानव मन कमजोर तो हो ही उठता है न? यह तो..." किसी ने सुरेले सुपुत्र की तरफ़दारी में कहा।

"मानव मन केवल उनके सपूत के पास ही है क्या?"

"मतलब?"

"पंडिज्जी की औलाद के पास भी तो एक मानव-मन है।"

"कौन, अपोली?"

"होना।"

"पर अपोली तो शादीशुदा हैं?"

"तो? क्या शादीशुदा आदमी के अन्दर मानव-मन नहीं होता है?"

"फिर भी..." शान्तिदूत ने आपत्ति दर्ज कराने की कोशिश की।

"क्या फिर भी?"

"...यही कि शादीशुदा आदमी लड़कियों के लिए फौजदारी करे-यह तो बड़े शरम की बात है।"

"तो आप पहले ठीक से शरमा लीजिए फिर आगे की बात करी जाए।"

"हम अपनी बात नहीं कह रहे। यह पंडिज्जी के लिए शरम की बात है।"

"बे तो खैर इस मामले में जरा भी नहीं शरमा रहे। हमें कल शाम को ही स्कूल से निकलते हुए मिले थे।" किसी ने बताया।

"फिर? क्या बोले बे?"

"क्या बोलते; हँस रहे थे। उनके मुँ पे शरम का एक छींटा भी नहीं था।"

"अरे!"

"हमने इशारों में उनसे सुरेलेजी का जिक्र करके कुछ पूछा भी..."

"... इशारों में क्यों? सीधे क्यों नहीं? अरे, जब बे नहीं शरमा रये तो आप काहे शरमाते हैं?"

"हम क्यों शरमाएँगे?"

"तो फिर आप उनकी टोह ले रये थे क्या?"

"वोई मान लो।"

"फिर?"

"फिर क्या? पंडिजी हँसने लगे। बोले कि ऐसी शिकायतें तो जवानी का प्रमाण मानी जाती हैं। जवानी आती है तो कहीं न कहीं से फूटती भी है। अपोली की जवानी फूट रही है, और कोई खास बात नहीं- ऐसा बोले बे।"

"यह तो उनकी बेशर्मी है।"

"पर मोंड़ी का बाप जरूर शर्मदार निकला; उसने मोंड़ी का नाम स्कूल से कटा लिया है।"

"पर मारपीट तो अब चलती रहेगी। सुरेंलेजी का लौंडा भी कोई चुप बैठने वालों में से नहीं है।"

"खैर, मारपीट चल पड़े तो फिर चलती चली जाती है।"

"ऐसी चलती है मानो ढलान पे गाड़ी के ब्रेक फेल हो गए हों।"

"वैसे मोंड़ी को घर बिठा दिया है तो शायद..."

"...घर बिठाने से बात नहीं बनने वाली भैया। सोमवार परी दिन-रात का पहरा तो ना बिठा दोगे?"

"ठीक कहा। वैसे भी जमाना खराब चल रहा है।"

"अच्छे जमाने में भी जेई सब होता था। हर जमाने में जेई होता है। कन्या का मामला फँसा हो तो हर जमाना एक-सा है।"

"फिर? क्या करे कोई?" शान्तिदूत ने पूछा।

"बस, अच्छे से ठोंक दिया जाए दोनों को। मोहब्बत का बड़ा पुरातन परन्तु शर्तिया इलाज तो जेई है। इससे मानव मन भी फटाफट काबू में आ जाता है।"

"कौन ठोंकेगा?"

"मोंड़ी का बाप, और कौन।"

"अरे छोड़िए! उसकी इत्ती हिम्मत नहीं। देखना, ईसपगोल खाके सो जाएगा।"

"पर मारना-पीटना तो उचित बात नहीं।" शान्तिदूत ने कहा।

"तो क्या दोनों की आरती उतारी जाए?"

"जे बात भी सही है आपकी। आरती न उतारी जाए पर..." शान्तिदूत ने कहा।

"हमारी बिटिया होती तो हम लाठी से उसका सिर फोड़ देते।"

"सही बात।" किसी ने कहा।

"लाठी का क्या मतलब? बच्चों को समझाया भी तो जा सकता है।" शान्तिदूत लाठी के खिलाफ मोर्चा तजने को राजी नहीं।

"पास में लाठी होबे का मतलब जे नहीं है कि..." कोई और भी शान्तिदूत की भाषा बोला।

"आप भी वही कह रहे हैं जो हमारा विचार है।" शान्तिदूत बोले।

“तुम तो यार अब चुप ही रहो भैया।” किसी ने शान्तिदूत को चेताया।

“यह भी सही बात कह दी आपने।” शान्तिदूत ने कहा और चुप हो गए।

पर विमर्श लाठी की तरफ पहले ही मुड़ चुका था।

“लाठी कोई टिक के खड़े होने के लिए तो बनी नहीं है।” उसी ने कहा।

“पर लाठी पीटने के लिए ही बनी हो ऐसा भी नहीं है। गांधीजी भी तो लाठी रखते थे। रखते थे कि नहीं?” किसी ने शान्तिदूत के दिल की बात कह दी।

“सही बात...” शान्तिदूत दुगने उत्साह से बोले कि गांधीजी चरखे के ठीक बगल में ही अपनी लाठी भी धरे रहते थे; पर मजाल है कि उन्होंने किसी को एक लाठी भी मारी हो।

“यार, हमारे देश में जेई गड़बड़ है- लोग हर बात में गांधीजी को घुसेड़ देते हैं। गांधीजी कभी भूले भटके कोटरा आ के देखते तो...”

“... गांधीजी हिंसा विरोधी थे। वे कभी कोटरा आते तो ऐसी मारपीट के विरोध में अनशन पर बैठ गए होते।”

“... कोटरा में तो फिर गांधीजी सारे टेम भूख हड़ताल पर ही बैठे रहते।”

“ऐसा नहीं है भाई साब। हम तो कहते हैं कि कोटरा में रहते तो गांधीजी खुदई लाठी चलाने लगते।”

“सही कहा आपने। हो सकता है कि तब वे वायसराय साहब का सिर फोड़ देते या कभी जवाहरलालजी को ही एकाध लाठी जड़ देते।”

“ऐसा नहीं है। जवाहरलाल जी पर तो बड़ा स्नेह रहा गांधीजी का...” शान्तिदूत ने धीमी आवाज़ में असहमति प्रकट करनी चाही।

“कोटरा में सबसे ज्यादा लाठी स्नेह करने वालों के बीच ही चलती है भाईसाब।”

“कोटरा का पानी ही ऐसा है।” at Boom

“यार, कोटरा के पानी को दोष न दें।” शान्तिदूत को कोटरा पर दोषारोपण मंजूर नहीं।

“क्यों न दें? देखिए, आप हैं सीधे-सादे आदमी। आप पर जरूर यहाँ का पानी कोई असर नहीं कर पाया है क्योंकि आप शराफत की छत्री से छानकर इसे पीते हैं। आपका पानी मूत बन के बह जाता है, बस। आपको कोटरा के पानी का असर देखना है न? तो अपोली को देख लो। जे होता है पानी का असर; उसने कैसा बढ़िया ठोका है सुरेंलेजी की संतान को?”

“जे भी ठीक...” शान्तिदूत को सहमत होना पड़ा।

“घंटा ठीक।” किसी ने कहा।

“जे भी ठीक। घंटा तो हमेशा ठीक रहता ही है।” शान्तिदूत ने दाँत निपोर दिये।

बीच का पुल और गंदा नाला

“बड़े साहब लोगों तक किसी की रिश्त पहुँचाने को ऐसा कोई आसान काम समझे हो क्या? देखिए, छोटे-मोटे कर्मचारी तो सीधे ही रिश्त माँग लेते हैं, और वो भी किन्ती ! ... माँग लिए, सौ दो सौ, बस। उसे रिश्त न ही कहा जाए तो उचित रहेगा। उसे तो बस, चना-मुरमुरा टाइप प्रसाद मान लें।” बैठक में धरे मूढ़े पर बिराजे हुए बिस्मिलजी सामने बैठे क्लाइंट को रिश्त देने के काम की जटिलता समझा रहे हैं। एक बड़े अफसर तक रिश्त पहुँचाना कितना कठिन और ज़िम्मेदारी का काम है, यह बतला रहे हैं वे।

क्लाइंट को पास के ही गाँव से किसी ने उनके पास भेजा है।

क्लाइंट को रिश्त देनी है। तहसीलदार से काम फँसा हुआ है। वैसे, काम एकदम जायज़ है। तो जायज़ काम के लिए कैसी रिश्त? ... ताकि साहब कहीं उसके जायज़ काम को नाजायज़ करार न कर डालें। वे कर सकते हैं। ताकत है उनकी कलम में। बड़े अफसर हैं। टेम पे रिश्त न पहुँचाई गई तो वे उसकी फाइल में ज़रूर कुछ गड़बड़ कर देंगे, ऐसा विश्वास है क्लाइंट को। रिश्त तो देनी ही होगी, पर दें कैसे? इत्ते बड़े अफसर को सीधे रिश्त कैसे दी जाए, यही दुविधा है। साहब तक रिश्त पहुँचाना बड़ी जटिल पहेली है। इस पहेली का तोड़ बिस्मिलजी के पास है। कैसे? वे इस इलाके के स्थापित दलाल हैं। बीच का पुल हैं। पोलम-पोल हैं। चोर रास्ता हैं। पीछे के दरवाज़े की साँकल हैं वे।

अफसरों और रिश्त पहुँचाने वाले विश्वसनीय बिचौलिए की तलाश में बेचैन लोगों के बीच एक विश्वसनीय नाम है बिस्मिलजी का। अफसरों से उनकी निकटता के चर्चे पूरे इलाके में चलते रहते हैं। सामने बैठा क्लाइंट बिस्मिल जी की इसी कीर्ति के कारण अभी यहाँ बैठा हुआ है। वह रिश्त की रकम जेब में रखकर लाया है। किसी की सिफ़ारिश भी साथ में लाया है कि बिस्मिल जी उसकी यह रिश्त सही व्यक्ति तक पहुँचवा दें। बिस्मिलजी ने पहले तो इस काम के खतरों का ज़िक्र करते हुए रिश्त के पचड़े में पड़ने से ही साफ़ मना कर दिया और फिर उसी श्वास में यह कहते हुए वे मान भी गए कि आप हमारे ऐसे क्लोज़ आदमी की सिफ़ारिश लेकर यहाँ पधारे हैं कि आपने हमें बड़े धर्मसंकट में डाल दिया है।

इसी तारतम्य में अब वे बता रहे हैं कि अफसर को रिश्त पहुँचना कितना कठिन काम होता है।

“भाई, अफसर तो अफसर होता है। वो हरेक से तो पैसा लेगा नहीं। कभी सीधे दोगे भी तो बमक जाएगा। रकम को वापस तुम्हारे मूँ पर मार देगा। सो जे ऐसा सरल काम तो है नहीं। अगर मात्र पैसे के इंतजाम से ही रिश्त हो जाती तो फिर बात ही क्या थी! होंगे पैसे आपके पास, पर अफसर तुमसे लेगा ही क्यों?”

बिस्मिलजी का रिश्त प्रसंग जारी है :

“रिश्त लेने वाला भी ऐसेई रिश्त नहीं ले लेता है भाई साहब। यहाँ कौन रसाला आपको रंगे हाथों पकड़वा दे, पता चलता है क्या? बड़ा ठोंक-बजाकर रिश्त लेते हैं साहब लोग। ऐसे दोगे तो मना कर देंगे, फटकार देंगे या बड़ी-बड़ी बातें करने लगेंगे। नहीं। महात्मा नहीं बन गए हैं वे। लेते सब हैं पर इन्हें देना आसान नहीं, ये लोग भरोसे के आदमी के थू ही लेते हैं। खुल के तो कोई नहीं लेता आजकल। सबको चाहिए, पर माँगता कोई नहीं। लार सबकी टपकती है पर गुटक जाते हैं। बिना रिश्त के कोई काम नहीं करता पर डायरेक्टली कोई माँगता नहीं। उनको रिश्त पहुँचाने के लिए बड़े भरोसे का आदमी लगता है, और साहब के भरोसे का आदमी मिल पाना भौत कठिन होता है।”

इस तरह बिस्मिलजी स्वयं के महत्त्व के पाइंट तक पहुँच गए। इसके आगे बिस्मिल जी अपनी माहात्म्य-चर्चा करने लगे जो इस विमर्श का मूल उद्देश्य था :

“हम पर बड़ा भरोसा रखते हैं तहसीलदार साहब। ... इनका ही क्यों, ज्यादातर साहबों का हम पर बड़ा भरोसा है, सो भला क्यों?... वरना तो कोटरा-कालपी में तो पच्चीसों पड़े हैं। सब तुमसे जेई कहेंगे कि हम खूब जानते हैं साहब

को। घंटा जानते हैं! ... और मान लो कि साहब को जानते भी हों पर खोट है खुद के मन में; सो भी जे लोग भरोसे के काबिल नहीं। इनने बस, एक बार तुमसे रिश्त की रकम ली और जे गए, फिर तुमको जे कभी न मिलेंगे। काम होगा नहीं, और पैसे भी गए। जेई ट्रिक है इनकी। सो, रिश्त देना सरल काम नहीं है। पैसा डूबते देर नहीं लगती।"

साहब लोग बिस्मिल जी के हाथों से ही क्यों रिश्त स्वीकार करते हैं?

बिस्मिल जी ने इसका कारण भी बताया :

"साहब लोग, बस अपने भरोसे वाले से ही पैसा लेते हैं। और साहब का भरोसा जीतना कोई सरल काम नहीं है। वे लोग आसानी से किसी का भी भरोसा नहीं करते। पहले तो हर आदमी को खूब तौलते हैं। बार-बार तौलते हैं तब पास आने देते हैं। साहब लोगों का भरोसा जीतने में आदमी की मैथ्यो हो जाती है। हमने कैसे जीता है, जे तो बस हम ही जानते हैं।

..."पर कई चूतिया लोग जे सब बातें नहीं समझते। ऐसेई एक सज्जन, बड़े होशियार, नोट की गड्डी ले के, मूँ उठाए पहुँच गए तहसीलदार साब के पास कि साहब जे धरी है आपकी रिश्त; लीजिए और फटाफट हमारा काम कर दीजिए। सीधे लात मार दी साहब ने। तो भैया, सीधे लात घलती है ऐसे होशियारों के पिछवाड़े पर।"

क्लाइंट ने दोनों कानों पर हाथ रखकर सिर हिलाया कि वह ऐसा अपराध कभी नहीं करेगा।

"अरे, साहब लोगों को रिश्त देने का भी एक सलीका होता है। बड़ी नफासत लगती है इसमें। बड़ी नजाकत लगती है। बड़े आदर और सम्मान के साथ रिश्त ऐसे देना होती है कि अफसर की शान को ठेस भी न पहुँचे और रिश्त भी हो जाए।

पूरा स्वाँग रचाना पड़ता है भाई साहब। ऐसा सीन करना पड़ता है कि साहब बड़े नियम, कायदे वाले हैं, यह तो हमीं अधम हैं जो रिश्त देकर उन्हें बिगाड़ने पर तुले हुए हैं। साहब के अहम को फोते टाइप सहलाना पड़ता है। उनके स्थान विशेष पर तेल चुपड़ना पड़ता है। बड़े क्षमाभाव और बड़ी 'हैं हैं' करके रिश्त देनी पड़ती है भाई साहब। ऐसा दिखाना होता है कि साहब ने हम जैसे अकिंचन से रिश्त लेकर जो अपने हाथ अपवित्र किए हैं, इस अहसान के लिए हम उनके कृतकृत्य हैं। ... आसान काम नहीं है भैया। ... बड़ा ठनगन लगता है। ... और जब तक साहब रिश्त के नोट गिन रहे हैं, या गड्डियों को करीने से अपने ब्रीफकेस में धर रहे हैं तब तक उनकी ईमानदारी, परिश्रम, सूझबूझ, कर्मठता, दृढ़ निश्चय तथा कड़क अफसरी के भजन गाते रहने पड़ते हैं। हर एक के बस की बात नहीं है यह सब। हर शख्स अफसर को रिश्त नहीं दे सकता, और वे भी हर पैरे-गैरे से रिश्त लेते नहीं। साहब उसी से लेते हैं जो उनकी मानसिकता को समझता है। .. भ्रष्ट से भ्रष्ट अफसर भी चाहता है कि आप उसे रिश्त तो दो, पर एक ईमानदार अफसर वाली इज्जत भी दो। दोनों चीजें चाहिए उसे। इज्जत भी, रिश्त भी। दोनों की भूख रहती है उसे।"

बिस्मिलजी क्लाइंट को रिश्त देने का तिलिस्म समझाते रहे।

क्लाइंट ने अब कोहनी तक दोनों हाथ जोड़ दिये :

"तभी तो हम सीधे आपके पास आ गए हैं भाई साहब। हमसे तो यह सब बनता नहीं। ... वैसे तो हमारी हिम्मत ही नहीं कि साहब के पास अकेले पहुँच जाएँ, पर अगर वे हमसे सीधे भी ले लेते तो हमारे चेहरे से तुरन्त पकड़ लेते कि हमारा मन तो उन्हें जूता मारने का हो रहा है और हम उनसे बस यूँ ही झूठी 'हैं-हैं' कर रहे हैं।"

बिस्मिलजी हँसने लगे।

"हैं हैं तो करनी पड़ती है जनाब। अफसर के सामने बड़ी सच्ची टाइप की 'हैं-हैं' लगती है। जूता और मन, दोनों को कमरे के बाहर छोड़कर ही साहब के कमरे में घुसना पड़ता है।"

"वही तो। ... और वो हमसे होगा नहीं।"

"चलिए, हम आपकी तरफ से पहुँचा देंगे।"

"मेहरबानी भाई साब।"

"अच्छी बात यह भी है कि तहसीलदार साब अपने बिलहरी साइड के ही निकाल आए हैं। उनके समधीजी और हमारे बिलहरी वाले मामा, दोनों बड़े गहरे दोस्त हैं। एक ही मोहल्ले में रहते हैं। साहब के समधी जी हमें भी इसी कनेक्शन से खूब जानते हैं और खूबई मानते हैं। हम पर पूरा भरोसा है उनका। हम सीधे उनसे ही बात करेंगे। साहब वैसे भी डायरेक्टली नहीं लेते हैं। वे इन समधीजी के थ्रू ही लिया करते हैं। बेई लेंगे। बेई आपके काम का रेट भी बताएँगे। सब पता करके, हम आपको नरसों तक बतलाते हैं। बस, उतनी रकम हमें दे जाएँ। हम पहुँचा देंगे।" बिस्मिलजी के स्वर में इत्मीनान Baba Novels Chat Hoom है।

"बस, तो हमारा इत्ता काम करा दें भाई साब। बिना हुज्जत के एक बार साहब हमारी रिश्त स्वीकार कर लें तो फिर..."

"... चिन्ता न करें। काम हो जाएगा।"

क्लाइंट ने धीरे से पूछा : "साहब को एक बार पैसे पहुँच गए, फिर वे हमारा काम कर देंगे न?"

"देखिए, नियम तो जेई कहता है कि रिश्त ली है तो अफसर काम करेगा। पर यह बात भी ठीक से जान लें कि हमारा काम उन तक रिश्त पहुँचाना है, बस। उनका काम करना हमारे हाथ में नहीं है। फाइल उनके पास है। काम उन्हें करना है। कायदे से, रिश्त लेंगे तो काम तो करेंगे ही। सरकारी काम में रिश्त का जेई रिवाज चलता है पर उस चीज पर हमारा कोई कंट्रोल नहीं है। समझे न आप?" बिस्मिलजी ने मामले का पेच खोलकर बताया।

"मतलब?" इतना खुलकर इशारा करने पर भी क्लाइंट ठीक से समझा नहीं।

"मतलब जे कि भैया, आप कर रहे हो अपनी जेब से कलदार खर्च। है न? तो आप यह उम्मीद भी करोगे कि रिश्त दी है तो हमारा काम तो होगा ही, है कि नहीं?"

"जी, बिलकुल..."

"...बस, तो आपकी जे, 'बिलकुल' ही तो गड़बड़ है।"

"क्या मतलब?"

"देखो भैया, अमूमन तो वही होता है जैसा आप कह रहे हैं।"

"फिर?"

"...पर कई बार साहब लोग रिश्त तो ले लेते हैं पर काम वही करते हैं जो उनको सही लगे। इसीलिए कभी कोई ऊँच-नीच हो जाए तो फिर हमारे पास रोने मत बैठ जाना- समझे न?"

क्लाइंट कुछ समझा, कुछ नहीं भी समझा। वह एकदम नासमझी वाली बातें करने लगा, "पर हमारा मामला एकदम सही और कानूनी है। हम तो जायज काम की रिश्त दे रहे हैं भाई साब। साहब को हमारा काम करने में कोई परेशानी न होगी।"

बिस्मिलजी हँसने लगे।

"यार, जे तो तुम कह रहे हो न? पर दूसरी पार्टी की भी सोचो। वह भी तो यही कहती हुई इजलास में पहुँची होगी कि उसका केस एकदम जायज है? आप दोनों ही लोग हाकिम के सामने अपना-अपना काम जायज बता रहे हो। फिर? ऐसे में हाकिम क्या करे? तो अफसर कम्प्यूज हो जाता है। इसीलिए कई बार वह दोनों से ही नोटपानी ले लेता है, और फिर जिसकी बात उसे जँची, उसकी तरफ फैसला कर देता है।" बिस्मिल साहब रिश्वत लेने वाले अफसर की नैतिक दुविधाएँ बताने लगे।

"तब तो हमारा काम जरूर हो जाएगा। हमारा एकदम सही मामला है..."

"... अफसर किसे सही समझता है- अभी तो यह देखना होगा।"

"तभी तो हम आपके पास आए हैं साहब। इलाके में आपकी बड़ी साख है। कहते हैं कि आपके थ्रू दिया रिश्वत का पैसा कभी डूबता नहीं।" क्लाइंट ने विश्वासपूर्वक कहा।

"ऐसा नहीं है। कभी-कभी डूबा भी है। पर, कभी-कभी ही, बस।"

"हमारा अलग से खयाल रखिएगा बिस्मिलजी। हम भौत सामान्य हैसियत वाले आदमी हैं।"

"देखो भाई साहब, कोशिश करना हमारा फर्ज है। पर यह अफसर है नया। यहाँ आए मुश्किल से दो महीने हुए हैं। अभी तो कोई ठीक से यह जानता तक नहीं कि इनका रिश्वत लेने का सिस्टम एक्जेकटली क्या है। इत्ता भर पता है कि यहाँ से पहले जे तालबेहट में पोस्टेड थे। वहाँ की रिपोर्ट फेवरेबुल है कि एक बार जे पैसा ले लें तो निभाते हैं।"

"फिर?"

"जैसा आप समझें।"

"हम क्या समझें? देना तो है ही।"

"तो दे दीजिए।"

"आप कितना विश्वास करते हैं?"

"नए हैं, रेट का पता करना होगा।"

"आप हमें रेट बताएँगे कि हम जाकर पता करें?"

"आप कहाँ से पता करेंगे?"

"तहसील में जाकर पता करें?"

"वहाँ नोटिस बोर्ड पर रिश्वत की रेट-लिस्ट लगी है क्या?"

"फिर आप ही पता करके बता दें।"

"वोई तो हमने कहा है न कि हम उनके समधी जी से चर्चा करके बताते हैं आपको..."

"... फिर आप बता दें।"

"...पिछले वाले तो इस तरह के काम का पचास लेते थे।"

"पचास हजार?"

"और क्या, पचास रुपए! पचास रुपए तो उनका चपरासी भी नहीं लेता है। कोई कभी दे तो वापस मूँ पर मार देगा वो।"

"सही बात। साहब के चपरासी की भी इज्जत है।"

"वही बात। इज्जत और हैसियत के हिसाब से ही रिश्त का रेट होता है। अभी आपकी इसी फाइल पे कलक्टर के दस्तख्त होने होते तो दो लाख से कम न लगते।"

"कैसे?"

"कलक्टर की इज्जत जानते हैं न?"

"और जो तहसीलदार साहब की ही इज्जत भौत निकल गई तो?"

"निकल भी सकती है। वे ज्यादा भी माँग सकते हैं। इसीलिए आप तो पूरे पचहत्तर का इंतजाम कर लें। फिर वे जित्ता माँगेगे, अपुन दे देंगे। जो अगर उनने कुछ कम माँग लिया तो वो आपका मुनाफा..."

"... रिश्त देने में मुनाफे का जे तो बड़ा बढ़िया गणित बताया आपने।" क्लाइंट बोला।

बिस्मिल साहब हँसने लगे।

क्लाइंट उठ गया। बिस्मिल साहब ने उठकर बैठक का दरवाजा खोला।

क्लाइंट जा ही रहा था कि सुरेलेजी आ गए। बिस्मिलजी ने क्लाइंट को प्रस्थान करने वाला और सुरेलेजी का स्वागत वाला नमस्कार का इशारा एक साथ किया।

"और सुरेलेजी?"

"बस, एक शिकायत करने आए हैं आपसे..."

"...अरे, क्यों? क्या हुआ?"

"हमारा वाला समाचार..."

"...क्यों? छपा तो है न?"

"इत्ता अन्दर?"

"क्यों?... फिर कहाँ लगवाते?"

"तुमने तो हमारी खबर को अखबार में एकदम भीतर, कोने में जाकर छपवा दिया?"

"ऐसी खबरें और कितें छापी जाती हैं भाईसाब?"

"फिर भी। हमने पैसे तो ठीक-ठाक छापबे के लिए ही दिये थे। ... और आपने जित्ते बताए थे, उत्ते दिये थे। है कि

नहीं?"

"यार, पैसे देने का मतलब क्या होता है? बताइए हमें? क्या ऐसी न्यूज़ हम फ्रंट पेज पे छापते? मामूली-सी मारपीट का समाचार..."

"आपको जे मारपीट मामूली लगती है?"

"फ्रंट पेज पे तो मर्डर की न्यूज़ को भी मुश्किल से जगह मिलती है सुरेंलेजी।"

"तो क्या आप हमारा समाचार तबई ठीक से छापोगे जब हमारे मोंड़ा का मर्डर हो जाएगा?"

"वो बात नहीं है भाईसाब। समझिए जरा। हम तो आपको अखबार की पालिसी समझा रहे हैं। नेशनल अखबार है भाई साब। फिर भी अगर आपको लगता हो कि हमने जानबूझकर वैसा नहीं छपवाया तो आप हमारे पास आगे से अपना समाचार लेकर ही न आइए।"

"पंडिज्जी के लौंडे पर शक चल शक चल रहा है-यह ह बात भी आपने समाचार में नहीं डाली?"

"कैसे डालते? आपने थाने की रिपोर्ट में यह बात डलवाई? नहीं न? फिर? तो हम अखबार में कैसे डालते?"

"पर मारा तो उसी ने है। पूरे कोटरा को खबर है।"

"खबरें तो कोटरा में और भी हैं..."

"...मतलब?"

"वो मोंड़ी वाली बात भी तो पूरे कोटरा में खूब गरम है। हम उसे भी अखबार में डाल देते तो?... हमने नहीं डाली न? हमने आपकी जे न्यूज़ दबाई कि नहीं? अभी जे बात छाप देते तो सबकी कैसी बदनामी होती, जानते हैं न? तो बात को समझिए जरा। पत्रकारिता का मामला है। हमें भी बैलेंस करके खबर बनानी पड़ती है।"

"फिर भी, पैसे दिये थे तो पंडिज्जी के लौंडे का नाम..."

"...यार, हमें चार पैसे देकर आपने खरीद लिया है क्या? दो पैसे खर्च करके आप पंडिज्जी का नाम बिगाड़ना चाहते हैं? ...चलो, आपके कहे पर हम यह सब छाप दें और बे हम पे मानहानि का मुकदमा ठोक डालें, फिर?"

"मानहानि तो अभी हमारी हो रही है..."

"...तो उसके लिए अपने लड़के को समझाइए न।"

"पर हमें दुख तो भौत रहेगा कि आपने यह सब ठीक से नहीं छपा। हमने तो आपको बड़ा भरोसा करके यह समाचार दिया था।"

"हमसे जो हो सकता था, हमने किया।"

"कुछ नहीं किया।" सुरेंलेजी रूठे हुए खड़े रहे। बिस्मिलजी ने सुरेंलेजी की पीठ पर हाथ रखा, "आइए।

चाय पिलाते हैं आपको। कम से कम, चाय के पैसे तो हमसे वसूल लीजिए।"

कहकर बिस्मिलजी हँसने लगे।

"यार, हँसो मत।" सुरेंलेजी ने बिस्मिलजी का हाथ अपनी पीठ से हटाते हुए कहा।

"चलिए, नहीं हँसते। पर आप भी ऐसे नाराज न हों। हम पर भरोसा बनाए रखें। हम आगे भी आपके समाचार छपवाते रहेंगे। चिन्ता न करें।"

बिस्मिलजी उनका हाथ पकड़कर घर के अन्दर ले गए।

खाकी संगीत का कोटरा घराना

रात के करीब नौ बज रहे हैं। कोटरा ऊँघने लगता है इतनी रात।

सड़क पर अँधेरा मचा है। टूटी सड़क के खंभे का लहू खराब है। सड़क को अँधेरे की आदत पड़ गई है। सही कहें तो उसे अँधेरे में मज़ा आने लगा है। अभी दो घंटे से वैसे भी बिजली गायब है। सड़क से लगा हुआ थाने का अहाता है। थाने की इमारत छोटी है पर अहाता बड़ा है। यह एक पुरानी मकबरानुमा इमारत है, मानो अंधकार में डूबा हुआ कानून का मकबरा हो। कोटरा की बाहरी सीमा पर स्थित है थाना। एक पठारनुमा ऊँचाई पर स्थित, अकेली खड़ी बूढ़ी इमारत।

एकान्त में बैठा हुआ कानून और उसके चारों तरफ़ तार की टूटी हुई बाउंड्री। बाउंड्री से हिलगा हुआ लोहे का फाटक।

फाटक हिलग कर गिरने को है। सड़क से थाने की इमारत तक, अहाते से होकर पत्थर की फर्शियाँ बिछी हुई हैं। इस ड्राइव-वे की फर्शियाँ यहाँ-वहाँ टूटी और उखड़ी हुई हैं। मान लें कि सब कुछ ध्वस्त धर्मशाला टाइप है पर इसके बावजूद थाने का अपना ही रुआब भी है, और इसे अँधेरे में भी महसूस किया जा सकता है; कभी अँधेरे बियावान से होकर गुज़रो तो भूत का एक अनजान-सा भय रीढ़ की हड्डी पर रेंगता हुआ महसूस होता है न, ठीक वैसा। कानून अँधेरे में हो या अँधेरे का ही कानून चले-कानून का रुतबा तो महसूस होता ही है। अहाते में खड़ी जीप, यहाँ-वहाँ रखी सिपाहियों की मोटरसाइकिलें, बरामदे में पड़ी कुर्सी-मेज़, पीपल का एक पेड़, हनुमानजी का छोटा-सा मन्दिर और बन्द पड़ा एक पुराना कुआँ - ये सब थाने की धज का अभिन्न हिस्सा हैं गो कि अभी अँधेरे में गुम हैं। बन्द मुट्ठी-सी धरी हुई है अँधेरे अहाते में। यह कानून की मुट्ठी है या फिर उसका घुँसा-पता नहीं चलता। जिनकी पसलियों पर पड़ता है वे ही बता पाते हैं। बाकी के लोग, इससे बचकर निकलते हैं।

फ़िलहाल अँधेरे में डूबी है थाने की इमारत।

दो गैस-बत्तियों की रोशनी में नमूदार होता बरामदा ज़रूर किसी रहस्यमयी इबारत-सा उजागर है। बरामदे में एक चौड़ी-सी पुरानी मेज़ धरी है बल्कि इसे पड़ी हुई कह लें। इस मेज़ के आस-पास बेतरतीब पड़ी चार कुर्सियाँ, दो बेंच, एक हवलदार, दो सिपाही हैं। अन्दर के एक कमरे में भी मद्धम-सा प्रकाश दिख रहा है। वह दरोगाजी का कमरा है। बाकी का थाना अँधेरे में डूबा हुआ है।

दरोगाजी अभी अपने कमरे में हैं। वे कुछ गुनगुना रहे हैं। गुनगुनाहट के स्वर बरामदे तक पहुँच रहे हैं।

"गा रहे हैं दरोगाजी।" सिपाही ने हवलदार से कहा। हल्की-सी स्वर-लहरी बरामदे में ढीली गश्त दे रही है।

हवलदार ऊँघ रहा था।

"अच्छा?" हवलदार चैतन्य हो गया और गायन की तरफ़ ध्यान देकर सुनने लगा।

"सुना?"

"सच कहा, गुनगुना तो रहे हैं।" हवलदार ने माना।

"अफसर अगर ऐसे गुनगुनाए तो जे अच्छा शगुन कहाया कि गड़बड़?" सिपाही ने मुस्कुरा के पूछा।

"गुनगुनाना तो अच्छा शगुन ही कहाएगा।" हवलदार पुराना अनुभवी है।

"सबके लिए अच्छा है कि कि बस उनके लिए?"

"शगुन के कुछ छींटे तो हम पे भी पड़ेंगे।"

"कालपी से लौटे हैं। मर्डर केस में पूछताछ को गए थे वहाँ। एकदम अकेले।... वैसे गा अच्छा रहे हैं।"

"जेब में ठीक-सी रकम आ जाए तो आदमी का गला खुल जाता है।"

"वैसे भी गला अच्छा है दरोगाजी का।"

"सुर भौत बढ़िया पकड़े हैं साहब।"

"सुर बढ़िया ही पकड़ते हैं साहब।"

"दरोगई में तो सारा करिश्मा ही सही सुर पकड़ने का है।"

"सुर को ऐसा पकड़ो कि फिर स्साले राग की जमानत न होने पाए।"

"केस तो वैसे भी बड़ा पक्का बनाते हैं दरोगाजी।"

"संगीत का बढ़िया ज्ञान है साहब को।"

"कानून का भी।"

"हर साज का तार पूरा-पूरा सही खेंचते हैं; न तो वह टूटता है, न ही चैन से तना रह पाता है।"

"तान भी कभी टूट नहीं पाती।"

"और इस मर्डर केस में तो साहब ने दोनों पार्टियों के तार ऐसे खींचे हैं कि दोनों साजों पर एकदम सुरीला सुर निकल रहा है।"

"तान शायद दस लाख पे पहुँच के टूटी, ऐसा सुनते हैं?"

"फिर एकाध तो हममें भी बँटेगा।"

"खैर, दिल भौत बड़ा है साहब का..."

"... संगीत के लिए हृदय बड़ा ही चाहिए।"

"तभी तो ऐसा बढ़िया गा रहे हैं।"

"गला सुरीला है दरोगाजी का।"

"आदमी एक बार दरोगा बन जाए तो गला तो उसका ऑटोमेटिकली सुरीला हो जाता है।"

"फिर तो पुलिस की लाठी से भी बाँसुरी के सुर फूटने लगते हैं।"

"ठीक कहा। थाने का भी अपना संगीत होता है।"

"सो तो गालियों की भी अपनी एक धुन होती है।"

तभी थानेदार साहब ने लम्बा आलाप-सा कुछ लिया है, अन्दर। स्वर रिहा होकर बाहर तक आए। मूड में हैं आज साहब। अभी दो लाख रुपए एडवांस वसूलकर लौटे हैं। हृदय गदगद है। संगीत फूटा पड़ रहा है। मन बैजू बावरा हुआ जा रहा है।

"बताते हैं हैं कि अपने कॉलेज के दिनों में भौत ही बड़ा बढ़िया गाते थे?"

"कौन बता रहा था?"

"कौन बताएगा? साहब खुदई बता रहे थे एक दिन।"

"ऐसी बातें आदमी खुदई बताता है।"

"किसी को कह रहे थे कि वो तो आजकल रियाज करने का टेम नहीं मिलता है वरना..."

"...आदमी अगर अच्छी चीज़ों के रियाज में लग जाए तो फालतू की रियाजें छूट जाती हैं।"

"जे तो सही बात है।"

"आजकल टाइम कहाँ मिल पाता है साहब को। ऐसेई कभी-कभी गुनगुना के रह जाते हैं, बस।"

"... देखिए न, आज कित्ते दिन बाद साहब का गाना सुनाई दिया है।"

"वैसे भी, अगर सारे टेम गुनगुनाएँगे ही तो फिर गाली कब देंगे? संगीत के लिए मैं भी तो खाली मिलना चइए। गला गाली से खाली हो तो गाने को गैल मिले।"

"वैसे, इत्ते दिनों से परेशान भी तो भौत थे दरोगाजी।"

"... ऐसे में कैसे गाते?"

"इन्क़ायरी में फँसे हुए थे।"

"इन्क़ायरी में फँसा आदमी सारा संगीत भूल जाता है।"

"पर अब तो वो खत्म हो गई है न?"

"सात दिन पहले ही तो खत्म भई है। बताते हैं कि दरोगाजी ने बड़ी मेम साहब को हीरे का हार पहुँचाया तब जा के खात्मा रिपोर्ट पे बड़े साहब की सील सही लगी।"

"कौन-सा गाना गा रहे हैं?"

"वोई, कि जब प्यार किया तो डरना क्या!"

"अनारकली के साथ-साथ अपने दिल की बात भी बता रहे हैं साहब।" की बात भी

"सही बात। ... दरोगाजी किसी से डरते नहीं।"

डर?" "क्यों डरेंगे? सबको साधकर चलते हैं, फिर काहे का

"विकट साधा है भाई। कोटरा से लेकर लखनऊ तक, साधा है भाई। कोटरा से लेकर सबको।"

"साम दाम दंड भेद..."

"...सबसे।"

"और कोटरा में भी, सबको; पंडिज्जी से लेकर नेताजी तक।"

"नेताजी? जे कौन?"

"अरे, वोई, पंखीलाल कहार।"

"अच्छा, बे! पिछड़ों के हृदय सम्राट?"

"बताते तो वे खुद को जेई हैं।"

"दरोगाजी कहते हैं कि मन तो करता है कि स्साले को उल्टा टाँग के बढ़िया कुटाई करें इसकी, पर..."

"... पिछड़ों की कुटाई के जमाने गए भैया।"

"जेई साहब भी कहते हैं।"

"वैसे कभी कोई पिछड़ा आदमी थाने में फँसे और साथ में एक बाँभन भी, तो वे पिछड़े की ऐसी ठुकाई करते हैं कि स्साला 'हा हा' करने लगे, और बाँभन को पुचकारते तो खैर नहीं पर बस लप्पड़-फप्पड़ मार के ही रह जाते हैं। साहब कहते हैं कि बाँभन को तो बस एक लात मारना ही काफी होता है। ... एक लात खा के भी बाँभन को वो चोट लगती है जो दलित को दस लात खा के भी नहीं लग सकती।"

"दरोगाजी की दरोगाई!"

"उसके तो भैया क्या कहने।"

इस पूरी बातचीत से पता करना मुश्किल है कि हवलदार और सिपाही दरोगाजी की बुराई कर रहे हैं या उनकी आरती उतार रहे हैं!

तभी अपना गाना बन्द कर दिया दरोगाजी ने।

अब जरूर वे हमें बुलाने वाले हैं। दोनों सतर्क हो गए। बाहुर सन्नाटा है। और अँधेरा भी। और झींगुरों की आवाज़। फिर कहीं से लाउडस्पीकर पर कीर्तन की आवाज़ भी यहाँ तक आ रही है। बहुत दूर से। बहुत धीमी आवाज़। अँधेरे के विरुद्ध ईश्वर से प्रार्थना जैसी।

कि दरोगाजी ने अन्दर से सिपाही को आवाज़ दी।

दोनों उठकर अन्दर भागे।

अचानक तभी लाइट भी आ गई। ऐसी फटाक से आई है मानो दरोगाजी ने उसे तलब किया हो।

थाने में रोशनी हो गई। 'थाना चमकने लगा' - हम ऐसा कोई अति कथन तो नहीं करेंगे पर यह ज़रूर है कि अब थाना साफ़ नज़र आने लगा है: पुरानी इमारत, पुरानी रंगई-पुताई, ऊँची छत, बड़े कमरे, लम्बा गलियारा, सीमेंट का फर्श, बड़े पल्ले वाली बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ - ध्वस्त होने की तैयारी में लगी एक इमारत जो आदमी को थाने में प्रवेश से पहले ही चेता देती है कि न केवल यह इमारत जूनी-पुरानी है, यहाँ लगी कानून की मशीन की हालत भी ऐसी ही मानी जाए; इससे बहुत सटीक काम की कोई उम्मीद कतई न बाँधी जाए।

"जे स्साला इती रात में लाउडस्पीकर कितें चल रहा है भाई?" दरोगाजी ने सलाम मारने के बाद खड़े दोनों सिपाहियों की तरफ़ देखकर पूछा है।

"गुप्ताजी ने सुंदरकांड बिठाया है।" सिपाही ने कहा।

"आप कालपी गए हुए थे तभी गुप्ताजी पूरे थाने को बुलऊवा दे के गए।" हवलदार ने बताया।

"बे, प्रकाश जनरल स्टोर वाले गुप्ताजी?"

"हाँ, बे।"

"उनसे कहा नहीं कि अगर थाना तुम्हारे सुंदरकांड में बैठ गया तो इतें के लंकाकांड को कौन सँभालेगा?" दरोगाजी ने हँसकर कहा।

सिपाही हँसने लगे। उन्हें हँसना ही था। उनका हँसने का सिस्टम दरोगाजी के सिस्टम से जुड़ा है।

"अपने गुप्ताजी कुछ न कुछ कराते ही रहते हैं?" दरोगाजी ने टिप्पणीनुमा प्रश्न किया।

"धार्मिक प्रवृत्ति के आदमी हैं।" सिपाही ने तारीफ़ की।

"धार्मिक आदमी है पर हैं भौत है पर हैं भौत हरामी सरकार।" हवलदार हरामा सरकारी ने भी अपने ढंग से तारीफ़ की।

"यार, धार्मिक होने का मतलब जे तो नहीं है कि आदमी हरामीपना छोड़ दे? धार्मिक होना एक चीज है और हरामी होना एक बात।" दरोगाजी ने धर्म और सांसारिकता के बीच सामंजस्य पर ज़ोर दिया।

"जे तो है।" हवलदार सहमत हुआ।

"सुंदरकांड अपनी जगह और बदमाशी अपनी जगह ! सही कहा सरकार ने।" सिपाही ने भी माना।

"सुना है, यह गुप्ता ब्याज का धंधा चलाता है?" दरोगा ने पूछा।

"हथ-उधार पैसा देता है गरीबन को। पाँच देता है, पचास वसूलता है। बसूलवे के लाने लठैत रखे हुए हैं।..." हवलदार ने बताया।

"तब तो भौत पैसा होगा स्साले के पास? क्यों?"

"भौत है साहब..." सिपाही ने कहा।

"बताते हैं कि छत के लेंटर में चाँदी की ईंटें दबा रखी हैं।" हवलदार ने बताया।

"जे बात तो कोटरा में सबको पता होगी?" दरोगाजी बात में अतिरिक्त रुचि ले रहे हैं।

"पूरा कोटरा जानता है मालिक।"

"यहीं के कारीगरों से छत डलवाई थी क्या?" दरोगाजी ने पूछा।

"हो सकता है..."

"बड़ा चूतिया आदमी है। ... फिर रोते फिरेंगे कि डकैती पड़ गई।" दरोगाजी बड़बड़ाए।
दोनों चुप हैं।

"चाय पिँगे मालिक?" सिपाही ने पूछा।

"कहो तो एक दिन छत गिरवा दी जाए गुप्ताजी की?" दरोगाजी ने चाय की बात सुनी ही नहीं।

"चाय बनाएँ सरकार?" सिपाही ने फिर से पूछा।

"यार, जे चाय का टाइम है क्या? अब जो पिँगे, घर जा के ही पिँगे।" दरोगाजी बोले।

"धरी तो वो भी है?" हवलदार ने कहा।

"वो तो घर पे भी धरी है। चिन्ता न करें।" दरोगा ने मुस्कराकर कहा।

"सुर्रेलेजी आज दिन भर में तीन चक्कर मार गए हैं।" हवलदार ने रिपोर्ट दी।

"क्यों? क्या चाहते हैं?"

"पूछ रहे थे कि हमारी शिकायत पे क्या एक्शन हो रहा है?" सिपाही ने ऐसे हँसते हुए कहा जैसे कोई चुटकुला सुना रहा हो।

"अबकी बार आए तो स्साले को बाहर से ही भगा देना। चूतिया आदमी!"

सिपाही और हवलदार हँसने लगे।

"बताइए, कहता है कि पंडिज्जी के लौंडे को पकड़िए। बाप का राज समझा हुआ है। पट्टा, आदमी के पंडिज्जी होने का मतलब ही नहीं समझ पा रहा है।" दरोगाजी बड़बड़ाए।

"समझ जाएगा साहब।" सिपाही आश्वस्त है।

"समझना तो पड़ेगा ही।" हवलदार साहब भी पंडिज्जी जैसों के समक्ष कानून की पोजीशन को समझने के हिमायती हैं।

दरोगाजी अवश्य कुछ देर के लिए सोच-विचार में डूब से गए, फिर बोले, "वैसे, एकाध दिन मौके पर चला तो जाए, थोड़ी जाँच-पड़ताल दिखा ही दी जाए। घटनास्थल चले चलो। अरे वहीं, कहाँ पिटा है इसका लौंडा? बस वहीं। सुरेले को भी लगेगा कि पड़ताल चल रही है और कानून अपना काम कर रहा है।"

"पंडिज्जी पर भी कुछ दबाव पड़ेगा कि कानून काम कर रहा है।" दरोगाजी ने मुस्कुराकर आगे कहा।

साहब जरूर कुछ बड़ा सोच रहे हैं।

"जी मालिक।" दोनों बोले।

"पंडिज्जी मोंड़ी के बाप को घेर रये हैं कि वह सुरेलेजी के लौंडे के खिलाफ छेड़छाड़ का एफआईआर दर्ज कराए।" हवलदार ने बताया।

"तो उसने कराया?"

"अभी तक तो नहीं।"

"उससे करवाओ न।"

"बदनामी से डरता है मोंड़ी का बाप।" हवलदार पहले ही इसकी कोशिश कर चुका है शायद।

"ऐसी कौन-सी आल इंडिया मशहूरी है उसकी?"

सब हँसने लगे।

अब दरोगाजी घर जाने को उठे।

सिपाही ने उनका बैग उठा लिया।

दरोगाजी उठकर अपनी खिसकती पैंट को, बाहर निकलते हुए पेट के ऊपर खींचते हुए कमीज को पैंट में खोंसने लगे कि तभी थाने के अहाते से कुछ आवाजें आईं।

अहाते के बाहर लगा हुआ लोहे का फाटक खुला।

कब्जों पर जंग है। ये कुछ ज़ोर से ही चर्र-चूँ करते हैं। इसे थाने की अपनी अलार्म व्यवस्था मान लें। इसकी आवाज़ से अन्दर सब चेत जाते हैं। पहले फाटक खुलने की आवाज़ हुई, फिर साइकिल को स्टैंड पर लगाने की आवाज़ भी आई। फिर किसी के दौड़कर थाने की तरफ़ आने की पदचापें सुनाई दीं। पत्थर की फर्शियों पर मोटे तल्लेवाले जूतों की खटपट से रात का सन्नाटा बज उठा।

पड़ताल के लिए सिपाही बाहर आया।

"कौन है बे?"

कोई अहाते से होकर अन्दर की तरफ तेज़-तेज़ चला आ रहा था।

"छीतरमल हैं भैया।" आवाज आई।

"अरे, छीतरमल? आओ, आओ। ... इत्ती रात में? सब ठीक तो है?" सिपाही ने पूरे अपनत्व से पूछा।

"होता तो हम इत्ती रात में काहे भगे आते?" पास आकर छीतरमल ने कहा।

"क्या हुआ?"

"डकैती पड़ गई भैया।" बरामदे की मेज के पास रुककर छीतरमल बोले।

"अरे!"

थाने के बरामदे में लट्टू जल रहा है। उसकी रोशनी के दायरे में ग्राम रतौली के चौकीदार छीतरमल की धज एक घबराए हुए छोटे मुलाजिम की है।

एक हाथ में लाठी और दूसरे में बड़ी वाली टार्च।

धोती, कुर्ता, बंडी, साफा, गले में कंठीमाला, भुजा पर तावीज, माथे पर सिंदूरी टीका, चेहरे पर हल्की दाढ़ी; धज वैसी, जैसी पुराने किस्सों में भुतहा हवेली के चौकीदार की बताई जाती थी।

"अन्दर आओ।" डकैती की बात सुनकर सिपाही भी चौकन्ना हो गया है।

सिपाही दरोगाजी के कमरे तरफ चला। पीछे-पीछे रतौली का चौकीदार।

"डकैती पड़ गई मालिक।" चौकीदार दरोगाजी को मामला रिपोर्ट करने लगा।

"ये कौन?" थानेदार ने पूछा।

"ग्राम रतौली का चौकीदार छीतरमल है हजूर। बता रहा है कि वहाँ डकैती पड़ गई है।" सिपाही ने वह बात स्पष्ट की जो दरोगाजी वैसे भी समझ चुके थे।

उठ चुके दरोगाजी वापस अपनी कुर्सी पर बैठ गए।

"इत्ती शाम को ही डकैती पड़ गई?" दरोगाजी के स्वर में हैरानी है।

"डकैत तो सात बजे ही अन्दर घुस गए मालिक।" चौकीदार ने बताया।

"इत्ती जल्दी?"

"जी मालिक।"

"यार, डकैती तो स्साली आधी रात को ही सजती है। क्यों न?"

"जी मालिक, पर जे लोग तो शाम के सात बजे ही उतें आ गए थे।"

"कमाल है। डकैत भी स्साले अपनी रात खराब नहीं करना चाहते क्या?" दरोगाजी ने हँसकर कहा।

"हो सकता है कि डकैतों को बाद में कहीं और जाना हो।" सिपाही ने अंदाजा लगाया।

"ठीक कह रहे हो। शादी की सायतें चल रही हैं। हो सकता है कि डकैती के बाद वे लोग किसी लगन में कहीं जाने वाले हों।" दरोगाजी सहमत हुए।

"जी मालिक।" चौकीदार और क्या कहता?

"कित्ते डकैत थे?"

"तीन मोटरसाइकिलों पे पहुँचे थे। पाँचेक लोग रहे। मों पे ढट्टी बाँध रखी थी।"

"ढट्टी तो बाँधेगा ही। आदमी डकैती डालने को आया है कि में दिखाई के लिए?" हवलदार ने कहा।

"तुम डकैती की जगह पहुँचे कि नहीं?"

"हम उतें बाद में पोंचे। ... फिर तुरत इतें भगे चले आ रये।"

"डकैतन को देख पाए तुम?"

"हम तो घटना के बाद उतें पहुँचे।"

"तो कित्ते की पड़ गई?"

"दो लाख के तो जेवर उतरवा ले गए, नकदी अलग। एकाध का मूड़ भी फोड़ गए।"

"जे रतौली में कौन-से लखपती पैदा भए हैं यार? घर में ही बैंक खोले हुए हैं क्या?"

"महाराज, डकैती सतभैयन के घर पड़ी है..."

"... क्या बक रया है बे?" दरोगाजी सतर्क हुए। सात भाइयों का परिवार है। सतभैया कहलाते हैं। सातों ने शादी नहीं की। बस, व्यस्त रह गए। बदमाशी, गुंडागर्दी और अदालतों के चक्कर में उन्हें समय ही नहीं मिला कि घर बसा पाते। सातों भाई एक साथ रहते हैं। कोटरा में उनका अपनी ही तरह का महत्वपूर्ण स्थान है। लोग उनसे बचकर चलते हैं।

"सच्ची महाराज।"

"पर उनकी रिहाइश तो कोटरा में है न?"

"इनकी कछू खेती उतें भी है। एक भाई ने उतें अपना मकान तान रखा है।"

"जे डकैतों के घर पे कब से डकैती पड़ने लगी?"

"वोई तो..."

"मामला रंजिश का भी हो सकता है। सतभइया खुद बड़े बुदनाम हैं। पाँच डकैतियों में तो खुद नामजद रहे हैं। हर बार अदालत से छूट जाते हैं। जाने कित्तों की तो जमीन चाँपे बैठे हैं। मारपीट करते रहते हैं। ... जे वोई वाले सतभइए हैं न?" दरोगाजी ने पूछा।

"हाँ, बेई हैं। सात भाई हैं। यादव हैं। विकट उपद्रवी लोग हैं।" हवलदार ने बताया।

"फिर तो अभी हल्ला मचाते हुए इतें भी पहुँचबे वाले ही होंगे। ... तुरंत जीप निकालो। रतौली जाना पड़ेगा।" दरोगाजी खटाक से खड़े हो गए।

"मालिक, जे सतभइए नेताजी के आदमी कहाते हैं।" सिपाही ने चलते-चलते चेताया।

“फिर तो पंखीलाल भी पहुँचते ही होंगे। यहाँ से अभी चले चलो। निकलो यहाँ से।” दरोगाजी तेज़ी से बाहर निकले।
आगे-आगे दरोगाजी, फिर सिपाही, हवलदार और चौकीदार। सब निकले।

“तुम इधर ही रुको। हम आते हैं।” दरोगाजी ने सिपाही को रुकने को कहा।

जीप तेजी से बाहर निकली।

सिपाही ने पीछे से ‘जयहिंद साहब’ कहकर सेल्यूट किया।

जीप चली ही थी कि दरोगाजी का फोन बज उठा।

“कहिए, कौन?”

थानेदार साहब थोड़ी देर तक तो चुपचाप होकर फोन सुनते रहे। फिर किसी को फोन पर ही लतियाने लगे :

“देखिए, आप तो ऐसे तड़प रहे हैं जैसे किसी ने लौंडे को चक्कू-सक्कू मार दिया हो। ... उसने लौंडियाबाजी की है। इश्क में पिटा है- बात बस इत्ती-सी है। ... अब क्या हम पूरा थाना इसकी तफ्तीश में लगा दें? ... रतौली में डकैती पड़ी है। अभी हम वहाँ जा रहे हैं। बताइए, हम डकैती की तफ्तीश करें कि...यार, आप जहाँ शिकायत करना हो कर लें। ... करेंगे। वो जाँच भी होगी। ... और लड़की ने भी आपके सुपुत्र के खिलाफ छेड़छाड़ की शिकायत दर्ज कराई है। उसकी जाँच भी कड़ाई से करी जाएगी। ... समझे न? ... जरा हम इस डकैती से निबट लें फिर बताएँगे।”

थानेदार ने फोन बन्द किया तो सिपाही ने मुस्कुराकर देखा।

“वे हैं? सुरेनलेजी। ... सुरीन बम टाइप लगे हैं।” दरोगाजी बोला।

दोनों मुस्कुरा दिये।

“वैसे, भारतीय पुलिस पर कुछ ज्यादा ही भरोसा लगता है, उनका।” दरोगा साहब ठठाकर हँस रहे हैं।

झूठा सच

सुबह का समय है।

कविता में इसे सुबह की बेला कहते हैं परन्तु कोटरा की इस कच्ची गली में, जिसमें दोनों तरफ अधकच्चे मकान बने हैं, हम इसे बस, सुबह का समय ही बोलेंगे। ऐसी गली में उतरी सुबह के वर्णन में अलंकृत भाषा की गुंजाइश नहीं है।

तो, सुबह का समय है।

इस समय अपने कच्चे पक्के मकान के दरवाज़े पर रामटहल बैठे हुए हैं। बड़ी देर से मुँह में दातुन डाले हुए हैं। उसे दाँतों में दबाए हुए भी हैं, शनैः शनैः चबा भी रहे हैं, और इस प्रक्रिया से सतत पैदा हो रहे थूक को सामने गली

में थुकते भी जा रहे हैं। उनके ठीक बगल में पानी भरा लोटा धरा है। जब वे दातुन चबा-चबाकर थक और ऊब जाएंगे तो लोटे के पानी से गली में ही कुल्ला करेंगे। अभी तो, बड़ी देर से दाँत साफ किए जा रहे हैं। दाँत सफेद रहें तो अदालत में सफेद झूठ बोलने में एक किस्म का आत्मविश्वास बना रहता है। वैसे, अभी तो दातुन चबाकर समय ही काटा जा रहा है। कुल्ला करने और अन्य नित्य क्रियाओं से निवृत्ति के पश्चात् उन्हें दिन भर कोई काम नहीं है। वे अभी भी दातुन नहीं, समय काट रहे हैं।

तो क्या कोई धंधा नहीं करते हैं वे?

ऐसा भी भी नहीं है।

बेरोजगार होना, फालतू बैठकर सुबह से शाम कर डालना - यूँ तो कोटरा में ऐसे बहुत से लोग हैं। दरअसल, कोटरा में रोजगार नहीं के बराबर है। आदमी का होना ही यहाँ रोजगार है। वैसे रामटहल के पास एक जमा-जमाया रोजगार भी है; झूठी गवाही देने का रोजगार। वे विशेषज्ञ किस्म के गवाह हैं। वे सच्ची लगने वाली झूठी गवाही देने के विशेषज्ञ हैं। अदालत में वे ऐसी विश्वसनीय किस्म की झूठी गवाही देते हैं कि लोग

उनकी इस सेवा के लिए मुँहमाँगे दाम देने को तैयार रहते हैं। कहने को उनकी कुछ छोटी-मोटी खेती भी है पर वह काम उन्होंने अब बच्चों के हवाले कर रखा है। तीन बच्चे तो लफंगे निकल गए। एक कुछ कमज़ोर-सा था। लफंगई की रेस में नहीं उतर सका। वही खेती देखता है।

तो रामटहल की विशेषज्ञता एकदम सच जैसी लगने वाली झूठी गवाही देने में है। इस क्षेत्र का बड़ा गहन अध्ययन है उनका। भारतीय हाकिमों तथा छोटी अदालतों के सिस्टम पर बारीक पकड़ है उनकी। जज साहब की शक्ल देखकर जान लेते हैं कि आज साहब का मूड कैसा है और वे उनकी झूठी गवाही से कहीं उखड़ तो नहीं जाएंगे? ... जज लोग भी आखिर आदमी ही होते हैं। ... उनका भी पेट फूलता है। ... उनकी भी, सुबह ठीक से न उतरी हो तो दिन भर कुर्सी पर बैठे-बैठे दोपहर तक उनके पेट में बेचैनी हो सकती है। ... उनकी भी घर से निकलते-निकलते पत्नी से तू-तू मैं-मैं हो सकती है। ... वे भी किसी बात पर भरे हुए बैठे हो सकते हैं। ... हर जज को उसकी शक्ल से पहिचानना होता है कि उसके सामने कितने हाथ जोड़कर बयान देना प्रभावकारी रहेगा, और उसके समक्ष कितना भुनगा बनना लाजिमी रहेगा?... झूठी गवाही देने के मामले में रामटहल की एक साख है। वकील लोग उनके आत्मविश्वास का पूरा सम्मान करते हैं। वकील बाहर से जितना सिखाकर उन्हें कटघरे में भेजते हैं, उसमें वे स्वयं की ओर से कुछ ऐसा चमत्कारी झूठ भी जोड़ देते हैं कि बयान और विश्वसनीय बन जाता है।

झूठ के पकड़े जाने से वे डरते नहीं। उनका मत है कि अदालतों को ही यदि झूठ से परहेज होने लगा, फिर तो हमारी न्याय व्यवस्था ही चरमरा जाएगी। ... झूठ तो इस व्यवस्था की रीढ़ है भाई साहब! ... वैसे न्याय की लड़ाई में सच की तलवार का महत्त्व भी कोई कम नहीं है, यह भी सच है। "हम भी सच को कोई कम नहीं मानते", वे सच की तारीफ में कहते हैं परन्तु इस कथन में वे यह भी जोड़ देते हैं कि जब तक इस तलवार की धार को झूठ की सान पर चढ़ाकर पैना नहीं बनाया जाता, कटघरे की रणभूमि में यह वैसी पैनी चलती नहीं जैसी इसे चलना चाहिए। सच में भी जब तलक सही मात्रा में झूठ की खोट न मिलाई जाए तब तक अदालत के पहिनने लायक बयान का गहना तैयार नहीं हो पाता।

चूँकि आज किसी भी अदालत में उनकी गवाही नहीं है सो वे परम फुरसत में हैं। गांजा शाम को पीना तय हुआ है। जुआ दोपहर को खेलना है। बाकी दिन भर फालतू बैठना है। सो अभी फालतू बैठे दातुन चबा रहे हैं।

आखिरकार दातुन से छुटकारा पाकर, उन्होंने कुल्ला करना शुरू कर दिया।

अभी, तन्मयतापूर्वक पहला कुल्ला मुँह में घुमा ही रहे थे कि कच्ची गली में, सँभल-सँभलकर पाँव धरते हुए मुन्ना मास्साब इस तरफ़ ही आते दिखाई दिये। मुन्ना मास्साब पंडिज्जी के मुँहलगे टहलदार हैं। पंडिज्जी के शरीर में

कहाँ-कहाँ तिल हैं, और कहाँ-कहाँ दाद है, वे जानते हैं। स्कूल के खटकर्मों के अलावा मुन्ना मास्साब उनके अदालती काम भी देखते हैं। शक्ल से वे नितांत शरीफ ज़रूर लगते हैं परन्तु खुद कहते हैं कि यार, कभी आप हमसे भिड़ न जाना क्योंकि हम सही में कितने कमीने हैं, यह हम स्वयं भी ठीक से नहीं बतला सकते। उन्हें आते देख रामटहल ने मुँह से एक पिचकारीनुमा कुल्ला गली में मारा और गमछे से मुँह पोंछते हुए खड़े हो गए। उन्होंने जल्दबाजी में लोटे को जमीन पर वापस धरा तो धरते-धरते वह गली में लुढ़क गया।

मुन्ना मास्साब अब तक उनके पास आकर खड़े हो गए थे।

मास्साब ने रामटहल की 'पालांगी' का जवाब देते हुए मुस्कुराकर लुढ़के हुए लोटे को गौर से देखा, "बेपैदी का है क्या?"

"आजकल बेपैदी का होना जरूरी नहीं है मास्साब, पैदी वाले लोटे भी बढ़िया लुढ़कते हैं।" रामटहल ने लुढ़के हुए लोटे की तरफ देखे बिना उत्तर दिया।

दोनों तरफ़ से दो बड़ी बातें कह दी गई थीं।

कोई बड़ी बात कहकर बात शुरू करने का यह समयसिद्ध तरीका है यहाँ। इसके ज़रिए दोनों पार्टियाँ एक-दूसरे को जतला देती हैं कि उन्हें कम हरामी न मान लिया जाए।

मुन्ना मास्साब मुस्कुराने लगे।

"जे बात तो तुमने एकदम सही कही। ठीक-ठाक दिशा की तरफ ढलान मिल जाए तो लोटे का लुढ़कना तो एकदम जायज है; यह ऐसी कोई बुरी बात भी नहीं।"

"जेई दुनियादारी भी है मालिक।" रामटहल ने भी किसी अनुभवी विद्वान की तरह कहा और दाँत निपोर दिये।

"जो स्साला ढलान पर भी न लुढ़के तो फिर वह लोटा काहे का!"

"सही कह गए मास्साब। वैसे भी जो अपने पैदे का भौत ख्याल करे, ऐसा लोटा बस एक जगह धरा रह जाता है।"

"और पैदे को भी तो अपनी जिम्मेदारी समझनी होगी। आखिर पैदा होने का मतलब क्या है? भगवान ने तुम्हें पैदा ही क्यों बनाया? कोई पैदा तभी एक सार्थक पैदा होता है जब वह सही जगह पर जाकर टिक जाए। जो सही जगह न टिका हो वह पैदा, पैदा कहलवाने का हकदार नहीं। ऐसा पैदा, पैदे के नाम पर कलंक है। सही अर्थों में वह पैदा ही नहीं। सही कुर्सी पर टिका हुआ पैदा ही पूजनीय होता है।" मुन्ना मास्साब ने पैदे की सार्थकता पर निबंध-सा बोल दिया।

"पैदा सही जगह पर न धरा हो तो वह तो लात मारने वाली जगह बन जाता है। आपने एकदम सही कहा मास्साब।" रामटहल बोले।

"बड़ी ऊँची बातें करने लगे हो रामटहलजी?"

"आप जैसों की छत्रछाया में बैठ-बैठ के ही सब सीखा है मालिक।"

"वाह यार रामटहलजी!"

मुन्ना मास्साब द्वारा दो बार लगातार रामटहल 'जी' कहा गया तो वह चौंका।

दो-दो बार 'जी' लगाने का मतलब?

वह समझ गया कि मुद्दा झूठी गवाही देने का है। एक वही क्षेत्र है जहाँ रामटहल की प्रतिभा का इतना सम्मान था कि उसके नाम के साथ 'जी' लगाया जाए। इस सिलसिले में जो भी यहाँ आता है, उसे 'रामटहलजी' ही कहता है। रामटहल लोगों की इस 'जी' को एकदम अपनी झूठी गवाही की तरह ही मानता है। यह 'जी' भी होती तो ऐलानिया झूठी है परन्तु इसे एकदम सच की भाँति स्वीकार किया जाता है।

रामटहल ने सीधे ही मुद्दे पर आना उचित समझा।

"और बताएँ मास्साब?"

"सब ठीक।"

"हमारे लायक कोई सेवा?"

"उसी के लाने आए हैं।"

"फिर बताइए न?"

"बताना क्या है- आप जानते हैं।"

"जे आप हमें फालतू में ही 'आप' तो कहें न, गरीब आदमी पर इत्ता आदर न लाद दें; गली कच्ची है, जमीन धँस जाएगी।"

मास्साब हँसने लगे। हँसकर कहा, "गवाही दिलवानी है।"

"आपको?"

"नहीं, पंडिज्जी को। हमारी ऐसी हैसियत नहीं कि हम मुकदमा लड़ने का शौक पालें।"

"चले चलेंगे मालिक। दे आएँगे गवाही।"

"तो हम तारीख बताएँगे। तैयार रहिएगा।"

"इसके लाने हम सदा तैयार रहते हैं। जब बता दें, चल पड़ेंगे और जहाँ कहेंगे, बोल आएँगे। कहें तो अभी चलें?"

"आपकी..."

"...तुम्हारी।"

"तुम्हारी जेई बात तो वकीलों को भाती है कि केस का अता-पता जाने बिना तुम औचक हाँ बोल देते हो।"

"केस तो बताया ही जाता है पर केस क्या है, इससे कुछ खास फर्क नहीं पड़ता। जब झूठई बोलना है तो फिर इस बारे में बोलें कि उस बारे में, क्या फर्क पड़ता है मालिक? जित्ता पाप लगना है, उत्ता तो लगेगा ही; और भगवान के हिसाब में वह झूठ के खाते में ही दर्ज होगा- केस कोई-सा भी हो।"

"भगवान को मानते हो रामटहल?"

"क्यों न मानेंगे? जे देखिए-" रामटहल ने गले में पहनी कंठीमाला दिखाई।

"वाह!"

"भगवान से रोज छिमा माँग लेते हैं, बस। उसके समक्ष कान पकड़ लेते हैं कि यह तेरा ही दिया पापी पेट है भगवन जिस के लिए हमें जे सब पाप करने पड़ते हैं।"

"वैसे भी, बिना पाप के यह दुनिया चलती है क्या? भगवान भी जे बात जानता है। आखिर, दुनिया बनाई हुई तो उसी की है। आदमी को अगर वो न क्षमा करेगा तो दुनिया चलेगी कैसे?"

"सही बात मालिक। जे कंठी अपनी जगह, और कंठ से निकली गवाही अपनी जगह; गवाही भी तो उसी गले से निकलती है जिसमें जे कंठी लटकी हुई है। इस तरह हमारी हर गवाही आटोमेटिक पवित्र हो जाती है; है कि नहीं? अदालत में भी हम भगवान को साक्षी मानकर ही सब कुछ बोलते हैं कि तेरा तुझको अर्पण।"

"सही बात।"

"हम तो इसे एक धार्मिक काम मानकर करते हैं मालिक। ईश्वर बड़ा ही दयालु है। उसकी किरपा न होती तो क्या आप ऐसे सुबे-सुबे इतें आते? उसी की किरपा से पधारे हैं आप और उसी की इच्छा है कि हम झूठी गवाही दें।"

"वाह रामटहलजी, क्या बात कही है। हमें तो अब लग रहा है कि हम आपको भजन गाने के लिए बुलाने आए हैं।"

"सब उसकी किरपा है। बस, एक किरपा आपकी भी हो जाए मास्साब; पंडिज्जी से पैसा ठीक-ठाक दिला देना।"

"क्यों? हमने पहले कभी कोई शिकायत का मौका दिया है तुमें? हमेशा, पाँच पैसे ज्यादा ही दिलाए हैं।"

"जे तो है पर याद दिलाना हमारा फर्ज था। जे पाप हमें पैसों के लिए ही करना पड़ता है। सो पैसे पूरे दिलाइएगा।"

"पंडिज्जी सही काम की बड़ी कदर करते हैं।"

"वो हमें पता है। हम तो बस दुनिया के दस्तूर की बात कर रहे थे।"

"दुनिया की तुम जानो, इतें तो आधा पैसा गवाही से पहले ही भेजे हैं पंडिज्जी।" कहकर मुन्ना मास्साब ने पाँच हजार की गड्डी निकालकर रामटहल को थमा दी।

"कित्ते हैं?"

"जो हमेशा देते हैं।"

"हजार और दे दिये जाँँ मालिक।"

"यार, ऐसा भी मूँ न फाड़ो।"

"मूँ ठीक से फाड़ेंगे तो उससे गवाही भी खुलकर निकलेगी न मालिक?" रामटहल ने शातिर मुद्रा में कहा।

"चलो, दे देंगे। हजार और दे देंगे। वैसे, बैठे-बिठाए तुम्हें इत्ता मिल रहा है, खुश होना चाहिए तुम्हें तो?"

"खुश हैं न? पर इसे बैठे बिठाए का काम न कहें। इस काम में भी बड़ी मेहनत लगती है मास्साब। इत्ता आसान काम न समझा जाए। जे कोई कमजोर कलेजे वालों का काम नहीं है।"

"यह बात तो तुम ठीक कह रहे हो।"

“अदालत में झूठ बोलना आसान काम नहीं है मास्साब। वकीलों की बात तो खैर अलग कहाई; वे लोग बेखटके बोल लेते हैं। अधिकार है उनका। काले कोट का सहारा रहता है उन्हें। पर हम-आप ऐसे झूठ नहीं बोल सकते हैं न? जटिल काम है मालिक।”

“सरल काम के इत्ते पैसे भी नहीं मिलते हैं।”

“वैसे, अभी क्या काम बताए हैं पंडिज्जी?”

“वोई कब्रिस्तान की जमीन का केस है। ... पता है न?”

“कोटरा में सबको पता है।”

“उसी में।”

“उसमें क्या?”

“उसी केस के चक्कर में अपोली ने कभी अपने मौलाना साब की सुताई कर दी थी।”

“कौन मौलाना? फजलुलरहमान?”

“हओ, बेई। चूतिया आदमी हैं। पूछो कैसे?... बे एक दिन अपोली को बीच बाजार में रोक के पीर बाबा टाइप लेक्चर देने लगे। समझाने लगे कि यह बड़ा गलत काम किया है पंडिज्जी ने। अब आपई बताओ, अपोली समझेंगे ऐसी बातें? अपोली ने मौलाना से जेई कहीं कि हम तो वैसे भी इस मामले को दो लप्पड़ मार के सुलझाने में विश्वास करते थे परन्तु पंडिज्जी ही कानून का खूँटा छोड़ने को राजी नहीं। मौलाना इसका बुरा मान गए। बात बढ़ गई। अपोली ने उन्हें, उतई, वहीं बीच बाजार में ठोक दिया। लात-घूँसा तो लगाए ही, उनके दाढ़ी-मोँछा भी नोच डाले। उसी का केस चल रहा है।”

“अजब बकलोल हैं मौलाना। लात-घूँसा में अदालत बेचारी क्या करेगी? ऐसे में तो बस दो ही रास्ते होते हैं : मौलाना के कल्ले में ताकत हो तो पलट के खुद लात-घूँसा मार लें वरना पतरी दाल पी के चुपचाप घर बैठें।”

“मौलाना दाल नहीं पीते। बोटी चबाते हैं।”

“ऐसी कमजोर बोटियाँ खाने का फिर क्या फायदा?”

“जो हो। केस तो बन ही गया न? उसी की पेशी है।”

“हम समझ गए।”

“हमें मालूम था।”

“क्या?”

“कि तुम समझ जाओगे।”

“वैसे इसमें समझना भी क्या है! बाकी तो जो वकील साहब हमें बताएँगे सो हम अदालत में बोल ही आएँगे। हाँ, यदि पंडिज्जी उल्टे मौलानाजी को ही फँसाबे की कुछ सोच रहे हों तो वह हमें जरूर बता दिया जाए।”

“मतलब?”

"मतलब ये कि हम अपने बयान में किता हिंदू-मुस्लिम भी घुसेड़ें, जे जरूर बता दिया जाए। मामला कब्रिस्तान की जमीन का है न? आप लोग मुसलमान-हिंदू का चक्कर काहे नहीं डालते इसमें? यह सब एक प्रतिष्ठित बाँधन के खिलाफ साजिश है मौलाना की। उसी ने जमीन विवाद में पंडिज्जी का केस कमजोर कराने के लिए उनके बेटे को झूठे फौजदारी केस में फँसाया है। सब धार्मिक विद्वेष का मसला है। ... पंडिज्जी बोलेंगे तो हम अपने बयान में जे सब भी घुसेड़ देंगे।"

मुन्ना मास्साब उसकी शकल ताकते रह गए।

"तुम्हारा दिमाग तो वकीलों से भी आगे है रामटहल!" वे बोले।

रामटहल ने हाथ जोड़कर दाँत दिखा दिये।

"वैसे, उस सबकी जरूरत नहीं पड़ेगी।" मुन्ना मास्साब ने कहा।

"हमने तो बस एक सलाह दी है। हिंदू-मुसलमान के बीच कोई-सा भी केस चले, वकील लोग जे सब तो उसमें डलवा ही देते हैं। ... इनने हमारे देवी-देवताओं को गाली दी। ... इनने हमारी मस्जिद पर मूत दिया। ... मामला साम्प्रदायिक कर दो तो लड़ाई एक जन की न होकर समाज की हो जाती है-जज का ध्यान भटकता है।" रामटहल ने अपना प्वाइंट बताया।

"झूठी गवाहियाँ देते-देते सच्ची बातें बोलना भी जान गए हो रामटहल जी। बड़ी ऊँची बात कह गए अभी तुम।" मुन्ना मास्साब प्रशंसा करते हुए बोले।

"जे हमने नहीं कही है, हमें तो बस, ऐसेई एक केस में वकील साहब ने समझाई थी- हम वोई आपको बता रहे थे। ...पर इत्ती-सी मारपीट में अदालत का केस कैसे बन गया?" रामटहल ने पूछा।

"अरे, भड़कावे वाले भी तो बैठे हैं न? अपने नेताजी बीच में घुस गए, बस। उनने मामले की सेटलमेंट नहीं होने दी।"

"नेताजी; कौन? जे पंखीलाल कहार?"

"हओ-भौतई हरामी आदमी है स्साला।"

"मौलाना को कछू बड़ी चोट तो नहीं लगी न?" रामटहल ने पूछा।

"अपोली के जरा से एक घूँसे में उनके दो दाँत जरूर गिर गए।" मुन्ना मास्साब ने उड़ती-उड़ती-सी सूचना दी।

"जे तो ग्रीवियस इंजुरी कहाई महाराज?"

"काहे की ग्रीवियस इंजुरी? हमने तो अदालत में जेई कहा है कि मौलाना के दाँत पहले से झरे हते। बे अपने मूँ में हरदम तंबाकू पान धरे रहते हैं। सारे दाँत पहले से ही हिलगे हुए हैं।"

"दाँत ऐसा हिलगा हो तो फिर बच्चा भी लप्पड़ मार दे तो दाँत गिर जाएगा, सही कहा।" रामटहल ने सहमति जताई।

"वोई बात।"

"पर नेताजी अपने प्रपंचों में लगे तो हैं। यहाँ-वहाँ कहते फिरते हैं कि इस केस में अपोली से जेल की चक्की न पिसवाई तो हमारा नाम पंखीलाल नहीं।"

"वोई स्साला इस केस में आग लगाए होगा वर्ना जे फजलुलरहमान सीधा-सादा आदमी है। हम जानते हैं उसे।"

"यार, अगर ऐसा ही सीधा आदमी है तो फिर जरा-सा पिटबे में काहे को इतराता हल्ला मचाए है? अरे, अगर सीधा आदमी न पिटेंगा तो क्या टेढ़ा पिटेंगा?" मुन्ना मास्साब सहमत नहीं।

"वैसे, अपना केस किनके इजलास में लगा है?" रामटहल ने पूछा।

"मतलब?" मुन्ना मास्साब प्रश्न की अहमियत नहीं समझ सके।

"जज साहब कौन हैं?"

"अरे, जो हों, तुम क्या करना है? तुम अपनी गवाही देबे से मतलब।"

"वो बात सही है पर कहीं बे रस्तोगी जज न निकल आएँ?"

"क्यों? रस्तोगीजी हों तो क्या?"

"अरे, अब का बताएँ मालिक। हमसे थोड़ी नाराजगी हो गई है उनकी।"

"अरे, कैसे?"

"...हुआ जे कि पन्द्रह दिन के अन्तर पे उनकी ही अदालत में हमारी दो गवाहियाँ हो गई। दो केस लगातार में लग गए, एक के बाद एक, रस्तोगीजी के इजलास में, जल्दी-जल्दी, और दोनों मारपीट के। बेई-बेई बातें। ... मारपीट के केस में वकील क्या तो नया पूछ लेगा, और गवाह क्या नया बताएगा? सब बातें बेई। हमारे जवाब भी वोई। ... रस्तोगीजी हमें ताड़ गए। घूर के देखते रहे। पहिचान गए। बोले कि तुम तो चार दिन पहले भी एक केस में गवाह थे न? अब हम क्या कहते? हाथ जोड़ के हमें 'हाँ' कहना पड़ा। बस, बमक पड़े बे। जोर से भड़क गए। हमें धमका के पूछने लगे कि तुम जे गवाही का ही धंधा करते हो क्या?" रामटहल अदालत में अपने रंगे हाथों पकड़े जाने की कथा सुना रहे हैं।

"फिर?" मुन्ना मास्साब ने पूछा।

"हमने कहा कि मालिक, किसान आदमी हैं हम तो..." रामटहल लापरवाही से बताने लगे।

"तब?"

"इससे रस्तोगी जज और ज्यादा उखड़ गए। हमसे बोले कि ऐसा कैसे है कि गाँव में जहाँ भी मारपीट होती है तुम वहीं पर गवाही के लिए खड़े मिल जाते हो?"

"फिर?"

"हमने जेई कही कि मालिक इसे कुदरत का संजोग माना जाए, बस। ... बे भौत खफा भए। धमका के बोले कि आगे जो कभी ऐसा संजोग फिर हुआ तो अपने जेल जाबे का संजोग भी पक्का मानना। तुम्हें सीधे जेल भेजूंगा। ... भौत गुस्सा भए। एकदम भभूका टाइप बैठ के हमें देखते रहे।"

"फिर? तुम कुछ बोले?"

"हमने भी ठान ली थी कि आज अगर हम इनसे दब गए तो फिर तो जे स्साला धंधा ही छोड़ना पड़ जाएगा। हमने कही कि मालिक, अब चाहे आप अन्दर पेंड दो या फाँसी पे टाँग दो - पर कहीं कलू देखेंगे तो गवाही देने से तो आगे भी कभी न कतराएँगे। जे तो सत की लड़ाई है मालिक-ऐसा बोले हम,

रस्तोगी से।"

"फिर? रस्तोगीजी क्या बोले?"

"बे क्या बोलते? मन मसोस के रह गए। अन्त में बे जेई बोले कि बस, हम तुमको याद दिला दें कि झूठी गवाही देना दंडनीय अपराध है, हम इसे बरदाश्त नहीं करेंगे।"

"फिर?"

"हमने हाथ जोड़कर जेई कहा कि मालिक, आप तो बैठे ही धर्मराज की कुर्सी पर हो, आप काहे बरदाश्त करोगे? अरे, जब हम जैसे पातक मनुष्य भी झूठ बरदाश्त नहीं करते हैं तो आप काहे करोगे?"

"तुमने ऐसेई कहा-सच्ची?"

"एकदम सच्ची मालिक। झूठ बात को दबक के बोला जाए तो वो सच से भी जादा असर करती है..."

"...सही बात..."

"...और इसका उलटा भी है।"

"मतलब?"

"सच बोलना भी आसान काम नहीं है मालिक। सच बोलते टेम आदमी जरा-सा भी लड़खड़ाए, या बोलबे में उसकी आवाज़ तनिक-सी भी कमजोर भई तो वकील लोग, भरी अदालत में उसे झूठ करार करा देते हैं मालिक। हमारा तो अदालत का इत्ते साल का निचोड़ जे है कि इसकी इमारत झूठ के चूने गारे पर ही टिकी है। सच की तो इस पर पुताई भर है। वैसे, इसी रंगाई-पुताई से बिल्डिंग की शान भी है।"

"यार, ऐसा न बोलो, वकील साहब बुरा मान जाएँगे।"

"है तो एकदम ऐसा ही, बाकी हम भी वहाँ सच की जय-जयकार करके ही आते हैं। इस केस में भी सच की जय-जयकार मचा के आएँगे। चिन्ता न की जाए।"

"तुमाई इसी हिम्मत की तो वकील लोग तारीफ करते हैं।"

"तब भी, जज साहब का पता जरूर कर लेना।"

"और जो रस्तोगी साहब ही भए, तो? गवाही दोगे कि नहीं? क्यों?" मुन्ना मास्साब ने पूछा।

रामटहल मुस्कुराए। बोले :

"क्यों न देंगे? ठाठ से देंगे। बस, थोड़ी-सी धज बदल के वहाँ जाएँगे। कोशिश रहेगी कि बे हमें एकदम से पहिचान न लें। अपने बोलबे का ढंग भी हम थोड़ा-सा अलग कर लेंगे। धोती-कुर्ता की जगह पैंट-कमीज डाल लेंगे। हमने हर मौके के लिए कपड़े बनवा रखे हैं। ... तैयारी रखनी पड़ती है मालिक। तनिक दाढ़ी-मोँछा भी बढ़ा लेंगे। बाल पहलवानों टाइप छोटे कटा लेंगे। नहीं तो घुटमुंडी ही करा लेंगे। कुछ ऐसा करके पहुँचेंगे कि रस्तोगी जी देखें तो पुराना कुछ याद न आए।"

"और फिर भी पहिचान लिए तो?"

"तो? बाबाजी का घंटा। हम घबराते बिलकुल नहीं। इत्ता कानून तो हम भी समझते हैं मालिक। कोई हमें इस बात पे जेल नहीं भेज सकता कि गाँव में जहाँ लड़ाई-टंटा होता है, वहाँ हम क्यों मिल जाते हैं? ईश्वर की माया है। संजोग की बात है। पकड़ना है तो ईश्वर को जाकर पकड़ो। वह हमें वहाँ भेज देता है। हम पहुँच जाते हैं। जाओ, पकड़ो न उसे। उसी से पूछो। वही बताएगा कि वह उतई लाठी क्यों चलवाता है जितें से हम निकल रहे हों। यार, आप इस रामटहल से क्या कहते हो? हम तो अदालत में जौन-जौन देखा तौन-तौन ही बताएँगे न? इस कर्तव्य से आप हमें नहीं रोक सकते। ठीक कहा कि नहीं? क्यों मास्साब?"

"वाह यार, तुम तो गज़ब..."

"गजब की कोई बातई नहीं है मालिक। गवाही देने के लिए जे नहीं चाहिए कि तुमने कुछ देखा था कि नहीं, कि तुमने कुछ सुना था कि नहीं। नहीं। जे सब नहीं। गवाही देबे के लाने चाहिए, जे कलेजा। ... जे (छाती पर हाथ मारकर), ... जे चाहिए। गवाही का काम चलता है कलेजे से। आदमी के पास कलेजा न हो तो उसे सच्ची गवाही देने से भी बचना चाहिए। मान लो कि आप एकदम सच्ची गवाही देबे चले हैं और उतें, इजलास में आप कुछ भूल गए। फिर घबरा भी गए आप। फिर आँय-बाँय बोलन लगे। ऐसेई होता है। कलेजा न हो तो आदमी इत्ते में ही ऐसा लड़खड़ा जाता है, हकलाने लगता है कि उसकी सच्ची गवाही भी एकदम झूठ टाइप लगने लगती है।"

"बस, तो आपको वहाँ अपना वाला सच बोलना है।"

"वो तो वकील साहब हमें बता ही देंगे। जैसा सच बे हमें सिखा देंगे वैसा हम बोल आएँगे।"

"हाँ, एक दिन अपुन वकील के पास भी चले चलेंगे।"

"चले चलेंगे न। जब आप बोलो। कहो तो आज चल दें? बस, अपने वकील साहब से इत्ता बोलियो कि बे अदालत में खुद ही न घबराने लगेंगे। बे जो-जो सिखाएँगे, हम उनमें दो बातें अपनी भी मिला के बोल देंगे। पर होता जे है कि जब हम अपनी गवाही में ऐसा कुछ एक्सटा बोल देते हैं तो कई वकील लोग खुदई घबरा जाते हैं। बताइए? ऐसा होता है क्या? हमारी गवाही से काम की बात निकालना तो वकील का काम कहाया न? अब वकील ही घबरा जाए तो?"

"उसकी चिन्ता न करी जाए। गुप्ता वकील हैं। कानून की किताब घोंट के पी रखी है। कानून की इत्ती धाराएँ साथ ले के चलते हैं कि अदालती बहस में एकदम सहस्त्रधार टाइप सीन खेंच देते हैं। जिरह करते हुए, हर धारा में ऐसी छपाक-छपाक मचाते हैं कि कानून के छींटे उड़ उड़ के जज साब के मूँ पे उचटते हैं। जज साहब बेचारे अपने मूँ पे रूमाल फेरते रह जाते हैं।"

"गुप्ताजी? बे, कानपुर वाले?"

"हओ, बेई, कानपुर वाले। जानते जानते हो उनको?" राम टहल हँसने लगे।

"जानते हैं?... हमारा। उनका बड़ा लम्बा साथ रहा है महाराज। ... कभी उन्हें हमारा नाम बतइयो, फिर देखियो, चेहरा कैसा चमक जाता है उनका। हमें तो कानपुर तक बुला के गवाही दिलवाई है उनने। गजब के वकील हैं। ऐसा वकील रहे तो झूठी गवाही का अलगई मजा है। ऐसे वकील के साथ संगत-सी बैठ जाती है। संगत समझते हैं न?... भजन गाने में अगर हरमुनिया और तबले की ठीक से संगत बैठ जाए तो गाने वाले का सुर बढ़िया जम जाता है- बस, वेसेई बात। गुप्ताजी जैसा वकील मिल जाए तो झूठी गवाही से भी एकदम सच्ची गवाही के सुर निकलने लगते हैं।"

मुन्ना मास्साब मुस्कराते हुए यह सब सुनते रहे। "तो हम चलें?" अन्त में उन्होंने पूछा।

"चलें महाराज। न तो जे गली ऐसी है, न हमारी कुटिया ऐसी कि हम आपको रुकबे की कह सकें। आप निकरें। बस, पंडिज्जी तक हमार्ई पालांगी जरूर पहुँचइयो। कहियो कि हम गरीबन पे उनकी ऐसेई किरपा बनी रहे-जेई अरज है हमारी।"

"वो तो है ही। पंडिज्जी की तो पूरे कोटरा पे कृपा है।" मुन्ना मास्साब ने कहा और चल दिये।

रामटहल उन्हें जाते हुए देखते रहे।

फिर वहीं खड़े-खड़े मास्साब को आवाज देकर बोले, "हम वो पूरे कोटरा वाली कृपा की बात नहीं कर रहे थे महाराज। ... हम कोई पानी बरसबे की बात नहीं कर रहे हैं कि बरसात पूरे कोटरा पे होगी। हमारी अरज है कि पंडिज्जी की किरपा इधर हम पर तनिक ठीक से बरसती रहे।"

मुन्ना मास्साब रुककर पलटे।

दूर से हँसकर बोले, "तुम्हारा अलग मामला है। तुम्हारा तो एकदम तालाब वाला मामला है रामटहलजी। बरसात पूरे कोटरा पे होगी पर असली पानी जाकर तालाब में ही भरेगा।"

मुन्ना मास्साब पलटे और निकल गए।

रामटहल उन्हें जाते हुए देखते रहे। फिर उन्होंने लुढ़के हुए लोटे को मुस्कुराकर देखा।

लोटा गली में लुढ़का हुआ पड़ा है। लोटे के आस-पास पानी का छोटा-सा चहबच्चा बन गया है।

प्यार से लोटे को उठाकर उसे ही सम्बोधित होकर रामटहल बोले, "आज तो तूने सुबह-सुबह ही बोहनी करा दी। धन्य है रे तू।"

सतयुग का आदमी

शाम उतर आई।

पीली धूप खेत पर उतरी तो मटर की फलियाँ दूर तक सुनहरी लगने लगीं।

पंडिज्जी के खेत की मेंड़ पर, चौकीदारी निभाता, यूँ ही भटकता हुआ नत्थू सामने बन रही सड़क तक आ गया। सड़क बनाने का आज का काम अभी-अभी बन्द हुआ है। अब वहाँ सारा सामान समेटा जा रहा है। सड़क कूटने के इंजन को एक किनारे लगाकर ड्राइवर भी नीचे उतर आया है। मजदूर अपना झोला-डंडा संभाल रहे हैं। बूढ़ा नत्थू वहाँ आकर बस यूँ ही खड़ा हो गया है। निरुद्देश्य खड़ा हुआ वह इन सबको सामान समेटते हुए देख रहा था।

सड़क पर बिखरी गिट्टी से बचता-बचाता हुआ ड्राइवर वहाँ आया और बूढ़े के पास आकर खड़ा हो गया।

"तनिक मटर उखाड़ लें हम?" ड्राइवर ने बूढ़े से पूछा।

"नहीं मालिक, जे काम बिलकुल न करें।" बूढ़े ने दृढ़ स्वर में मटर देने से मना कर दिया।

"क्यों?" ड्राइवर आश्चर्य से पूछने लगा।

"जे पराए की अमानत है, महाराज।"

"तुम्हारी मटर तो नहीं है न? तब तुम्हें क्या दिक्कत है?"

"हमने कहा न; पराए की अमानत है।"

"तो?"

"अभी जे हमारे हवाले है।"

"तभी तो तुमसे पूछ रहे हैं। थोड़ी-सी उखाड़ लें?"

"न तो हम उखाड़ेंगे, न ही दूसरे को इसमें हाथ लगाने देंगे।"

"क्यों? यहाँ कौन देख रहा है? तुमारा क्या बिगड़ता है-हमें थोड़ी-सी उखाड़ लेने दो न?"

"भइया, जे अधर्म हमसे न होगा।"

तुमने ही धर्म का पूरा ठेका ले रखा है?"

"धर्म का पालन तो सबको करना पड़ता है साहब।"

"...और वे लोग जो तुम्हें यहाँ ठंडी रात में खुले आसमान के नीचे छोड़ दिये हैं, उनका कौन-सा धर्म है जे?"

"वो तो हमार् च़ाकरी है। हमें उसकी मजूरी मिलती है। इसमें धर्म-अधर्म कैसा?"

"वे तुम्हें चूतिया बना रये हैं, तुम्हें इत्ता भी नहीं समझ आता है क्या?"

"नहीं डिलाइवर साब, ऐसा नहीं है। मालिक तो हमारा भौत ख्याल रखते हैं।"

"घंटा ख्याल रखते हैं।"

"रखते तो हैं..."

"... रखते हैं तो फिर काहे का डर? हमें थोड़ी-सी मटर ले लेने दो। वे तुम्हें डाँटेंगे थोड़े ही?"

"नहीं साब, यह तो न होगा।"

"यार, हम अगर जरा-सी मटर उखाड़ लेंगे तो क्या तुम्हारा खेत खाली हो जाएगा? इत्ते का तो तुम्हारे मालिक को पता भी न चलेगा।"

"उन्हें पता न चले पर वो मालिक तो सब देखता है न?" बूढ़े ने आसमान में कहीं बैठे ईश्वर की तरफ श्रद्धापूर्वक हाथ उठाकर कहा।

"जे बात तुमसे किसने कही? ऊपर वाला आजकल कुछ भी नहीं देखता है।"

"नहीं, नहीं! वो तो सब देखता है साहब।"

"जे तुम्हारी गलतफहमी है..."

"...नहीं मालिक, वो देखता है। दुनिया के पल-पल का Koom हिसाब रखता है। नाक पल-पल

"वो तुम्हारी दुर्दशा क्यों नहीं देखता?"

"क्यों न देखता होगा? जरूर देखता है।"

"फिर उसके ऐसा देखबे का क्या फायदा? वह तुम्हारे लिए कुछ करता क्यों नहीं?"

"वो क्या करे?"

"क्यों? वो तो सर्वशक्तिमान है न? फिर? इन कष्टों से तुम्हें काहे नहीं निकालता?"

"अरे, जे तो हमारे करमों के फल हैं भैया। उसके पास सबके कर्मों का लेखा-जोखा रहता है। हमने पिछले जनम में पाप करम किए थे सो उसी का इस जमाने में भुगत रहे हैं।"

"वाह यार! हमने तुमसे जरा-सी मटर क्या माँग ली तुमने तो पूरी भागवत ही बिठा दी।"

"अरे नहीं महाराज। हम क्या भागवत बाँचेंगे मालिक !" ड्राइवर थोड़ी देर तक बूढ़े को घूरता रहा।

कित्ता भोला है यह शख्स !

और कित्ता चूतिया !

"अच्छा, जे तो बताओ - कित्ता पैसा देता है मालिक तुम्हें?"

"जमीन, बीज, पानी और बाकी की सब लागत पंडिज्जी की; मेहनत हमारी। हमें बटिया पर अपना जे खेत दिया है मालिक ने।"

"तो?"

"ऐसा मानिए कि फसल ठीक निकल आई तो एक चौथाई फसल हमारी..."

"... और जो फसल बिगड़ जाए, तो?"

"तो फिर कुछ नहीं।"

"कुछ नहीं?"

"हओ, कछ्छ नहीं।"

"ऐसे कैसे?"

"क्यों? ऐसे कैसे देंगे मालिक मालिक? फसलई बिगड़ गई तो बे हमें कैसे दें, बताओ?"

"क्यों, और तुम्हारी मेहनत?"

"वो हमारी किस्मत।"

"पर तुम्हारी इत्ती मेहनत का कुछ तो देंगे कि नहीं?"

“बे क्यों देंगे?”

"यार, तुम उनकी तरफ हो कि अपनी तरफ?"

"बात उनकी, हमारी नहीं है।"

"फिर किसकी है?"

"बात तो धर्म की है।"

"अच्छा तो जे बताओ, धर्म उनकी तरफ है कि तुम्हारी तरफ?"

"धर्म तो धर्म की तरफ होता है मालिक।"

ड्राइवर उसे घूरता रहा। यह शख्स इतना नासमझ कैसे है?

"तुम ऐसी किसानी छोड़ काहे नहीं देते?"

"छोड़ तो दें पर करेंगे क्या? फालतू बैठबे से तो जेई अच्छा है। हम सबके एक पेट भी तो लगा रखा है ईश्वर ने। इसके लाने कछू तो करना पड़ेगा मालिक।"

"ठीक है। खूब करो पर इस फसल में से अपने लिए थोड़ा ज्यादा हिस्सा तो माँगो।"

"जेई नियम चल रहा है मालिक।"

"नियम किसने बनाया?"

"मालिक बनाएँगे, और कौन?"

"नियम बनाबे वालों ने तुमसे कुछ नहीं पूछा?"

"हमसे क्यों पूछेंगे? मालिक बे हैं।"

"तो? अरे, वो न भी पूछें, तुम तो माँगो; कहो कि वे तुमें ज्यादा हिस्सा दें।"

"बे हमें चार लात मार के सड़क पे और खड़ा कर देंगे।"

"कैसे कर देंगे? क्या सोचते हो- तुम्हारे बिना काम चल पाएगा उनका?"

"हाँ, चल जाएगा।"

"कैसे?"

तो हमारे "हम जे काम छोड़ेंगे तो हमारे जैसे बेकार बैठे लोग उन्हें मिल जाएँगे।" छाड़गता हमार जसे दस बकार

"दस तो कोई नहीं बैठे हैं यार।"

"दस नहीं, बीस बैठे हैं मालिक। कभी जा के तो देखो। गाँव में काम-धंधा है कहाँ?"

"खेती की जगह कछू और धंधा कर लो न।"

"एक धेले की पूँजी हमारी गाँठ में नईयाँ, हम का धंधा कर लें? बताइए न?"

"तो जब इस फसल का कुछ पैसा मिले तब कुछ कर लेना।"

"जे तो है। सो तो हमने मालिक से उधार ले के एक बकरी भी खरीद ली है साब। ढाई हजार में मिली है। आगे जाकर बकरी का काम शुरू करेंगे।"

"बकरी?"

"जी।"

"गांधीजी बनबे की ठानी है?"

"हम तो गांधी बब्बा के चरनन की धूल भी नहीं हैं मालिक।" बूढ़ा हाथ जोड़ने लगा।

"बकरी का तुम क्या करोगे?"

"उसका गर्भाधान कराते रहेंगे। वो दूध देगी। बच्चे देगी। बकरा हुआ तो बेच लेंगे। बकरियाँ होंगी तो पालेंगे। बकरियन की तादाद बढ़ जाएगी तो उनका दूध हमारे काम आएगा।"

"बकरी का दूध कौन खरीदेगा?"

"कोई नहीं।"

"फिर?"

"घर में काम आएगा न मालिक। दो-दो नाती हैं। उनको रोज-रोज दूध मिलेगा तो बे पनप जाएँगे।"

डाइवर ने उसे फिर से ध्यान से देखा। ... जरा सपने तो देखो इस शख्स के ! अबे, अगर इतने छोटे सपने देखोगे तो फिर क्या होगा तुम्हारा?

"ठंड बढ़ रही है। रात कैसे काटोगे?"

"कट जाएगी साब।"

"कैसे?"

"कट जाती नाती है मालिक।"

"कैसे कटती है? क्या करते हो?"

"क्या करना है?"

"तुम्हें ठंड नहीं लगेगी? ऐसे, एकदम खुले में, रात भर?"

"तो?"

"अरे, ठंड नहीं लगेगी तुम्हें?"

"लगेगी न। लगेगी तो बीड़ी पी लेंगे मालिक।"

"बीड़ी से कित्ती गर्मी मिलेगी?"

"थोड़ा-सा सोचना भर पड़ता है मालिक। बीड़ी पीते हुए गर्मी की सोचो तो थोड़ी गर्मी मिल तो जाती है मालिक।"

"और जो तुम्हें ऐसे खुले में निमोनिया हो गया तो?"

"तो क्या? मर जाएँगे। बस।" कहकर बूढ़ा हँसने लगा।

यार, कमाल है यह बूढ़ा भी!

"बीड़ी पी-पी के अपनी छाती न जलाया करो।"

"सो तो हम रात में आग भी जला के रखते हैं मालिक।"

"आग के लाने क्या जलाते हो?"

"वो धरा है न, उतें?"

ड्राइवर ने उस तरफ देखा जिस तरफ इशारा किया जा रहा था।

अन्दर कुहीं, मेंड़ पर सूखी पत्तियों का एक छोटा-सा ढेर पड़ा हुआ था और आस-पास से बटोरी गई कुछ टूटी झाड़ियाँ भी।

"रात में जला लेते हैं तो राहत हो जाती है।" बूढ़े के उत्तर में एक इत्मीनान-सा है।

"इससे क्या होता होगा?"

"हो जाता है भैया। रात बढ़िया कट जाती है।"

"बढ़िया तो न कटती होगी?"

"कट जाती है।"

"कटबे का मतलब?"

"जिन्दगी भी कट रई है कि नहीं? फिर फिर रात तो और छोटी ही होती है महाराज। ... कट जाती है।"

"धन्य हो तुम।" कहकर ड्राइवर ने हवा में हाथ जोड़ लिए। बूढ़े ने भी हाथ जोड़े और जोड़े ही रहा।

ड्राइवर ने झाड़ियों के ढेर की तरफ इशारा करके कहा, "जे तो बस एक-दो घंटे का माल हुआ, फिर? एक बार इसमें आग फुँकी तो घंटा भर में राख हो जाती होगी?"

"तो राख को आप कछू कम माने हो का? राख भी बड़ी लम्बी गर्म रहती है। राख की आँच रहती है साहब।"

"कैसी आँच?"

"महसूस करो तो आँच होती है साहब।"

"ऐसे कैसे?"

"हम रात भर इसी गर्म राख के बगल में पड़े रहते हैं तो सर्दी से बचाव हो जाता है।"

"फिर भी..."

"... फिर सुबह तक देह अगर ठंडी भी हो जाए तो हम दिन भर धूप में तो बैठे ही रहते हैं।"

"धन्य हो तुम।" ड्राइवर ने हाथ जोड़कर कहा।

बूढ़े ने भी हाथ जोड़ दिये।

"फिर तो रात भर जगे रहते होंगे?"

"जगना तो वैसे भी पड़ेगा न साहब। उठ उठ के खेत को भी तो देखना पड़ता है मालिक।"

"यार, तुम तो मटर के एक-एक दाने पर नजर रखते हो, अब ऐसी चौकीदारी भला और कौन करेगा? धन्य हो तुम।"

"हम काहे के धन्य मालिक ? धन्य लोगों को तो भगवान अलग से पैदा करता है।"

"यार, जैसी लगन से तुम खेत की रक्षा में लगे हो, तुम धन्य तो हो।"

"इसमें धन्य की कौन-सी बात है?"

" तुम धन्य ही हो, या फिर भौत बड़े चूतिया।" कहकर ड्राइवर हँसते हुए चल दिया।

कुछ दूर पर ही उसकी मोटरसाइकिल रखी हुई है। वह जाकर मोटरसाइकिल पर बैठ गया।

बूढ़ा देखता रहा उसे। उसने गाड़ी स्टार्ट की। मोटरसाइकिल चलाते हुए वह बूढ़े के पास से गुजरा। जाते-जाते वह बूढ़े के पास आकर फिर रुका।

"चलो, तुम हमें मटर का एक भी दाना न दो पर खुद तो कभी खा लिया करो।"

"हम कैसे खा सकते हैं? जिस चीज की देखभाल के लाने हम बिठाए गए हैं उसे हम ही खाएँगे तो पाप न लगेगा हमें?"

"यार, तुम हो किस जमाने के बब्बा? तुम्हें शायद पता नहीं चल पाया हो पर सतयुग कभी का खत्म हो चुका है!"

"मतलब?"

"कुछ नहीं। ...तुम नहीं समझोगे।"

ड्राइवर मोटरसाइकिल लेकर निकल गया। सूरज डूब रहा है। डूब ही गया है। हवा का एक झोंका आया और बूढ़े से टकराकर खेत पर भागता हुआ चला गया। मटर के पौधे दूर तक आंदोलित हो गए।

"लगता है कि आज ठंडी तेज होबे वारी है।" बूढ़े ने खुद से कहा।

पता नहीं कि यह इस मौसम से उसकी शिकायत थी या खुद को दी गई कोई चेतावनी?

लाइट तो स्त्री ही बन्द करेगी

"इतें ही धरी हती, इतें ही धरी हती; स्साली जब इतें ही धरी थी तो फिर कितें हिरा गई?"

पंडिज्जी ने ऊँची आवाज में चिल्लाकर पूछा।

रात के ग्यारह बजे का टाइम है। रात के इस सत्राटे में आवाज़ और भी ऊँची प्रतीत होती है। अपोली पास के कमरे में थे। पलंग पर लेटे हुए वे अपने मोबाइल पर कुछ रोचक देख रहे थे। आवाज सुनी तो उठे और भागकर वहाँ पहुँच गए। लक्ष्मी तो और भी अन्दर वाले कमरे में पढ़ रही थी। पंडिज्जी की इकलौती बेटी। इंटर की छात्रा।

पंडिज्जी बात-बात में पत्नी पर चिल्लाते रहते हैं। पति हैं। अधिकार है उनका। अभी वे पति का ही रोल कर रहे हैं और बखूबी कर रहे हैं।

पंडिताइन पलटकर कुछ नहीं बोलीं।

वे कुछ नहीं बोलती हैं। बाद में जरूर दुखी होती रहती हैं। "तुम पलटकर कुछ बोलती क्यों नहीं?" लक्ष्मी को माँ पर गुस्सा आता है। ... और पंडिज्जी पर?

पंडिज्जी बेटी को विद्रोहिणी मानते हैं। बताइए, अपने बाप से तर्क करने बैठ जाती है। अच्छी लड़कियों के लक्षण नहीं होते हैं ये। लड़की तो चुप ही भली लगती है। 'अपनी माँ से कुछ भी अच्छा नहीं सीख रही है लक्ष्मी,' पंडिज्जी की शिकायत है। स्त्री जाति का फालतू मुँ लगना पसंद नहीं है पंडिज्जी को। अपोली भी अक्षरशः इसी बात को मानते हैं। तभी तो बहू को उन्होंने किसी बात पर अभी ऐसा ठोका था कि वह पिछले एक माह से अपने मायके जाकर बैठी हुई है। मूर्खा समझती है कि हम उसे मनाकर घर वापस ले आएंगे ! हद है!

लक्ष्मी अपोली से भी उलझती रहती है। अपोली और पंडिज्जी, दोनों की शिकायत है कि लक्ष्मी को जमाने की हवा लग गई है। माँ चुप रहती है पर मन से लक्ष्मी के साथ है। लक्ष्मी में अपना सपना जीती है वह। वह भी लक्ष्मी की तरह पंडिज्जी से तर्क करना चाहती है। कभी उनके सामने तनकर खड़ी होना चाहती है वह; हो नहीं पाती। मन की खलबली को दबाए रहती है।

"क्या हुआ?" अपोली ने आकर पंडिज्जी से पूछा। "होना क्या है? कालपी वाले खेत की रजिस्ट्री ही नहीं मिल रही। और हमें कल के केस के लिए जे अरजेंट में चाहिए। वकील ने फोन करके माँगी है। हमने इनको ही रखने को दी थी। कहती हैं, सँभालकर धर दी थी पर हम माँग रहे हैं तो इन्हें मिल नहीं रही। गुमा दी है महारानी ने।" पंडिज्जी भुनभुना कर बता रहे हैं।

पंडिताइन अपराधी भाव से मौन खड़ी हैं।

ज़मीन पर बड़ा वाला टीन का नीला बक्सा खुला पड़ा हुआ है। ज़मीन पर साड़ियाँ, लहंगे, ब्लाउज, चादरें, कुरते, पाजामे, जैकटें इत्यादि बिखरे पड़े हैं। कई फाइलें भी ज़मीन पर पड़ी हैं। कई खुले हुए कागजात भी।

पंडिज्जी गुस्से से घूरे जा रहे थे पंडिताइन को।

अपोली आकर पलंग पर बैठ गए। अपनी ही धज है उनकी। पाजामा। कुर्ता। बंडीनुमा स्वेटर डाले। बाल बिखरे हुए। वे भी अपनी तरह से मामला समझने की कोशिश करने लगे। इधर पंडिज्जी ऐसे तड़प रहे हैं मानो कलेजे में कटार घुँपी हुई हो।

..."जे कह रही हैं कि इनने इसी बक्से में धरी थी। यार, जे बक्सा है ही इस काम के लिए। चाबी भी इनई के पास रहती है। अरे, अगर तुमने बक्से में धरी थी तो फिर कहाँ चली जाएगी? बताइए।"

पंडिज्जी बड़बड़ाए चले जा रहे हैं।

पंडिताइन इसी बीच धीरे से ज़मीन पर बैठ गई हैं और फर्श पर बिखरे सामान में एक बार फिर से पड़ताल कर रही हैं।

"तुम दो बार तो सब कुछ उलट-पुलट के देख चुकी हो। अब वहाँ बैठकर क्या खोद रही हो?" पंडिज्जी बड़े ज़ोर से चिल्लाए।

अपोली पंडिज्जी पर ही चिल्ला पड़े, "तिबारा देख रही हैं तो देखने दो न। आपको क्या ऐतराज है? फालतू में चिल्लाने की आदत ही पड़ गई है आपको। स्कूल में भी जेई, घर में भी जेई।"

पंडिज्जी अपोली की तरफ पलटे :

"अब आप सिखाएँगे हमें?"

"अगर कोई गलती कर रहा हो तो सिखा क्यों नहीं सकते?"

"तो जरा हमें जे सिखाएँ कि रजिस्ट्री न मिली तो कल अदालत में हम क्या करेंगे?"

"करना क्या है? जाकर नई तारीख ले आना। वैसे भी जेई तो होता रहता है आपकी अदालत में।" रहता है आपकी अदालत में।"

"वैसे जे कालपी वाली रजिस्ट्री तो आप पहले भी अदालत में पेश कर चुके हैं न?"

"तुम कैसे पता?"

"पता चल जाता है। पूरे कोटरा को पता चल जाता है। पेशी से पहले आप ऐसा तड़पने लगते हो कि घर में उपद्रव मच जाता है।"

"जे उपद्रव है?"

"चलिए, उपद्रव नहीं है। जे तो आपका शान्ति आन्दोलन चल रहा है।"

"...एक तो महारानी ने रजिस्ट्री गुमा दी है, और तुम चाहते हो, हम चिल्लाएँ भी नहीं?"

"आप हैं महाराजा, और बे हो गई महारानी; बताइए कि अब घर की प्रजा इसमें क्या करे?"

"महारानी से बस इत्ता पूछे कि कल हम अदालत में क्या पेश करेंगे?"

"और आप जज्जी से ये कभी न पूछेंगे कि मुक्किल से बार-बार बेई कागज क्यों माँगे जाते हैं? पुराने कागजन की पुंगी कहाँ डालते हैं जज साब?"

"ऐसा पूछना भी गुनाह कहाँगा। जज साहब अगर रोज भी वही कागजात माँगें, तो हमें रोज देने पड़ेंगे। उनसे कोई प्रश्न नहीं किया जा सकता; अदालत की मानहानि हो जाएगी।"

"कैसी मानहानि?"

"भौत नाजुक चीज है ये जज्जी। कुछ भी कहो या करो, उसकी मानहानि हो सकती है। मान लो कि जरा-सी हवा चली और यहाँ-वहाँ से इत्ती-सी भी इज्जत उधड़ गई, बस, वरुण देवता को मानहानि का नोटिस चला जाएगा। भगते फिरेंगे वरुण देवता। रोएँगे राजा इंद्र के सामने कि हमें बचाइए। हमसे तीसरी बार रजिस्ट्री माँगी गई है, हमें तीसरी बार देनी होगी, बस।"

इसी बीच पंडिताइन सारा सामान उलट-पलटकर फिर से वह रजिस्ट्री तलाश रही हैं। at hom

इसी बीच लक्ष्मी आ गई।

"तुम अन्दर पढ़ो।" पंडिज्जी ने उसे देखकर कहा।

"कैसे पढ़ें? आप इत्ता जोर-जोर से चिल्ला रहे हो, यहाँ ऐसी चिल्ला-चोट चल रही है, कोई पढ़ सकता है क्या?"

"क्यों? तुम तो बड़ी पढ़बे वाली हो न? जाकर पढ़ो।" अपोली ने कहा।

"आप तो कुछ न ही कहें तो अच्छा रहेगा।" लक्ष्मी ने अपोली को चेताया।

"देखा आपने? इसका बात करने का ढंग देखा आपने? अपने बड़े भाई से ऐसे बात करते हैं?" अपोली ने पंडिज्जी की तरफ शिकायती नज़रों से देखा।

"जे सब तो इसकी माँ को सिखाना चइए न? तुम हमसे क्या कहते हो?" पंडिज्जी ने पंडिताइन की तरफ इशारा किया।

"इसकी माँ इसे कैसे सिखाती? पहले वह खुद तो बोलना सीखे तब वह औरों को सिखाए। उसे तो आज तक आप लोगों के सामने आँख उठाकर बोलना भी नहीं आता।" उत्तर लक्ष्मी ने दिया।

"वो तो तुम उन्हें सिखा ही रही हो।" अपोली ने कटाक्ष किया।

"काश कि वे सीख पातीं।" लक्ष्मी ने कहा और माँ के पास ज़मीन पर बैठ गई।

"अब इतें कोई अदालत न खोली जाए। हमें अपने घर में जे वकीलों वाली बहस नहीं चइए।" पंडिज्जी ने निर्देश दिया।

अपोली लक्ष्मी को घूरते हुए पलंग पर ही बैठे रहे।

"हटिए तनिक। हम आपके साथ ढूँढ़वाते हैं।" कहकर लक्ष्मी माँ के साथ बॉक्स से निकले सामान की पड़ताल में लग गई।

"आपको पता भी है कि यहाँ किस चीज की ढूँढ़ाई चल रही है?" अपोली ने हँसकर पूछा।

"पता है। हमें क्या, पूरे कोटरा को पता है। ... गला फाड़-फाड़के तबसे यही तो बताया जा रहा है। दुनिया को खबर हो गई है कि इस घर में क्या चीज खो गई है।" लक्ष्मी ने कहा।

पंडिताइन ने लक्ष्मी की तरफ आँखे तरेर कर देखा।

"ऐसे बोलते हैं? अपने बाप के लिए कहती हो-गला फाड़ रहे हैं?" पंडिताइन बोलीं।

लक्ष्मी ने माँ की तरफ घूरकर देखा पर मौन रही। जब माँ अपना पतिव्रतापन जतला रही हो तो कुछ भी अन्यथा बोलकर उसके इस काम में क्यों बाधा डाली जाए? कितना कुछ करती रहती है माँ इस घर के लिए। यह घर मौन रहकर सब कुछ देखता रहता है। माँ के मौन रहकर खटते रहने का साक्षी है इस घर का कोना-कोना।

पिताजी मुकदमे लड़ते रहते हैं उनके कागजों की सँभाल माँ के जिम्मे !

मात्र चौथी कक्षा तक ही पढ़ी-लिखी हैं माँ। चाहतीं तो पिता के स्कूल से इंटर पास तो कर ही सकती थीं, वो भी फर्स्ट क्लास में। कोई भी मास्टर इनकी परीक्षा कापी लिख देता। खुद भी खासी बुद्धिमान हैं। कोई मौका देता तो बीए, एमए भी कर लेतीं परन्तु वे यह घर ही सँभालती रह गईं। और इसके लिए उन्हें क्या मिला? यह सब; फटकार, दुत्कार। बताया जा रहा है कि तुमसे एक ज़रा-सा कागज तो सँभालकर रखा नहीं जाता। वैसे माँ इनका हर कागज खूब सँभालकर रखती हैं। टीन का यह बक्सा मानो एक खजाना है माँ का। घर की सारी महत्वपूर्ण चीजें इसी में सहेजी जाती हैं। मौका पड़े तो वे इसी जादू के बक्से से चीजें निकालकर आपके हाथों में दे देती हैं। कहने को इसे उनका सम्मान भी माना जा सकता है। पंडिज्जी सबके सामने यही कहते हैं कि हमारा तो पूरा घर पंडिताइन के भरोसे है; कितना सम्मान है!

यह बक्सा पंडिताइन की जीवन-यात्रा का सबसे महत्वपूर्ण लगेज है। उनका सबसे करीबी, सबसे पुराना साथी। इस बक्से में शादी आदि के अवसरों पर पहनी, मिली, जरी वाली भारी साड़ियाँ, विशिष्ट अवसरों पर निकाली जाने वाली पोशाकें, ऐसी महँगी चादरें, जो कभी बिछाई ही नहीं गई, ऐसे महँगे इत्र-फुलैल, क्रीम-पाउडर जो कभी लगाए जाने की प्रत्याशा में वहाँ कैद हैं- ये तो हैं ही; इनके बीच ही दबे रहते हैं बीमा के कागज, बैंक की पास-बुके, फिक्स डिपॉजिट के सर्टिफिकेट्स, पंडिज्जी की डिग्रियाँ, अपोली और दुर्गा की मार्कशीटें, अपोली की शादी के फोटोओं का मोटा अल्बम, पुराने फोटू, धूप का एक फैशनेबल चश्मा, वैष्णो देवी की एक चाँदी जड़े फ्रेम वाली तस्वीर और पंडिज्जी द्वारा समय-समय पर सौंपे जाने वाले अन्य सभी कागजों की एक गठरी। ... "इन्हें सँभाल के धर दो" ... के निर्देश के साथ पंडिज्जी द्वारा सौंपी हर फाइल, कागज, पत्र, मुकदमों की फाइलें, जमीन-जायदाद के कागज, रजिस्ट्री आदि की फाइलों को अम्मा एक गेरुवे वस्त्र में बाँधकर बक्से में सबसे नीचे एहतियात से रख देती हैं। कभी वापस कोई कागज माँगे जाने पर वे यही गेरुआ बंडल निकालकर पंडिज्जी के समक्ष प्रस्तुत कर देती हैं। फाइल का रंग? मोटी कि पतली? नई कि पुरानी? पीला लिफाफा कि सफेद? सील ठप्पे वाला कागज है कि ऐसा ही? स्टाम्प पेपर वाले कागज हते कि सीधे-सीधे? टाइप करे वाले रहे कि हस्तलिखित? इनकी गणना के अनुसार वे माँगा गया कागज प्रायः एकदम सटीक ढंग से निकालकर पंडिज्जी को दे भी देती हैं।

आज भी जब पंडिज्जी के पास वकील का फोन आया तो पंडिज्जी ने घर में घुसते ही सबसे पहले पत्नी को यह बताया कि वो जो हमने तुम्हें एक साल पहले, पीले रंग की पत्री में धरे, स्टाम्प पेपर पे टाइप किए रजिस्ट्री के कागज रखने को दिये थे न, सो तुरत-फुरत अभी के अभी निकाल के ले आओ। आदेश जारी करने के बाद वे कपड़े उतारने लगे। फिर उन्होंने मुँह-हाथ धोए। कुर्ता-पाजामा डाला। और यह सब करके वे जब वापस लौटे तो पंडिताइन तीन फाइलें लेकर सामने खड़ी हुई मिलीं। ... इनमें से जो भी तुम्हें चइए हो, निकाल लो ताकि बाकी के कागज हम वापस ले जा के बक्सा में धर दें।

पंडिज्जी ने पाया कि चाही गई रजिस्ट्री तीनों फाइलों में नहीं थी। बस, वे बिफर गए।

पंडिताइन तुरत अपने नीले बक्से की तरफ भागीं, और भी फाइलें निकाल लाईं। फिर और कागज। फिर और पोटलियाँ।

परन्तु वह रजिस्ट्री कहीं भी नहीं मिली।

अब पंडिज्जी खुद भी बक्से के पास जा पहुँचे। उन्होंने अपनी आँखों के सामने पूरा बक्सा एक बार फिर से उथल-पुथल करवा डाला। उसका एक-एक कोना खंगाल लिया। साड़ियों की तहें खुलवा दीं। सारे कपड़े तितर-बितर कर डाले। बक्से में रखा हर सामान झाड़-झाड़कर देख लिया गया।

रजिस्ट्री नहीं मिली तो नहीं ही मिली।

अब ?

पंडिज्जी ने जलती हुई आँखों से पत्नी को घूरकर देखा। लगा कि आज कहीं ठोक ही तो न देंगे? वे पत्नी को कभी मारते नहीं हैं। वैसे, जवानी में कभी मारा भी है। पर अब, बस, हाथ हवा में उठाकर या हवा में ही घुमाकर रह जाते हैं। पंडिज्जी ने अन्ततः पूरा बक्सा ज़मीन पर उलटवा दिया। अब एक तरफ खाली बक्सा पड़ा हुआ था। बीच में कपड़ों का ढेर। बिखरे हुए कागज। और भी तमाम अंगड़-खंगड़।

"कहाँ है रजिस्ट्री?" पंडिज्जी ने गुस्से में पूछा।

पंडिताइन ने डरी आवाज़ में यही कहा, "हमने रखी तो इतई हती?"

उसी के जवाब में पंडिज्जी ने चिल्लाकर पूछा था, "इतें ही धरी थी तो फिर कितें हिरा गई?"

इसी बीच लक्ष्मी ने स्वयं सारे कागजों को एक तरफ़ करके, अनुशासित ढंग से, एक-एक कागज को फिर से देखना शुरू कर दिया था। अपोली अभी भी पलंग पर ही बैठे हैं। सब देख रहे हैं। पंडिज्जी विकट बेचैन हैं। कमरे के ठीक बीचोबीच खड़े होकर वे न जाने क्या सोच और क्या देख रहे हैं।

"तुम ये सब क्या कर रही हो?" पंडिज्जी ने लक्ष्मी से गुर्गकर पूछा।

"थोड़ा मुझे भी देख लेने दो।" लक्ष्मी कागजों की पड़ताल करती रही।

"क्यों? हम अंधे हैं? हम इन कागजों को दो-दो बार देख चुके हैं।" पंडिज्जी गर्म आवाज़ में बोले।

"बात अंधा होने या आँखों की नहीं है। चूक तो किसी से भी हो सकती है न?" लक्ष्मी ने शान्त स्वर में कहा। वह अपने काम में लगी रही।

"धरी तो हमने इन्हीं कागजों में हती।" इसी बीच अपराधबोध से ग्रस्त पंडिताइन ने मानों स्वयं से कहा।

"तो क्या चील उठा के ले गई?" पंडिज्जी और गरम हुए।

"आप थोड़ी देर चुप नहीं रह सकते?" लक्ष्मी बोली।

"आप तनिक देर चुप रहो न। देख लेन दो। इनको भी देख लेन दो।" अपोली बोले।

"सब लोग देखो। इसके बाद तुम भी देख लो। पूरा खानदान देख ले। सारे रिश्तेदारों को भी यहीं बुलवा लो। वे भी देख लें। बाप को तो एकदम चूतिया मान लिया है न? हमें तो कागज की पहिचान ही नहीं है। हम तो नालायक हैं।" पंडिज्जी उत्तेजित होकर किनारे धरी कुर्सी पर बैठ गए। दोनों हथेलियों में अपना माथा पकड़ कर आँखें मींच लीं।

अब दृश्य कुछ यूँ बना :

बक्सा।

ज़मीन पर बिखरा हुआ बक्से का सामान। वहीं पर बैठी हुई पंडिताइन। पलंग की पाटी से पाँव लटकाए बैठे अपोली। कुर्सी पर बैठे हुए पंडिज्जी, जो बीच-बीच में आँखें खोलकर लक्ष्मी को देख रहे हैं और बाकी टाइम अपने माथे पर हाथ धर के न जाने किस तरफ़ देखते हुए क्या सोच रहे हैं। अचानक ही लक्ष्मी कागजों के ढेर से एक कागज निकालकर उसकी पड़ताल करने लगी।

पंडिज्जी ने कागज को दूर से ही पहिचान लिया।

"यार, अब तुम जे बीमा के कागजन को इतें-उतें न कर देना। बीमा के कागजों में तुम क्या ढूँढ़ रही हो? इस बंडल में बस बीमा के कागज..."।

"तो सब देख-दाख के वो वापस भी तो रखे दे रही है न?" अपोली ने कहा।

"अरे, अगर हमारे जे बीमा के कागज कहीं हिरा गए तो तुमई लोग बाद में रोते फिरोगे।"

"कैसे?"

"वो ऐसे कि कल को अगर हम मर-मरा गए तो फिर जेई कागज तुम्हारे काम आने हैं।"

"आप न मरोगे।" अपोली ने हँसकर कहा।

"अरे, भौत दुश्मन हैं हमारे। कौन कब मार दे, पता चलता है क्या?" पंडिज्जी ने गरम आवाज में कहा।

"अरे, आप तबसे काहे इत्ता चिड़चिड़ा रहे हो?" अपोली भी गर्म हुए।

"इनका यही है। जरा-सा कुछ हो, चिल्लाने लगते हैं।" लक्ष्मी ने कहा।

"हम सिरीं हो गए हैं न, इसलिए।" पंडिज्जी ने स्वयं को पागल घोषित करते हुए कहा।

"सिरीं हों आपके दुश्मन।" पंडिताइन ने कहा।

"अम्मा, तुम तो चुप ही रहो। हमें एक बार चैन से देख तो लेने दो सब।" लक्ष्मी ने एक नई फाइल उठाते हुए कहा।

थोड़ी देर शान्ति रही।

"वैसे, कैसी फाइल थी? कुछ याद है?" अपोली ने पंडिज्जी से पूछा।

अपोली पलंग पर आराम से पसरे हुए हैं। पंडिज्जी और चिढ़ गए। गुर्राए, "तुम्हें नहीं पता, कैसी होती है? रजिस्ट्री देखी नहीं कभी? क्यों? जैसी रजिस्ट्री होती है, वैसी थी।"

"फिर तो वो स्टाम्प पेपरों पर होगी?" अपोली पूछने लगे।

पंडिज्जी अपोली को घूरकर रह गए।

"मदकची जैसे पड़े हो न? वैसे ही पड़े रहो। चूतियाई के सवाल तो न पूछो।" पंडिज्जी ने चिढ़कर कहा।

"क्यों?"

"इत्ती ही चिन्ता है तो फिर नीचे उतर के तुम भी ढूँढ़ो न?"

"अब पूरा खानदान तो इस काम में लग नहीं जाएगा। लक्ष्मी देख ही रही है। अम्मा देख चुकी हैं। आप भी देख चुके," कहकर अपोली पलंग पर और भी फैल गए।

"हमें लगा कि आपमें शायद कोई दिव्य दृष्टि हो।" पंडिज्जी ने कटाक्ष करते हुए कहा।

"वो तो जिसमें है, वह देख ही चुका है।" अपोली ने पलटकर पंडिज्जी पर कटाक्ष किया।

पंडिज्जी भुनभुनाते रहे।

लक्ष्मी सारे कागजात सिलसिलेवार ढंग से देख रही हैं। ढंग से देख पंडिताइन अपराधी बनी पास में बैठी हुई हैं।

"रजिस्ट्री किस रंग की फाइल में धरी थी? अरे, कुछ तो बता देते?" अपोली ने लेटे-लेटे कहा।

पंडिज्जी अब एकदम ही उखड़ गए।

"यार, साल भर पहले दी थी कि रख लो। हमें कैसे याद होगा, बताओ?... लिफाफा कित्ता बड़ा था?... फाइल का रंग क्या था?... जे सब चूतिया टाइप प्रश्न क्यों कर रहे हो? अगला प्रश्न तुम अब जे पूछोगे कि दो साल पहले हमने कौन-सी चड्डी पहन रखी थी?"

अपोली पलंग के किनारे खिसक आए।

"आप इत्ता टेंशन न लो। जब अम्मा ने इसी बक्से में धरी थी तो इसी में मिल भी जाएगी।" अपोली ने कहा।

"आप लोग अगर फालतू डिस्टर्ब न करेंगे तो जरूर मिल जाएगी।" लक्ष्मी ने कहा।

"और जो न मिले तो इन महारानी से जे जरूर पूछ लेना कि कल जज साहब की इजलास में हम क्या पेश करें?" पंडिज्जी ने फिर वही बात कही।

"जज आपको खा न जाएगा।" अपोली ने कहा।

"और जो खा ही जाए तो?"

"क्यों? क्या कर लेगा वो? फाँसी पे चढ़ा देगा क्या?"

"जज है भैया। चढ़ा ही दे, तो?"

"उसके बाप का राज है क्या?"

"उसके बाप का हो न हो पर तुम्हारे बाप का राज नहीं है जे तो पक्का है।"

"किसी के बाप का राज नहीं है। इत्ता कानून तो हम भी जानते हैं।"

"कभी गए भी हो अदालत?"

"हम जाएँगे भी नहीं। ये सब आपके शौक हैं।"

"अच्छा! कोई केस फँस ही जाए तो आप क्या करेंगे?"

"टेंटुआ दबा देंगे।"

"किसका दबा दोगे?"

"जो भी हमें अदालत में खींचेगा उसी का।"

"एक फौजदारी केस से अभी मन नहीं भरा है तुम्हारा? पता भी है, मौलाना आउट ऑफ कोर्ट सेटलमेंट के एक लाख रुपए माँग रहा है?"

"अच्छा? हम कल ही ससाले की चिंची तोड़ देते हैं।"

"आखिर, ठानी क्या है तुमने? जब तक एक दिन दरोगाजी तुम्हारी गांड़ पे लात न मारें, मानोगे नहीं क्या?"

"जवान लड़की के सामने तो ऐसी गंदी भाषा न बोलो।" पंडिताइन बोलीं।

"अरे, तुम कहो तो हम इन बच्चों के सामने भजन गाबे को बैठ जाएँ? पर जरा अपने सपूत की बातें भी तो सुनो।" पंडिज्जी बोले।

"सपूत तो हम आपके भी हैं।"

"जेई तो रोना है।"

"गलती तो कर चुके हो। अब उसके लिए रोने से तुम्हारी जे गलती तो सुधरेगी नहीं।" अपोली ने मुस्कराकर कहा।

कि इतने में लक्ष्मी को वह रजिस्ट्री मिल गई।

रजिस्ट्री को झंडे की तरह हिलाते हुए उसने पूछा, "यही है न?"

पंडिज्जी ने झपट्टा मारकर रजिस्ट्री उसके हाथ से ले ली। पंडिताइन की आँखें भर आईं। मिल जाने की खुशी के आँसू थे कि पंडिज्जी के व्यवहार से आहत होने के आँसू, पता नहीं चला। पंडिज्जी रजिस्ट्री को उलटते-पलटते रहे। अपोली भी पलंग से कूदकर उनके पास खड़े हो गए।

"जेई है न?" अपोली ने पूछा।

"हाँ, है तो जेई।"

"फिर?"

"फिर क्या?"

"आप तो ऐसा हल्ला मचा रहे थे?"

"तो तुमने ढूँढ़ी है क्या?"

"चलो, हमने नहीं, तो क्या आपने ढूँढ़ी? जेई सारे कागज तो आप पहले भी देख चुके थे न? लक्ष्मी ने उसी में से निकाल के दे दी कि नहीं?" अपोली ने कहा।

"तुम्हें तो बस मौका चाहिए।"

इसी बीच पंडिताइन वापस सारा सामान करीने से बक्से में वापस रख रही हैं। सारी बहस से असंपृक्त।

लक्ष्मी भी खड़ी हो गई है।

"जरा हमें भी दिखाइए।" अपोली ने पंडिज्जी की तरफ हाथ बढ़ाया।

पंडिज्जी ने रजिस्ट्री पीछे खींच ली, "क्यों?"

"हम देख लेंगे तो घिस जाएगी क्या?"

अपोली ने रजिस्ट्री उनके हाथ से झपट ली।

"अरे फाड़ न देना।" पंडिज्जी चिल्लाए।

लक्ष्मी उठकर पास आ गई थी।

अपोली रजिस्ट्री की पड़ताल कर रहे हैं।

पंडिज्जी असहज खड़े हैं।

लक्ष्मी अब ठीक पंडिज्जी के समक्ष आकर खड़ी हो गई है।

"आपका कागज मिल गया न?" लक्ष्मी ने कहा।

पंडिज्जी चुप रहे।

"आगे से अपने सारे कागज आप ही सँभालकर रखिए न ! अम्मा ये सब क्यों रखें?... और कैसे रखें?" लक्ष्मी ने कहा।

"इत्ते साल से रख ही रही हैं।" पंडिज्जी ने खिसियाकर कहा।

"इत्ते साल रख लिया न? अब भौत हो गया। आगे से इनका हिसाब अम्मा नहीं रखेंगी।"

"जे इनने कहा?"

"ये कहतीं तो फिर बात ही क्या थी।"

"तो क्या तुम इनकी वकील हो?"

"आप जो समझ लें, मैं तो बता रही हूँ। इनसे अब ये सब नहीं हो पाता है।"

"इनसे होता क्या है?"

"इत्ते साल में आप यह भी नहीं समझ सके-इसे हम क्या कहें?" कहकर लक्ष्मी भीतर वाले कमरे तरफ निकल गई।

"देखा?" पंडिज्जी ने पंडिताइन की तरफ मुखातिब होकर कहा।

"अम्मा उसे कुछ न कहेंगी।" अपोली ने माँ की तरफ देखते हुए शिकायती स्वर में कहा।

"ऐसे होते हैं मोंड़ियन के लक्षन? अपने बाप से ऐसे मूँ लड़ाती है?" पंडिज्जी बड़बड़ा रहे हैं।

पंडिताइन चुपचाप बक्से में सामान वापस रखती जा रही हैं।

"मोंड़ी को बिगाड़ के रख दिया है।" पंडिज्जी बोले।

"तो आप ही अभी उससे कुछ कहते न।" अपोली ने पिता को देखा।

"यह सब लड़की को फालतू में पढ़ाबे-लिखाबे का नतीजा है, और कुछ नहीं।" पंडिज्जी बड़बड़ाते रहे।

इतनी देर बाद अब जाकर पंडिताइन ने कुछ कहा।

"पढ़ने-लिखने से कोई बिगाड़ता है क्या? आप तो खुद इत्ता बड़ा स्कूल चलाते हैं। कम से कम आप तो ऐसा न बोलें।" पंडिताइन ने कहा।

"वो कोई स्कूल नहीं है, वो हमारा धंधा है..." पंडिज्जी ने चिढ़कर कहा।

"फिर भी..."

"...तुम तो बस अपना मूँ बन्द रख के चुपचाप बक्सा जमाओ। चुप रहो। तुम चुप में ही अच्छी लगती हो..." पंडिज्जी ने कहा।

अपोली ऐसे खुलकर हँसे मानो बाप ने कोई तगड़ा मज़ाक कर डाला हो।

पंडिताइन ने दोनों को थकी हुई नज़रों से देखा और वापस बक्सा जमाने लगीं।

पंडिताइन की आँखों में क्या था- शिकायत, रोष, खालीपन? पता नहीं। हाँ, वहाँ पानी की एक पतली परत अवश्य थी जिसमें कदाचित कोई आँसू आना है जो बनते-बनते रह गया था। बने भी तो क्या होना है? शायद यह कड़वा सच जानता है वह आँसू।om,

पंडिज्जी सोने की तैयारी में धोती-कुर्ता उतारने लगे। वे पटरेदार लम्बी चट्टी और पंडिताइन द्वारा सिली, जेबदार मिरजाईनुमा बनियान में सोते हैं। यही है उनकी नाइट ड्रेस।

पंडिज्जी ने रजिस्ट्री पलंग के ऊपर बने ताक में रख दी।

"कल हम कालपी जाएँगे।" पंडिज्जी ने अपोली से कहा।

"खूब जाइए। आपका जाना तो भौत जरूरी है। आप न गए तो कालपी के वकील भूखे मर जाएँगे।" अपोली ने कहा।

"वहाँ पूरा दिन लग जाना है, जज्जी में।" पंडिज्जी अपनी कहते रहे।

"खूब लगाइए।"

"यार, बीच में न टोको। पूरी बात सुन लो। कल हम यहाँ नहीं हैं तो जरा स्कूल का चक्कर मार लेना। परीक्षा आने वाली है। मास्टर्स को देख आना।"

"उनको क्या देखना? मास्टर, मास्टर ही रहेंगे। परीक्षा हो, न हो, बे उच्चे ही मास्टर रहेंगे- न ज्यादा, न कम।"

"मतलब?"

"मतलब जे कि ये लोग जब भी दिखेंगे, पालीटिक्स चलाते ही मिलेंगे स्साले..." अपोली ने वितृष्णा भाव से कहा।

"गुरुओं को गाली तो न दो।"

"चलो, नहीं देते। वैसे, अभी हमने कौन-सी गाली दे दी?"

"तुमने 'स्साले' नहीं बोला अभी?"

'स्साले' कोई गाली नहीं होती है। और मास्टर्स पर यह जँचती भी नहीं है। आपके मास्टर तो ऐसे हैं कि इन्हें माँ-भैन की गाली से नीचे कुछ भी कहना इनको इज्जत देना ही कहाएगा।" अपोली के स्वर में स्कूल के मास्टर्स के प्रति अतिशय निरादर का भाव उजागर था।

पंडिज्जी को आपत्ति हुई।

"बेटा, स्कूल तो चलाना है कि नहीं? अब अब हमें चलाना तो ऐसे ही मास्टर्स से पड़ेगा। हमें इस कॉलेज के लिए कोई सर्वपल्ली राधाकृष्णनजी तो मिल न जाएँगे। अच्छे पढ़ेया-लिखेया तो डॉक्टर-इंजीनियर बन जाते हैं, बाकी के अफसरी में निकल जाते हैं या फिर बड़ी-बड़ी नौकरियों में। बाकी के कुछ होशियार डिग्री कॉलेजों में लग जाते हैं। तो फिर बचा कौन?... तलछट। नीचे का कचरा। हमें तो इसी में से लेना है। हमें तो जेई मिलेगा न? अब तुम यदि तलछट में शुद्ध पानी को तलाशने बैठ जाओ तो खुद चूतिया कहाओगे। इन मास्टर्स से बस उच्ची ही उम्मीद करो जिते जे हैं। समझे?"

"पर जे तो ठीक बात नहीं।"

"तो हमने कब कहा कि ठीक है? ठीक का कोई ठेका ले रखा है हमने?" पंडिज्जी बोले।

अपोली जानते हैं कि पंडिज्जी एकदम ठीक कह रहे हैं परन्तु इस तरह आसानी से बाप से हार मान जाएँगे तो वे अपनी पहिचान ही खो बैठेंगे। उन्होंने बहस को आगे बढ़ाया।

"नकल कराने का मतलब जे नहीं कि मास्टर पढ़ाएँ ही नहीं?"

"पढ़ाते तो हैं।"

"कहाँ पढ़ाते हैं? आपके मास्टर या तो मैदान में खड़े होकर मोबाइल चलाते दिखते हैं या फिर यहाँ-वहाँ बैठे मास्टरनियों और लड़कियों पर नजर धरे रहते हैं। सबका कोई न कोई लफड़ा किसी न किसी से..."

"माँ के सामने ऐसी फालतू बातें करते तुम्हें शर्म नहीं आती?" पंडिज्जी गर्म हुए।

पंडिताइन ने इसी बीच बक्सा वापस जमा दिया है। वे उठने के उपक्रम में हैं।

"इसमें हम क्या करें? जब भी आपके कॉलेज की बात करो, शर्म करने लायक कोई न कोई चीज निकल ही आती है।" हँसते हुए अपोली भी उठ गए।

तभी पंडिताइन ने अपोली को रोका।

"आज शाम को सुमन की अम्मा आई थी।" पंडिताइन ने कहा।।"

"कौन सुमन?" अपोली अनजान बन गए।

पंडिताइन ने मानो सुना ही नहीं। अन्दर जाते-जाते बोलती सुना हा नहा। अन्दर जात-जात चली गई :

"रो रही थी। कह रही थी कि अपोली को समझा दो। पूरे कोटरा में तुम्हारे कारण उसकी मोंड़ी की बदनामी हो रही है।"

पंडिताइन अपनी बात कहकर अन्दर चली गई।

"जे वोई लड़की है न?" पंडिज्जी ने कड़वा-सा मुँह बनाते हुए पूछा।

"कौन-सी?" अपोली ने भोला बनते हुए पूछा।

"सुरेले की मारपीट वाले केस में तुम्हारा नाम भी उड़ रहा है।" पंडिज्जी के स्वर में भरपूर भर्त्सना है।

"कुछ नहीं। वो मोंड़ी ही बदमाश है।"

"और तुम?"

"हम? हम क्या? बोलिए? बोलिए न?"

"तुम्हारे इन्हीं लक्षणों के कारण तो बहू मायके जा के बैठ गई है।"

"बैठी नहीं है। हम बिठा के आए हैं।"

"एकई बात है।"

"हमें कोई अब जे न सिखाए कि हमें लाइफ में क्या करना है, क्या नहीं करना है।"

"सिखा नहीं रये, बता रहे हैं। तुमने अगर जे सब न छोड़ा तो तुमाई जे शादी नहीं चलने वाली।"

"सब चलेगी। हमें पता है।"

"अच्छा! कैसे पता है?"

"देखा है न। रोज देखते हैं। चल तो रही है। सबकी चल रही है। हमारी भी चलेगी।"

अपोली के उत्तर तथा उत्तर देने के लहजे से स्पष्ट था कि उनका इशारा किस तरफ है।

पंडिज्जी अब तक पलंग पर चढ़ चुके थे और पतली रजाई पाँवों पर खींचकर लेटने ही वाले थे। अपोली का इशारा उन्हें इतना नागवार गुजरा कि लेट-लेटे बिफर गए।

"इतें से अपना मुँ तो काला करो तुम। अभी।... तुरंत। घोड़ा घाई हो गए पर इत्ती तमीज भी नहीं आई है कि बाप से कैसे बात करनी होती है भैंचो।" पंडिज्जी पलंग पर बैठे-बैठे बड़बड़ाने लगे।

अपोली ने कुछ नहीं कहा। चुपचाप कमरे से निकल गए।

पंडिज्जी अभी तक गुस्से में थरथरा रहे हैं। उन्होंने लेटे-लेटे ही तेज़ चिल्लाकर पंडिताइन को आवाज़ दी, “सुनती हो? अब जे लाइट स्साली कौन बन्द करेगा? तुम्हें मालूम है न कि हमें लाइट में नींद नहीं आती।”

पंडिज्जी सिर पर रजाई खींचकर लेट गए। पंडिताइन आती होंगी। लाइट बन्द करने का काम उनका है।

मान लो आप पिटे ही नहीं

कुशवाहाजी पिट गए। वही, अपने नन्हे मास्साब।

अच्छा वे? उन्हें तो पिटना ही था। लम्बे समय से उनके पिटने के योग बन रहे थे। अरे, इधर तो आप पंडिज्जी से भिड़ोगे और उधर छात्र लोगों को भी दबकाओगे तो देर-सबेर आपके साथ यह सब तो होगा ही। इनकी ठुकाई के आसार रोज बन रहे थे पर, बस, होते-होते रह जाती थी। ठीक-सा कोई बहाना नहीं बन पा रहा था। मानो, बारिश के आसार बनें पर वह होते-होते रह जाए। कम दबाव का क्षेत्र नहीं बन पा रहा था गो कि पंडिज्जी के धैर्य के समंदर पर अपोली के गुस्से की गर्म हवाओं द्वारा आशंकाओं के बादल तो रोज बन रहे थे। स्कूल के आसमान पर पिटाई के बादल रोज बनते, पर उड़ जाते। चेतावनियाँ क्षितिज पर गरज के साथ चमकतीं परन्तु कुशवाहाजी को मौसम का कोई ज्ञान ही नहीं था। पंडिज्जी सबसे कहते फिरते कि अपने नन्हे मास्साब इत्ती-सी बात क्यों नहीं समझते कि मास्टर की पिटाई होते देर नहीं लगती है।

पंडिज्जी चाहते थे कि कोई तो इनको दुनियादारी समझाए! बताइए, महाराज हमारे स्कूल की हर हगती, मृतती बात जिला शिक्षाधिकारी तक पहुँचाते रहते हैं, हमारे हिसाब-किताब पर प्रश्न उठाते फिरते हैं और अपनी पिचकी हुई छाती ठोककर कहते हैं कि विपिन बिहारी कॉलेज की नकल को बन्द करा के ही दम लेंगे। श्रीमान यहाँ, वहाँ सबसे कहते फिरते हैं कि अगर स्कूल के बजट का निष्पक्ष आडिट किया जाए तो आधी मैनेजमेंट कमेटी जेल के तसले में दाल-भात खाती मिलेगी। हैं दो पसली के परन्तु हिम्मत जे कि छात्रों पर फालतू रुआब तक गाँठते फिरते हैं। भैया, लौंडे तो आजकल अपने बाप का रुआब मानने को राजी नहीं, तुम्हारा मानेंगे? कब तक वे इस बात का लिहाज करेंगे कि तुम बड़ी ईमानदारी और मेहनत से पढ़ाते हो? चलो, तुम्हारी पढ़ाई को तो छात्र बर्दाश्त कर भी लें पर तुम तो छात्रों का चरित्र सुधारने का कौल टाइप उठाए घूमते हो? कभी मौड़ा-मौड़ी एक साथ दिख जाए या कोई मौड़ा, मौड़ियन को देख के इशारेबाजी कर रहा है तो जे महाराज तुरन्त उनको शिक्षा देबे बैठ जाते हैं कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र से सीखा जाए। दूसरे मास्टर लोग कित्ता पढ़ाते हैं, कित्ता अपोली के कमरे में बैठे रहते हैं-इसका हिसाब भी नन्हे मास्साब दुनिया को बताते फिरते हैं। अब आप ही बताएँ, कहीं इस तरह नौकरी होती है क्या?

ऐसा टेढ़ा मास्टर कब पिट जाए, उसे कौन पीट दे, कोई बता सकता है भला? पंडिज्जी पूरे कोटरा को बताते रहते हैं कि वो तो हमारे लिहाज और मुरव्वत में छात्र इनकी ठुकाई नहीं करते, और हम भी सबको मात्र इसलिए रोके रहते हैं कि फालतू में कॉलेज की इज्जत खराब होगी वरना यह आदमी है स्साला लात खाने लायक ही। “पर हम भी कब तलक बचा पाएँगे ऐसे झकलट को...” पंडिज्जी चिन्ता प्रकट करते हैं। इधर कुशवाहाजी जानते हैं कि पंडिज्जी का बस चले तो उन्हें आज लात मारकर स्कूल से बाहर कर दें। वो तो जिला शिक्षाधिकारी नया आ गया है और कुशवाहाजी की कही बात को भी थोड़ा सुनता रहता है वरना पिछले साहब के रहते तो पंडिज्जी ने उन्हें डिसमिस कराने की पूरी सेटिंग जमा ही ली थी।

पर, कल यही नन्हे मास्साब उर्फ कुशवाहा जी फाइनली पिट गए।

पिटने के बाद कुशवाहाजी ने पहला काम शिक्षाधिकारी को रुआँसे स्वर में फोन करने का किया। उनको बताया कि पंडिज्जी ने पिटवा दिया है सर। उधर से यही पूछा गया कि पिटाई कहाँ हुई और कब? यह जानकर कि वे स्कूल खत्म होने के बाद, स्कूल के बाहर, सड़क पर पिटे हैं, तो उनको यह बताया गया कि यदि कभी कोई मास्टर

शिक्षाधिकारी के क्षेत्र से बाहर जाकर पिटे तो फिर यह स्कूल का नहीं, सीधे पुलिस का केस हो जाता है। हाँ, अगर वे स्कूल में पिटते तो पंडिजी से स्पष्टीकरण अवश्य लिया जा सकता था। ... परन्तु पिटवाया तो उन्होंने ही है? तो आप जाकर पुलिस में उनके खिलाफ नामजद रिपोर्ट दर्ज कराइए न? आपका केस अब स्कूल का न होकर कोटरा की कानून व्यवस्था का हो चुका है।

पंडिजी भी जानते थे कि कुशवाहा पिटा है तो अब यह कहाँ-कहाँ जाकर रो सकता है।

पंडिजी ने तुरन्त फोन करके शिक्षाधिकारी को इनकी पिटाई का दूसरा पक्ष भी बतलाया। ... असली किस्सा ये है साहब कि स्कूल खत्म होने के बाद छात्र, छात्राएँ अपने-अपने घरों को लौट रहे थे। छात्रों ने एकाध लड़की पर फब्की कसी जो वहाँ से गुजर रहे कुशवाहाजी ने सुन ली। बस, ये बमक पड़े। ... आप खुद जानते हैं सर, जवान लौंडे हैं। छेड़छाड़ करते रहते हैं। वैसे, लड़कों को तो हम भी समझाते हैं, पर टैक्टफुली ! हम भी छात्रों से यही कहते हैं कि सब स्त्रियों को अपनी माँ-बहिन मानो। हम यह भी जानते हैं कि कोई स्साला ऐसा क्यों मानेगा?... जी, वोई तो। जवानी फूट रही है। बहेगी ही। ... पर कुशवाहाजी वहीं सड़क पर छात्रों को रोककर बड़ी-बड़ी नसीहतें देने लगे। जनाब समझते ही नहीं कि जमाना बड़ा खराब आ गया है। अरे, आजकल कोई बाप भी अपने लौंडे को खुलकर इस तरह नहीं फटकारता है और जे उनके बीच घुसकर उन्हीं को फटकारने लगे।... सर, कहने को तो मात्र दो मिनट पहले ही अपने प्रधानाचार्य भी वहीं से निकलें थे। पर वे टैक्टफुल हैं। सब देख-सुनकर भी सिर झुकाए चुपचाप वहाँ से निकल लिए। चाहते तो वे भी रुक जाते। पर वे जानते हैं कि उनका काम स्कूल तक का है। इधर अपने कुशवाहाजी रुक गए। गुस्सा होने लगे। लौंडों को चरित्र-फरित्र की बातें समझाने लगे। बोलने लगे कि यह गौतम, गाँधी और भगतसिंह का देश है। और भी ऐसी ही दूसरी वाहियात बातें! वहाँ से आने-जाने वाले और वहाँ खड़े गाँव के लोग भी यह सब देख रहे थे। लौंडों को लगा कि मास्टर, फालतू में उनकी बेइज्जती कर रहा है। ... आप तो जानते हैं सर आजकल के युवा वर्ग को। गर्म खून वाले लड़के हैं। कब तक इनकी सुनते? उठा के वहीं ठोक दिया। स्कूल के सामने अपनी जो सड़क है न, उसके परे एक गड्ढे में कीचड़ भरा रहता है-उसी में धकेल भी दिया।

शिक्षाधिकारी ने पंडिजी की पूरी बात सुनकर बस यही कहा कि कुशवाहाजी तो कुछ और ही किस्सा बयान कर रहे हैं कि आपने ही पहले से इशारा कर रखा था छात्रों को?... पंडिजी हँसने लगे। बोले कि हमने पहले कभी कुशवाहाजी को जरूर इशारा किया था कि जमाने की ऊँच-नीच देख के चला करें; खुद को किसी आश्रम के ऋषि टाइप न समझें क्योंकि वैसे शिष्य अब केवल किस्से-कहानियों में ही मिलते हैं। ... जहाँ तक छात्रों को इशारा करने की बात है तो उन्हें न तो हमारे, न किसी और के किसी भी इशारे की जरूरत है। दसवीं-ग्यारहवीं का छात्र आजकल पूरा खुदमुख्तार होता है साहब। बाकी तो चूतियाई की बातें करने से कोई किसी को रोक नहीं सकता-कुशवाहाजी को तो खासतौर पर। साहब भी हँसने लगे। बोले, "तभी तो हमने उनसे यही कहा कि इस सबकी शिकायत इधर हमसे न करके कोटरा के थाने में जाकर कीजिए। फौजदारी मामलों की रिपोर्ट पुलिस ही दर्ज करती है।"

साहब ने आगे यह भी कहा कि कुशवाहाजी अब तक थाने पहुँच ही गए होंगे।... "थाने में सब दूध का दूध और पानी का पानी हो जाएगा पंडिजी।" साहब ने कहा। पंडिजी हँसे। बोले, "थाने में दूध और पानी को अलग करने वाली जो मथनी लगी रहती है, उसका तो आपको भी पता ही है साहब!..." साहब भी यह बात सुनकर उस तरफ मुस्कुराए ही होंगे। बहरहाल, फोन कट गया था फिर।

उधर अभी दरोगाजी के समक्ष कीचड़ में सने कुशवाहा जी खड़े थे।

"यार, आप जरा-सा इन लौंडों को कंट्रोल नहीं कर पाते हो? फिर आप मास्टर बने ही क्यों? मास्टर का तो काम ही जे है कि वह मोंडा, मोंडियन को टाइट रखे। होना तो जे चाहिए था कि आपको दूर से आता देख लें तो लौंडे खुद ही इधर-उधर तितर-बितर हो जाएँ। बताइए, क्या जे बात एक मास्टर को सुहाती है कि आप यहाँ खड़े रो रहे हैं कि हमें लौंडों ने पीट दिया?" दरोगाजी कुशवाहा जी को फटकार रहे हैं।

नाली की भीनी-भीनी गंध में बौराए कुशवाहाजी का मन तो हुआ कि थानेदार को कुछ ऐसा-वैसा, मास्टरों टाइप उत्तर दें पर चुप रह गए। थानेदार से मुँहजोरी करने का अर्थ तो वे समझते हैं। पर वे एकदम चुप भी नहीं रहे।

"हमारी रिपोर्ट लिख लें, बस। हम इत्ता चाहते हैं।" वे गम्भीर स्वर में बोले।

"अब यह थाना आपके चाहने से चलेगा क्या?" दरोगा की आँखें सुर्ख लाल हैं इस बात पर पहली बार ध्यान गया मास्साब का।

"हम वो नहीं कह रहे। हम कह रहे थे कि हमारी रिपोर्ट जरूर लिख ली जाए, बस।" कुशवाहाजी अपनी निस्तेज आँखें झुकाकर बोले।

"ऐसी मारपीट की कोई रिपोर्ट नहीं लिखी जाती मास्साब। भौत लगे तो आप भी कल स्कूल में उन्हें पकड़ के ठोंक देना, बस।" थानेदार ने समझाया।

"आजकल स्कूलों में छात्रों को पीटना वर्जित है।" कुशवाहाजी ने अपनी संवैधानिक पोजीशन साफ की।

"यार वर्जित तो मास्टर को पीटना भी है। है कि नहीं? पर उन्होंने आपको पीट दिया न?" थानेदार ने पूछा।

"नहीं साहब, आप तो मेरी एफआईआर दर्ज करें।"

"यार, अजीब जिद्दी आदमी हैं आप। अरे, हमने आपको बता तो दिया? अच्छा, आप खुद बतलाइए, पुलिस स्कूली लौंडों के पीछे दौड़े कि चोर-डकैतों के पीछे जाए? हम यहाँ बच्चों में उलझेंगे तो रतौली में पड़ी डकैतों को क्या आप सुलझाएंगे? बताइए? जाइए, खुद निबटिए। खुद देखिए।"

"हम कैसे देखें?"

"अब यह भी हम बताएँगे आपको? लड़कों पर कंट्रोल करना सीखिए। और क्या।"

"वही तो हम कर रहे थे।"

"स्कूल के बाहर आप कौन-से कंट्रोल में लगे हुए थे?"

"लड़के वहाँ खड़े होकर भद्दे कमेंट कर रहे थे।"

"किस पर?"

"लड़कियों पर।"

"तो? इसमें क्या नया है? लड़के तो यह सब करते रहते हैं।"

"पर यह ठीक नहीं।"

"तो ठीक कौन कह रहा है? पर जहाँ-जहाँ कुछ ठीक न हो रहा हो, आप उसमें कूद जाओगे क्या?"

कुशवाहा जी चुप रहे।

"...अच्छा वे तो भद्दे कमेंट कर रहे थे। ... आपने क्या किया?"

"मैंने उन्हें रोकने की कोशिश की।"

"क्यों की?...इस उम्र के लड़कों को लौडियाबाजी से रोकने की कोशिश करोगे तो पिटोगे ही। आप उनसे क्यों भिड़े? ऐसी स्थिति में आदमी पहले अपनी सेफ्टी देखता है। इत्ते लौडों के बीच आप काहे बहादुरी..."

"पर अध्यापक होने के नाते मेरा यह कर्तव्य बनता था कि..."

"मास्साब, अब आप ये कर्तव्य-फर्तव्य की बातें ले के न बैठ जाना। जमाना बड़ा खराब चल रहा है। अंड-बंड किस्म के कर्तव्य निभाने का जमाना नहीं रह गया है मास्साब। कर्तव्य की बातें, बस, भाषणों में अच्छी लगती हैं। स्कूल में भाषण हो तब तो आप जे सब खूब बोलो। पर थाने में कर्तव्य मत झाड़ो। यहाँ की इमारत बड़ी पुरानी है। यह ज्यादा 'कर्तव्य' बर्दाश्त नहीं कर पाएगी; धसक जाएगी। कर्तव्य शब्द से निकली ध्वनि तरंगें थाने की इमारत के लिए मुफीद नहीं मानी जातीं।" थानेदार ने चेताया।

कुशवाहाजी समझ ही नहीं पा रहे हैं कि इन बातों के जवाब में वे क्या कहें?

एक शिक्षक के रूप में आदर्श का पाठ सीखे कुशवाहाजी का जीवन क्लासरूम, पढ़ाई, बच्चों को बढ़िया पढ़ाना, उनके चरित्र निर्माण की जिम्मेदारी को आत्मा तक महसूस करते हुए ही बीता है। थाने के सामने से वे पहले भी गुजरे हैं परन्तु हमेशा ही पुलिस को कानून का रक्षक मानते हुए उन्होंने अब तक का जीवन बिताया है। इसीलिए, किसी थानेदार का ऐसा गैरजिम्मेदार व्यवहार अभी उन्हें चकित तथा व्यथित कर रहा है।

"जी?" वे हैरान होकर बोले।

"जी। हम पूछते हैं, आप इस चक्कर में पड़े ही क्यों? बताइए न? जिनको छेड़ा जा रहा था क्या वे लड़कियाँ थाने आई या उन्होंने आपसे कोई शिकायत दर्ज कराई? नहीं कराई न? इसका मतलब समझे न आप? कि उनके लिए ये सब एक आम बात है। पर आप? बस, मूँ उठाया और कूद पड़े बीच में। अरे, और टीचर भी तो निकले होंगे वहाँ से? वे वहाँ क्यों नहीं रुके?"

"ये सब लोग डरते हैं सर।"

"और आप कोई वीर राणा प्रताप के वंशज हैं? क्यों?"

"जी, वो बात नहीं है पर..."

"...छोड़िए न मास्साब, भूल जाइए सब। इस एफआईआर के चक्कर में न ही पड़ें। घर जाएँ। नहा-धो लें। बदन पर भौत कीचड़ लगा है।"

"आप रिपोर्ट लिख..."

"...ये रिपोर्ट लिखवाकर अब और कीचड़ न उछलवाइए।"

"असल में यह काम लड़कों का नहीं है सर।"

"पर अभी तो आप यही कह रहे थे?"

"पीटा लड़कों ने है, पर मुझे पिटवाया पंडिज्जी ने है।"

"कौन पंडिज्जी?" दरोगाजी अनजान बन गए।

"दीक्षितजी।"

"कौन? आपके कॉलेज के मालिक?"

“हाँ, वे ही।”

“वे आपको क्यों पिटवाँगे?”

“सब कुछ हुआ तो उनके ही इशारे पर है।”

“वे क्यों किसी को इशारा करेंगे?”

“क्योंकि हम स्कूल में होने वाली नकल की खिलाफत करते हैं।”

“क्यों करते हैं?”

“जी?”

“हम पूछ रहे हैं कि नकल से क्या एतराज है आपको मास्साब? बताइए न?”

“जी...!!”

“जी! अरे भाई, जिस जगह भी काम करोगे, वहाँ की पालिसी का पालन करोगे कि नहीं? स्कूलों में तो नकल होती रहती है। आप कैसे एतराज कर सकते हैं? ऐसा है तो खुद अपना एक स्कूल डाल लो न। पीडिज्जी के स्कूल की तो जेई पहिचान है पूरे इलाके में। हमने खुद अपने भतीजे को सीतापुर से बुलवा के यहाँ से परीक्षा दिलाई थी। उनके स्कूल की यही रेपुटेशन है।”

“परन्तु यह तो बड़ी गलत बात है सर।”

“इसमें क्या गलत है श्रीमान्?”

“यह गैरकानूनी है।”

“यार, तुम हमको कानून समझा रहे हो? हमको? चलिए, मान लिया; सही कह रहे हैं आप। एकदम गैरकानूनी है। परन्तु एक होता है किताबी कानून, और एक होता है सड़क का कानून। और होते दोनों हैं। दोनों एक ही दुनिया में रहते भी हैं। दोनों खूब चलते भी हैं। अब, किताब क्या कहती है आपकी? यही न कि कानून की नजर में सब बराबर हैं? परन्तु सड़क का कानून हमको क्या समझाता है? यही न कि सरपंच का लौंडा कानून से ऊपर माना जाएगा? है न? कोटरा में रहना है तो सरपंच का लौंडा अलग है, यह मानना होगा।”

“सरपंच का लड़का?”

“मास्साब, तुम पता है न कि तुम्हारी ठुकाई करने वालों का लीडर कौन है? वो कोटरा के सरपंच का लौंडा है। तुम तो अभी-अभी इधर आए हो न? उससे पहले ही तुम्हारे केस की पूरी कुंडली हमारे पास आ चुकी है। चूतिया न समझिए हमें। हम थाना चला रहे हैं, कोई मजाक नहीं कर रहे।”

“सरपंच?”

“यार, बार-बार सरपंच-सरपंच काहे जप रहे हो?” “तो क्या सरपंच का बेटा यहाँ किसी को भी मार सकता है?”

“अरे, तुम्हें नहीं पता ये बात? यही पूरे देश का सच है मास्साब। पूरा देश कोटरा है, और हर तरफ सरपंचजी की संतानें हैं।”

"यह तो..."

"...यह तो क्या? एक आम नागरिक के तौर पर अपनी पोजीशन को सही-सही समझ लो मास्साब। समझदारी का कानून तो यही कहता है कि ऐसों से कभी भिड़ो ही मत। वे छेड़ रहे थे न? आप छेड़ने देते। सब लोग इसी कानून का पालन करते हैं। यह सब कानून की किताब में लिखा तो नहीं है, पर है, और असल में केवल वही है। सरपंच के लौंडे को पहिचानना मास्टर का पहला कर्तव्य है।"

"मैं अभी सरपंचजी को जाकर उनके बेटे की करतूत..."

"... महोदय, ऐसी कोई बेवकूफी कर भी न बैठना वर्ना अभी सरपंच से पिटने की रिपोर्ट भी लिखवाने आ जाओगे। घर जाओ। ... सरपंच के पास भी जाना जरूर, पर सुलह करने के लिए। आप तो उनसे सीधे माफी माँग लेना।"

"मैं सरपंच के घर जाकर माफी माँगूँ?"

"माँगनी तो चाहिए।"

"किस बात की माफी?"

"कि आप थाने में उनके बेटे की शिकायत करने पहुँच गए थे।"

"मैं थाने में शिकायत क्यों न करूँ?"

"क्यों करोगे?"

"मुझे किसी ने मारा है तो पुलिस में शिकायत तो करूँगा न?"

"चलो, तुमने शिकायत कर दी। हमने दर्ज भी कर ली। अब? कहो तो हम अभी तहकीकात भी करें? बोलो? करें? जानते हो न कि क्या होगा? वे लोग आपको एक बार और ठोंक देंगे। हम एक और रिपोर्ट लिख लेंगे। यही सब चलेगा। आप ठुकते रहेंगे। रिपोर्ट बनती रहेंगी। तुम्हारा पुलिस लगाने, मरहम-पट्टी कराने का खर्चा और बढ़ जाएगा, बस। कोई गवाह सामने नहीं आएगा। तुम खुद अपनी गवाही से पलट जाओगे। बलात्कार वाली लड़कियों तक को पलटना पड़ता है; तुम तो मामूली मार-पिट्टाई को रो रहे हो।"

"हम कभी न पलटेंगे। कुशवाहा हैं। वचन देते हैं।"

"यार, मास्साब, ये वचन-फचन न दो। यहाँ वचन दोगे भी तो किसे साक्षी मानकर देने वाले हो - डंडे को? हथकड़ी को? इन सलाखों को? इस एफआईआर रजिस्टर को?... यहाँ तो बस, ये ही पवित्र चीजें हैं। ... और क्या भेल्यू है आपके किसी भी वचन की? बताइए? ... वैसे भी, क्या भेल्यू होती है वचनों की? शादी के मंडप के नीचे वचन देता है न आदमी? वो भी, एक नहीं, पूरे सात। अग्नि को साक्षी मानकर। फिर शादी के बाद क्या होता है? सातों वचन कहाँ घुस जाते हैं?... चार दिन बाद ही गाली-गलौज, मार-कुटाई, दहेज का केस; पचासों ठनगन। ...तो मास्साब, वचन की बात तो आप यहाँ करना मत। न हम आपसे कोई वचन माँग रहे हैं, न आप देना ही। देखो, हमारी बात मानो। घर जाओ। मूँ-हाथ धो के, चार बूँद अमृतधारा की चाट लेना तो जे दर्द-फर्द भी खत्म हो जाएगा।"

कुशवाहाजी यह सब सुनते रहे। पर वे भी एक ही आदमी हैं। नहीं माने।

"आप तो हमारी रिपोर्ट लिख लें, प्लीज़।"

"हमने कहा न? मास्साब, अपने घर जाओ। ठंडे दिमाग से सोचो। सरपंच का लौंडा है। पंडिज्जी की छत्रछाया है उस पर। भूल जाओ जे सब। हमने अभी मूँ-हाथ धोने को कहा था - वो गलत कहा था; आप तो बढ़िया स्नान कर

लो। रात को रजाई ओढ़कर सो जाओगे तो सुबह तक रिपोर्ट लिखाने का जे बुखार भी उतर जाएगा। कल ऐसे ठाठ से स्कूल जाओ मानो कुछ हुआ ही न हो।"

"पर हुआ तो है।"

"यार, आपने गणित वाले मास्टर साहब का पढ़ाना सुना है कभी? वो हर बार क्या कहते हैं? कहते हैं कि मान लो राम ने श्याम को सौ रुपए उधार दिये तो फलानी ब्याज दर पर एक साल में कित्ता पैसा बना? ऐसेई पढ़ाते हैं कि नहीं? गणित में भौत सारा मान कर चलना पड़ता है। जीवन का गणित भी ऐसा ही कुछ है। यहाँ भी भौत-सा मानना पड़ता है। तो आप भी मान लो कि कुछ हुआ ही नहीं। इससे मन को शान्ति मिलेगी और आप दुनिया की गणित में अच्छे नम्बरों से पास होते रहोगे।"

"मेरी बड़ी बेइज्जती हुई है थानेदार साहब।"

"बेइज्जती? इसमें आपकी कौन-सी बेइज्जती हो गई मास्साब? अरे, असली बेइज्जती अभी आपने देखी ही कहाँ है? वैसे भी आजकल मास्टर को इज्जत पर भौत जोर नहीं देना चाहिए-जित्ती मिल जाए उसी में खुश रहें, यही समझदारी है; बल्कि जिस दिन बेइज्जती न हो, उस दिन खील-बताशे चढ़ाकर बजरंगबली को धन्यवाद दिया करें। वो दिन कब के चले गए मास्साब जब मास्टरों की बड़ी इज्जत होती थी।"

कुशवाहाजी कुछ देर तक एकदम शान्त बैठे रहे। थानेदार उनकी तरफ रुचिपूर्वक यूँ देखते रहे मानो जानते हों कि अब यह शस्त्र ज़रूर कोई मनोरंजक बात कहने वाला है। इसी बीच दो मक्खियाँ बाहर से उड़ती हुई थाने में आई और पड़ताल करने लगीं कि नाली जैसी भीनी, मनमोहक गंध कहाँ से आ रही है?

"रिपोर्ट तो हमारी लिखनी ही पड़ेगी आपको।" कुशवाहाजी ने अचानक दृढ़ता से कहा।

"क्या कहा श्रीमान् ने?" दरोगा चकित हो गया।

"हमारी शिकायत तो आपको लिखनी ही होगी।" कुशवाहा जी के चेहरे पर फालतू का नूर बरसने लगा।

दरोगाजी उनके तेवर देखकर आश्चर्यचकित रह गए।

"क्या कहा तुमने? लिखनी ही होगी? अबे, धमका किसे रहा है नन्हे मास्टर? तुझे सब लोग नन्हे मास्टर बोलते हैं न? कभी सोचा भी है कि क्यों बोलते हैं? वे तुम्हारा कद जानते हैं, इसीलिए। जब नन्हे हो तो कद के हिसाब से ही बात करो। समझे न?" दरोगा के तेवर बदल गए। पास खड़े दोनों सिपाही भी तत्परता से आगे आ गए। साहब आदेश करें तो मास्साब का समुचित इलाज किया जाए; फर्स्ट एड के तहत एकाध लम्पड़ तो लगा ही दें।

दरोगाजी मास्टर की हिम्मत देखकर पहले तो अवाक् ही रह गए थे फिर पुलिसिया भाषा में ठीक से आगे समझाया :

"देखो नन्हे मास्साब, चुपचाप अपने घर चले जाओगे तो शायद सब ठीक हो जाए। तुम्हें पता ही नहीं कि अभी तुम्हारे साथ क्या, क्या और हो सकता है? बहुत कूदा-फाँदी करी तो हम बता दें कि दूसरी पार्टी वाले भी तुम पर एफआईआर कराने आए थे। उनकी शिकायत है कि तुम खुद लड़कियों को छेड़ने के इरादे से वहाँ पहुँचे थे और लड़कियों की रक्षा करते हुए ही तुम्हें पीटा गया है। फिर तो तुम मुजरिम, और तुम्हारी पिटाई एकदम जायज।"

"यह गलत है।"

"होगा गलत, पर गवाह यही सब कहेंगे, तो फिर? हमारा कानून ये नहीं देखता कि वास्तव में क्या हुआ था? वह तो यह देखेगा कि गवाह क्या कहते हैं? अपने गवाह तुम जुटा नहीं पाओगे और उनके गवाह विस्तार से बताएँगे कि तुमने कैसे सरेराह लड़कियों के कुरते में हाथ डाल के उनके मम्मे दबाने की कोशिश की। सच बता रहे हैं तुम्हें। तुम ही मारे जाओगे। सो रिपोर्ट की तो जिद करो मत। घर जाओ। अभी माथा गरम है तुम्हारा। कोई ठुकाई कर दे

तो हो जाता है। घर जाओ। शान्ति से सोचो। नहा-धोकर बढिया सी नींद ले लो। रिपोर्ट लिखाने का विचार खुद ही बाहर निकल जाएगा। समझे न? जाओ अब। गंधा रहे हो। थाने में बदबू फैल रही है।"

इसी बीच एक मक्खी बाहर जाकर औरों को भी साथ ले आई है। सारी मक्खियाँ उत्साहपूर्वक नन्हे मास्टर पर मँडरा रही हैं।

"इन्हें आदरपूर्वक बाहर तक पहुँचा दो बट्री।" दरोगाजी ने सिपाही से कहा।

फिर? कुशवाहाजी ने क्या किया फिर? बताइए, वे क्या करते? आप ही बताएँ न? वे यह कहते हुए थाने से वापस चले आए कि यह सब ठीक नहीं कर रहे हैं आप। दरोगाजी ने उन्हें सुना ही नहीं। बट्री को इशारे की ज़रूरत नहीं थी। वह कुशवाहाजी को लगभग खींचता हुआ थाने के सामने की सड़क तक छोड़ आया। सड़क पर बैठे दो कुत्ते कुशवाहाजी की अजीब धज देखकर उन पर भौंकने लगे। बट्री ने पत्थर मारकर कुत्तों को भगाया। भागते हुए कुत्तों को बट्री ने यह भी चेताया कि तुमने मास्साब पे भौंका तो बे तुम्हारे पिल्लों को परीक्षा में फेल कर देंगे। स्सालों, उन पे भौंको मत। जाते हुए कुशवाहाजी को बट्री सिपाही ने भी यही सलाह दी कि जमाना बड़ा खराब आ गया है मास्साब। आप मास्टर हैं तभी हमारे दरोगाजी थोड़ा लिहाज कर गए वरना उनसे इस तरह मुँह लगकर कोई आदमी थाने से बिना डंडे खाए जा नहीं सकता।

कुशवाहाजी अपने घर जा रहे थे कि रास्ते में पंडिज्जी मिल गए। मोटरसाइकिल रोककर पूछने लगे, "अरे, अभी तक घर नहीं गए आप?"

कुशवाहाजी ने स्वयं पर नियंत्रण की कोशिश ज़रूर की परन्तु स्वर को रुआँसा होने से रोक न सके।

रुआँसे स्वर में वे पंडिज्जी से बोले, "यह ठीक नहीं किया आपने पंडिज्जी।"

पंडिज्जी ने दूर से ही पुचकारा, "अरे छोड़िए न, नन्हे मास्साब। बच्चे हैं। नासमझ उम्र के लोग। ये लोग कहाँ जानते हैं कि क्या ठीक, क्या गलत? भूल जाइए। उन्हें क्षमा करें। क्षमा बड़न को चाहिए, छोटन को उत्पात, है न?"

"पर बड़े लोग तो छोटों को उत्पात के लिए न उकसाएँ।"

"बिलकुल ठीक कहा आपने। छात्रों को उकसाना तो बड़ा ही गलत काम है। मैं इसे बरदाश्त नहीं करने वाला। जो भी उन्हें उकसाता दिखे, आप सीधे हमें बताएँ। हम सख्त एक्शन लेंगे। शिक्षाधिकारी महोदय भी बता रहे थे कि आपने उनको भी ऐसा ही कुछ कहा है। वैसे, आपको कुछ गलतफहमी हुई लगती है। हमारा कॉलेज तो एक परिवार जैसा है। कोई ऐसा क्यों करेगा? बताइए न? कोई क्यों आपके विरुद्ध छात्रों को उकसाएगा? खुद को इत्ता भी महत्त्वपूर्ण न समझें। हो गया होगा कोई मौँड़ा आपसे खफा। आप कड़क भी तो भौत हैं। अपना व्यवहार सुधारें। अपने कर्मों को भी देखें।"

कुशवाहाजी पंडिज्जी की तरफ शिकायती नजरों से देखते हुए चल दिये। पंडिज्जी ने भी मोटरसाइकिल बढ़ा ली। हो सकता है कि वे मुस्कराए भी हों। वैसे, वे ऐसी स्थिति में गम्भीर रह जाने का अभ्यास रखते हैं।

जिनके हाथों में कोटरा की लाज है

सुरेलेजी ने जब नेताजी से भी सिफ़ारिश करा दी तो कोतवाल साहब को मामले पर ध्यान देना ही पड़ा।

एक सवर्ण व्यक्ति के लिए पिछड़ों का नेता चलकर खुद थाने तक आ जाए तो पुलिस को बहुत सारी राजनीतिक जमावट को समझना पड़ता है। सुरेलेजी स्वयं सवर्ण हैं। पिटाई का आरोप पंडिज्जी के बेटे पर है। पंडिज्जी सवर्णों के नेता हैं। पंखीलाल कहार उर्फ नेताजी पिछड़ों के सगे हैं। फिर? वे कैसे? कुदाचित्त उनको यह सवर्णों में भी अपनी पकड़ बनाने का अवसर लगा होगा। नेताजी स्वयं सुरेलेजी के पास पहुँचे थे अथवा सुरेलेजी ने उनके पास जाकर अपना दुखड़ा रोया, यह बात अभी बहुत स्पष्ट नहीं है; परन्तु दरोगाजी आशंकाएँ सूँघ लेते हैं और सम्भावनाएँ भी। पंखीलालजी को नेताओं वाला सम्मान तथा झटका, दोनों एक साथ देते हुए उन्होंने यही कहा कि नेताजी, आप कतई चिन्ता न करें, हमारे रहते सुरेलेजी के सुपुत्र के साथ अन्याय न होगा। हम बैठे हैं न! उसे न्याय अवश्य मिलेगा। वैसे, उसने भी अपोली पर बस, सन्देह भर व्यक्त किया है, और वह भी श्योर नहीं है। खुद सुरेलेजी का सुपुत्र यही कह रहा है कि पीटने वाले मूँ पे ढट्टी बाँधे हुए थे; ऐसे में हम भी सीधे अपोली पर हाथ नहीं डाल सकते। अपोली कोई ऐरा-गैरा तो है नहीं, पंडिज्जी का लौंडा है वो। और पंडिज्जी कोई छोटे-मोटे आसामी तो हैं नहीं। हम बहुत सँभलकर पूरी जाँच कर रहे हैं। अभी बस इतना भर कह सकते हैं कि पूरा न्याय होगा।

नेताजी के साथ सुरेलेजी भी आए थे। बड़े उद्वेलित थे। पीटने वालों को डायरेक्टली फाँसी दिलवाना चाहते थे, और तुरन्त से पेशतर चाहते थे। दरोगाजी ने उनके सामने ही नेताजी को बताया कि पिटाई के पीछे असल कारण तो मोहब्बत तथा लौंडियाबाजी का चक्कर है। दरोगाजी ने मुस्कुराते हुए यह भी पूछ लिया कि यह बात आपको सुरेलेजी ने बताई कि नहीं? श्रीमानजी एक मोड़ी के चक्कर में कुटे हैं। मोड़ी के माँ-बाप इनके सुपुत्र के खिलाफ रिपोर्ट कराने वाले हैं। उनको भी दूसरी पार्टी द्वारा भड़काया जा रहा है। अभी तो हमने उनको टेक्टफुली टाल-टूल दिया है परन्तु यदि मोड़ी ने रिपोर्ट कर दी तो जे आपके सुरेलेजी भी भगे-भगे फिरेंगे। स्त्री के खिलाफ अपराध हो तो गवर्मेन्ट मुजरिम को सीधे अन्दर बँडने को कहती है। आदमी जमानत को भी तरस जाता है।

पंखीलाल ने नेताओं वाले अंदाज़ में कहा कि हमारी सरकार तो बस आप हैं। आपके रहते हुए इनके साथ कभी अन्याय न होगा, हमने यही कहा है सुरेलेजी से। 'कोटरा की लाज आपके हाथों में सुरक्षित है' जैसी बात जब नेताजी ने कही तो कोतवाल साहब के अलावा थाने में मौजूद दो-तीन गिरहकट तक मुस्कुराने लगे। कोतवाल ने हँसकर कहा, "लाज हरने वाले कोटरा में पचासों हैं और कुतवाली बस एक है; फिर भी हम किसी को लाज न हरने देंगे।"

नेताजी निकल गए।

उनके जाने के बाद कोतवाल साहब ने हवलदार को निर्देश दिया कि कल, जन सुनवाई बैठक के लिए कालपी जाते टेम जीप को तनिक पंडिज्जी के खेत के पास रोक लिया जाए। ... "सुरेले के लौंडे को उसी खेत के पास पीटा गया था ना? तो पंडिज्जी के खेत के चौकीदार से पूछताछ तो बनती है। हो सकता है कि वह हमारा चश्मदीद साबित हो।" साहब ने जब यह कहा तो पूरा थाना कोतवाल साहब की प्रतिभा पर अश-अश करने लगा। कोतवाल साहब पंडिज्जी के सबसे कमज़ोर प्यादे पर चाल चल के देखना चाहते हैं कि देखें, ऐसा करने पर बादशाह क्या करता है?

आज कोतवाल साहब उसी मुहिम पर हैं।

समय : सुबह के दस बजे।

स्थान : वही, बनती, कुटती कोटरा-कालपी सड़क। वही, पंडिज्जी का मटर का खेत।

दृश्य : सड़क मजदूर अभी ताज़ा-ताज़ा काम पर पहुँचे हैं। सड़क पर ऐसे उत्साहपूर्वक काम हो रहा है कि शक होता है कि कहीं किसी मंत्री या बड़े अफ़सर का दौरा तो नहीं होने वाला? सड़क कूटने का इंजन चल रहा है। डामर की परत आकार ले रही है। दूर तक जाती सड़क किसी अधमरे अजगर-सी पड़ी है- यहाँ-वहाँ से उधड़ी, खुली और चमकीले चकत्तों वाली।

पुलिस की एक जीप पंडिज्जी के खेत पर रुकती है। एक सिपाही उतरकर दौड़ता हुआ खेत में जाता है।

मज़दूर काम छोड़कर जीप के पास आ जाते हैं।

"क्या है रे? तमाशा हो रहा है यहाँ? क्यों?" जीप ड्राइवर की सीट पर बैठे हवलदार साहब ने कहा है। मज़दूर घबरा गए। हाथ जोड़कर कह रहे हैं कि हम तो बस यूँ ही।

"यूँ ही काहे?" इस बार कोतवाल साहब ने पूछा।

मज़दूर अपराधी की तरह खड़े रह गए।

"काम छोड़कर भागने का बहाना चाहिए तुम लोगन को, है न?" थानेदार बोला।

"नहीं महाराज..." एक ने बोलने की हिम्मत की।

"... नहीं न? तो फिर जाओ। अपना काम करो। यहाँ कोई पतुरिया का डांस नहीं होने वाला कि भगे चले आ रहे हों।" थानेदार ने कहा।

"अभी अगर गवाही में किसी का नाम डल गया तो जज्जी में डोलते फिरोगे।" हवलदार ने ऐसी स्थिति में पुलिस जीप के पास खड़े होने की रिस्क के बारे में बताया।

सब लोग उलटे पाँव वापस लौट गए। इसी बीच सिपाही जाकर पंडिज्जी के बूढ़े चौकीदार को खेत से पकड़ लाया।

तो अब दृश्य कुछ यूँ बना :

बनती हुई टूटी-फूटी सड़क । दूर तलक खेत। दूर तक हरियाली। सड़क पर घूमता हुआ सड़क कूटने का इंजन। सड़क पर डामर बिखेरते हुए मजदूर। एक तरफ़ खड़ी हुई थाने की जीप। ड्राइविंग सीट वाला हवलदार नीचे उतर आया है। जीप में अभी बस दरोगाजी बैठे हैं। बूढ़ा नत्थू वहीं, जीप के पास हाथ जोड़कर खड़ा है। उसके ठीक पीछे, लगभग उसके सिर पर सिपाही खड़ा हुआ है।

हवा, धूप, पंछी : यह हुआ वातावरण।

"नाम क्या है?" थानेदार ने पूछा।

"नत्थू बोलते हैं सरकार।"

"जो बोलते हैं, वही है कि बोलवे का अलग और असली कछू और?"

"जेई है महाराज।"

"इतें खेत पर ही रहते हो?"

"हाँ मास्टर।"

"चौबीसों घंटे इतें रहते हो?"

"हाँ मास्टर।"

"अरे, हगबे, मूतबे तो कहीं जाते होंगे?"

"सब कुछ इतई होता है सरकार।"

"तब तो तुमने सब देखा होगा?"

"क्या महाराज?"

"वो जो सुरेलेजी के मोंड़ा की इतें मार कुटाई भई, पन्द्रह दिन पहले?"

"कछ् भई तो हती।" नत्थू अब जाकर सतर्क हुआ।

"कछ् नहीं, भौत भई थी। तुमने भी देखी होगी?"

"हओ मालिक, हो-हल्ला मचा तो हम हूँ उठ के देखन लगे हते।"

"देखा था न?"

"दूर से ही देखा था मालिक।"

"पास नहीं गए? कहीं लड़ाई हो रही हो तो आदमी पास जा के तमाशा देखता है कि दूर रह के?"

"साब, हम गरीब आदमी हैं।"

"तो गरीब को तमाशा देखने की कोई मनाही है क्या?"

"वो नहीं मालिक, बड़े लोगों के झगड़ों से हमारा दूर रहना ही ठीक।"

"इसका मतलब तो जे हुआ कि तुम पिटबे और पीटबे वालों को पहिचानते हो?"

"हमें क्या पता मालिक?"

"फिर? तुम्हें कैसे पता कि बे लोग बड़े आदमी थे?"

"हम तो इत्ते छोटे आदमी हैं महाराज कि हमसे तो सब बड़े ही कहाँ।"

"बातें खूब बना लेते हो?"

"नहीं महाराज। हम तो गरीब..."

"...यार, तुम हर बात में जे अपनी गरीबी न घुसेड़ो। ... नहीं तो हम जे डंडा तुम्हारे वहीं घुसेड़ेंगे जहाँ डालने पे गरीब और अमीर दोनों नचे-नचे फिरते हैं।"

बूढ़े चौकीदार ने हाथ जोड़ दिये।

दरोगाजी कुछ देर तक उसे घूरते रहे।

"सच बताना, उस दिन तुमने क्या देखा था?"

"एक मोंड़ा की कुटाई चल रई हती। तीन लोग मार रये थे। ... बस, इत्ता देखा।"

"मारबे वालों को पहिचान सकते हो?"

"हम कैसे पहिचानेंगे मालिक?"

"आँखें हैं न; बस, उनसे ही।"

"आँखें हमारी कमजोर हैं मालिक। वैदजी बताते हैं कि मोतिया उतर आया है। पकबे पे निकरवाना पड़ेगा।"

"अच्छा?"

"जी मालिक। फिर हमने जे सब इत्ती दूर से देखा था कि

"... ऐसा कोई दूर भी नहीं है। तुम्हारे बगल के खेत में ही तो मारा था न?"

"पर बे लोग अपने मूँ पे ढट्टी बाँधे हुए थे सरकार।"

"देखो, तुम हमें चूतिया बनावे की कोशिश तो करियो मती।"

बूढ़े ने दोनों हाथों से अपने कान पकड़ लिए।

दरोगाजी बेंत को जीप के लोहे पर बजाने लगे।

"पीटने वालों में तुम्हारे मालिक तो नहीं थे न?"

"नहीं सरकार।"

"जब तुमने ठीक से कुछ देखा ही नहीं था तो फिर इत्ते यकीन से कैसे कह रहे हो?"

"हमारे मालिक ऐन गोर हैं। जो लोग काम करते हैं

"पर तुम्हारी आँखें तो कमजोर हैं न?"

"हाँ मास्टर।"

"फिर इत्ता साफ कैसे देख लिया कि रंग क्या था?"

"गोरे लोग दूर से ई चमक जाते हैं।"

"अच्छा, हम चमक रहे हैं कि ऐसेई?" दरोगाजी ने हँसकर पूछा।

बूढ़े ने हाथ जोड़ लिए। फिर कुछ याद करके बोला, "वैसे भी मालिक तो उस दिन, उरई की कह के शाम को ही मोटरसाइकिल पे निकल गए थे।"

"शाम को?"

"हओ, शाम को।"

"तो स्साला उरई किच्ची दूर है? पास ही तो है। क्या पता, जाते-जाते लौट आए हों कि चलो, मार-कूट के वापस चले जाएँगे। क्यों?"

"नहीं सरकार, मालिक तो नहीं हते।"

"मालिक का तुमने तुरन्त बता दिया, ऐसे कैसे?"

"मालिक होते तो हम तुरन्त पहचान जाते।"

"मोटियाबिंद है, और इत्ती दूर से भी देखा है, फिर भी होते तो जरूर पहचान जाते? क्यों?"

"मालिक को पहचानने के लिए आँखन की जरूरत नहीं होती है सरकार। मालिक होते तो हम जरूर जान जाते।"

"कैसे?"

"मालिक आस-पास हों तो नौकर जान जाता है, सरकार। कैसे? हमें जे तो पता नहीं पर हमें पता चल जाता है।"

थानेदार साहब ने मानो स्वगत कहा, "बूढ़ा है बड़ा हरामी।"

सिपाही ने सुन लिया।

बूढ़े को ठेलते हुए सिपाही ने धमकाया, "साहब जो भी पूछ रहे हैं, सब सही-सही बता देना। तुमने पुलिस से कोई खेल करा तो हम यहीं पे पटक-पटक के मारेंगे।"

सिपाही ने ठेला तो बूढ़ा गिरते-गिरते बचा। पीछे सड़क बन रही है। सड़क पर मज़दूर व्यस्त हैं। सड़क कूटने का इंजन सामने की सड़क पर आगे-पीछे हो रहा है। समस्त काम करने वालों की तिरछी निगाहें इसी तरफ़ हैं।

"चलो, माना। मालिक खुद नहीं थे। मान लिया। ...तो क्या अपोली थे?" थानेदार ने अचानक पूछ लिया।

आदमी को शुरू में यहाँ-वहाँ भटकाकर फिर असली प्रश्न को अचानक ही पूछ लिया जाए तो बताने वाला गफलत में आपका मनचाहा उत्तर दे डालता है। थानेदार साहब अभी पूछताछ के अपने इसी सिद्धांत पर चल रहे थे।

"जी मालिक?" बूढ़ा समझ ही नहीं पाया परन्तु थानेदार साहब को लगा कि वह जानबूझकर ऐसा अनजान बन रहा है।

जीप में बैठे-बैठे ही दरोगाजी ने ज़ोर से घुमाकर एक बेंत मारा।

बेंत कंधे के पास, बाँह पर जाकर लगा। बूढ़ा बिलबिला गया।

"अब कुछ समझ आया?" थानेदार ने कहा।

बूढ़े ने हाथ और भी पास लाकर जोड़ दिये।

अगला डंडा नल्यू की बूढ़ी उँगलियों पर पड़ा तो वह बिलबिलाकर वहीं बैठ गया। ज़ोर से रोने लगा। रोते हुए बूढ़े को सिपाही ने अपने पैर से दरोगाजी की तरफ ठेल दिया।

"याद आया? अपोली थे कि नहीं?"

"नहीं मालिक। नहीं हते।"

"देखा हो तो सच्ची-सच्ची बता दो?"

"नहीं देखा मालिक।"

"और सोच लेना। ठीक से सोच के रखना। हम फिर आएँगे।" सोच के रखना।

कहकर कोतवाल साहब ने इशारा किया तो हवलदार ने जीप स्टार्ट की। तो सब लोग कूदकर जीप में चढ़ गए।

थानेदार साब तेजी से कालपी तरफ निकल गए।

नत्थू ज़मीन पर अभी भी उकहूँ बैठा सिसक रहा था।

मज़दूर दूर से ही उसे देखते रहे। पिट गए बूढ़े से सबकी सहानुभूति थी परन्तु सब लोग बहुत डर गए थे। पुलिस के द्वारा पीट गए आदमी के पास जाएँ तो कहीं वे लोग स्वयं तो नहीं फँस जाएँगे? पुलिस चली गई थी परन्तु उसकी जीप के टायरों और भय के निशान ज़मीन और हवा में उभर आए थे।

प्रभु दर्शन की प्यास

यह इंद्रलोक तो नहीं है पर यहाँ सभी देवता हैं।

एसडीएम साहब का ऑफिस।

पंडिज्जी एसडीएम से मिलने आए हुए हैं।

क्यों मिलना है?

आते रहते हैं। मिलते रहते हैं। काम न हो तो भी मिल जाते हैं ताकि कभी काम पड़े तो काम हो सके। सिद्धांत यह है कि बड़े अफ़सर से बीच-बीच में किसी भी बहाने से मिलते रहो, उसे दिखते रहो तो वह आपको याद रखता है वरना बहुत छोटी-सी याददाश्त होती है उसकी। इसीलिए, कोई काम न हो, तो भी वे यहाँ आ जाते हैं। 'साहब लोगों को टाइम-टाइम पर सलाम ठोंकते रहो तो ठीक रहता है' पंडिज्जी का मानना है यह। लोगों को भी दिख जाता है कि साहब से पंडिज्जी का अच्छा कनेक्शन है। स्थानीय राजनीति में यह भी बड़ा महत्वपूर्ण है।

समय लेकर दफ़्तर पहुँचे हैं पंडिज्जी। साहब ने बारह बजे आने का समय दिया था- पंडिज्जी, साढ़े ग्यारह बजे ही पहुँच गए। सही भी है। मान लो कि अफ़सर की घड़ी कुछ ऊपर-नीचे हो जाए, तो? पंडिज्जी उस मेकेनिकल एरर को गुंजाइश लेकर भी चलते हैं। तो साहब के आने में अभी आधा घंटा शेष है। साहब के चेंबर के बाहर लम्बा-सा बरामदा है। इसमें अभी ख़ासी चहल-पहल मची हुई है। पंडिज्जी उसी को देखने लगे। समय तो काटना है।

आइए, आपको इसी बरामदे में अभी मौजूद एक ऐसे शख्स से भी मिलवाते हैं जिसे साहित्य की दुनिया में आम आदमी कहते हैं।

एक ठेठ ग्रामीण वहाँ बैठा है, बरामदे की दीवार से टिका हुआ। अधेड़। किसी अन्दरूनी छोटे-से गाँव का आम नागरिक, ऐसा गाँव जहाँ स्वतंत्रता और गणतंत्र बस एक अफ़वाह की तरह ही पहुँचे हैं अभी। वह अपने किसी काम से कलेक्टरेट आ पहुँचा है, और भौचक है। उसके चेहरे पर हवाईयाँ उड़ रही हैं। दिल में बड़ी घबराहट है। सूखे हुए होंठ।

तालू से चिपकी हुई जुबान। खाली-सी वीरान आँखें। फटेहालों वाली धज। जब अभावों ने ही मिल-जुलकर किसी तरह आपको जीवन भर पाला हो और भूख ने वर्षों थपकी देकर सुलाया हो-ऐसी स्थिति में आदमी की जैसी शक्ल निकल आती है, वैसी ही सूरत है इस शख्स की। एकदम डरा-डरा सा। चौक-चौक जाने वाला शख्स। वह अभी भी हर कोट, पैट वाले को नमस्ते कर रहा है। डरता है कि कोई छोटा साहब ही तलब न कर ले कि तुम यहाँ क्यों खड़े हो? भगा न दे यहाँ से। कहे कि बाहर जाकर खड़े हो जाओ।

बरामदे में ताँता लगा हुआ है लोगों का। दफ़्तर की परिक्रमा लगाते भक्तों के रेले हैं। इसी अफरातफरी के बीच यह आदमी दीवार से टिका बैठा है। लम्बे समय से वह यँ ही बैठा हुआ है। कदाचित तबसे बैठा है जब साहब का यह कमरा बना होगा, या उसके भी पहले से वहाँ बैठा रहा हो तो आश्चर्य नहीं कहाएगा। टेक्निकली तो वह भी पंडिज्जी की भाँति ही साहब के आने का इंतज़ार कर रहा है। दोनों के इंतज़ार में अन्तर बस यह है कि उसे कुछ पता नहीं कि साहब कब मिलेंगे जबकि पंडिज्जी का अपायटमेंट पक्का है। यह तो वहाँ बैठा हुआ है, बस। साहब मिल जाएँगे तो मान लेगा कि ईश्वर मिल गया। न मिले, तो वह जानता ही है कि ईश्वर यँ ही मिल जाता है क्या? वह फिर से अगले दिन कोशिश करेगा। फिर सबसे रिरियाएगा। फिर साहब के इंतज़ार में बैठा रहेगा। रोज़ यहीं बैठा हुआ मिलेगा। सदियों यहीं खड़ा मिलेगा। कभी न कभी तो साहब की नज़र उस पर भी पड़ेगी। जब पड़ेगी, वह अपनी व्यथा रो लेगा। परन्तु क्या तब भी वह अपनी बात ठीक से बोल पाएगा? पता नहीं। तपस्या जैसा मामला है। वह तपस्या में बैठा ज़रूर है परन्तु अभी अचानक भगवान प्रकट हो ही गए तो? उन्होंने उससे वर माँगने को कह दिया, तो? तब वह क्या कहेगा? उसे खुद पता नहीं। शायद उनके चरणों में वह मौन ही पड़ा रह जाए। वह खुद से ही गुमशुदा है। वह इस भीड़ में किसी दयालु से प्रतीत होते चेहरे की तलाश में है। वह देख रहा है कि यहाँ हर आदमी व्यस्त है या उस जैसा ही परेशान है। कोई तो ऐसा दिखे जिससे साहब का पूछा जाए; ---कब तक आएँगे साहब?

और अपने पंडिज्जी का चेहरा ठीक वैसा है, दयालु टाइप। यह चेहरा उन्होंने बड़े अभ्यास से साधा है। जैसे वे हैं नहीं, वैसा चेहरा बनाना और बनाए रखना कोई आसान काम है क्या? वे दयालु तो खैर नहीं ही हैं परन्तु शातिराना दिमाग के रहते भी उनके चेहरे पर अनोखी-सी भलमनसाहत झलकती है। सहज सी मुस्कान रहती है उनके चेहरे पर। हमेशा। आँखें छोटी-छोटी हैं परन्तु उन्हें देखो तो यह आशा बँधती है कि यह आदमी कभी किसी का भला कर भी सकता है। चेहरे पर भलमनसाहत की एक झूठी नेमप्लेट टाँग रखी है उन्होंने। बड़े अभ्यास से ऐसा चेहरा साधा है उन्होंने। कोई आसान काम नहीं है यह। पर क्या करें? राजनीति में ऐसा दिखना भी बहुत ज़रूरी है। ऐसे निरापद दिखते चेहरे के सुरक्षित मचान से आप सटीक निशाने लगा सकते हैं। शिकार आपका चेहरा देखकर लापरवाह हो जाता है। चैट रूम

वह अधेड़ भी धोखे में आ गया। पंडिज्जी को दूर से देखा तो वह उनकी तरफ़ ही चल पड़ा। ये साहब उसे ज़रूर कुछ सही-सही बता देंगे। पंडिज्जी तब बटुए से तंबाकू निकालकर मलने की सोच रहे थे; टाइम कटेगा, और साहब से मुलाकात के पहले तंबाकू से दिमाग भी चैतन्य हो जाएगा। तभी यह आमजन उनके पास आकर खड़ा हो गया और हाथ जोड़कर तब तक खड़ा रहा जब तक कि पंडिज्जी ने उसे देख नहीं लिया।

"पालांगी महाराज।" वह बोला।

पंडिज्जी ने अब जाकर उसे ध्यान से देखा।

कौन है यह? धनू कि मन्नु ? कि घसीटे? कि कढ़ोरे? कौन है ये शख्स यार? ये स्साले सारे गरीब एक से क्यों लगते हैं? एक ही शक्ल, एक सी धज, एक जैसी घबराहट, एक जैसी रिरिआहट, एक जैसी झुर्रियाँ, एक जैसा ही खालीपन इनकी आँखों में। पता नहीं अब, यह कौन है? कभी खेत पर काम-धाम करने तो नहीं आया था?

"पालांगी महाराज।" उसने दोबारा प्रणाम किया।

"सुखी रहो जजमान। बोलो?" पंडिज्जी बोले।

पंडिज्जी के आशीर्वाद से से वह सुखी तो खैर नहीं हो गया; जैसा था वैसा ही बना रहा। कुछ लोगों पर किसी तरह के आशीर्वाद नहीं फलते। ईश्वर ने उन्हें 'बे-आशीर्वाद' टेकनीक से बनाया होता है।

"बोलो?" पंडिज्जी ने फिर पूछा।

"महाराज, बड़े साहब से मिलना था।" उसने अपना काम बताया।

"तो मिलो न, खूब मिलो। हमसे काहे परमीशन माँगते हो? जाओ, मिल लो।" पंडिज्जी ने बटुए को वापस जेब में रखते हुए कहा।

समय काटने का साधन स्वयं उन तक चलकर आया था। तंबाकू की ज़रूरत नहीं रह गई थी अब।

"हम यहाँ सात दिन से आ रहे हैं महाराज।"

"फिर?"

"साहब मिलई नहीं रहे।"

"ओह..."

"...जी महाराज।"

"क्या पता, छुट्टी पे हों। उन्हें दस्त या उल्टी न हो गई हो? दफ्तर ही न आएँगे तो तुमसे कैसे मिलेंगे? है कि नहीं?"

"आते तो रोज हैं।"

"किसने कहा?"

"जेई, छोटे साहब लोगन ने बताया।"

"फिर?"

"बस, हमें नहीं मिल पाते महाराज।"

"क्यों?"

"पता ही नहीं चल पाता कि बड़े साहब कब आए, कब चले गए। पहले तो सब जे कहते हैं कि साहब अभी आए नहीं, बाद में बताते हैं कि बे तो आ के चले भी गए!"

"अरे!"

"वोई तो। आप बताएँ कि हम का करें महाराज?"

"यार, वैसे है तो जेई कमरा उनका। सामने वाला..."

"... हमें पता है महाराज।"

"बस, तो इतें ही खड़े रहो। बार-बार उनका पता करते रहो।"

"हम पता करते रह जाते हैं, बे आ के निकल भी जाते हैं।"

"साहब को पहिचानते हो कि नहीं?"

"हम कैसे जानेंगे महाराज?"

"ऐसा नहीं है। देखोगे तो तुरन्त पहिचान लोगे।"

"जी?"

"एकदम देवता टाइप लगते हैं। दूर से ही चमकते हैं।"

"हमें तो यहाँ सभी साहब देवता लगते हैं महाराज।"

"सही कहा। जे सरकार का देवलोक है। यहाँ सब देवता हैं। पर बे यहाँ के सबसे चमकीले देवता हैं।"

"हमारी आँखन में कच्चा मोतियाबिंद भी है मालिक।"

"फिर बे आएँगे तो तुम कैसे पहिचान सकोगे कि साहब आ गए?"

"वोई तो।"

"फिर?"

"हम तो बस जे मानते हैं कि बड़े साहब हैं तो अलग से पहिचान में आ जाएँगे। ... कल एक पल को वे दिखे भी थे पर निकर गए।"

"तो कैसे दिखते रहे?"

"ऐन गोरे धरे थे।"

"भैया, ठंडे कमरे में रिहाइश रहती है उनकी। न उनने कभी धूप देखी, न धूप ने उनको देखा। साहब लोग गोरे ही दिखते हैं। कभी करिया भी रहे हों तो साहबी करते-करते झक्के गोरे निकल आते हैं। सो तुम गोरे रंग पर तो जाओ मत। इतें भौत से ऐसे गोरे साहब मिल जाएँगे। गोरे अंग्रेज चले गए पर जे वाले गोरे पीछे रह गए हैं। साहब की कुछ और पहिचान देखी हो तो बताओ?"

"पेट ऐन बाहर को निकरा हुआ था महाराज।"

"पेट तो हमारा भी निकला हुआ है?"

"पर उनका तो ऐसा था कि का बताएँ!"

"यार, तो उनका पेट क्या तुम्हारे जैसा पिचका होगा? जे तो सरकार का सिस्टम है। साहब का पेट है तो बाहर कढ़ेगा ही। सरकारी पेट है। कभी उनका भी पिचका हुआ मिला तो उनके खिलाफ जाँच बैठ जाएगी।"

"जी मालिक।"

"सीआर में इनके पेट की नाप ही तो दर्ज होती है।"

"जी मालिक?"

"तुम न समझोगे। वैसे, उनका पेट कित्ता हिर को कढ़ा था?"

"जादा ही कढ़ा था महाराज।"

"इत्ता?"

"इत्ते से भी जादा।"

"पर इत्ते बड़े पेट वाले भी कलेक्टरेट में दस निकल आएँगे। इंचीटेप से तो नापते न फिरोगे कि बड़े साहब कौन हैं?"

"पेट जरूर बड़ा था पर साहब भौत खबसूरत दिखत हते मालिक।"

"कुर्सी पर बैठा आदमी खूबसूरत निकल ही आता है। तुमें भी बिठा दें तो तुम भी ऐसे सुंदर..."

अधेड़ ने हाथ जोड़ लिए।

"अरे, हम एकदम सच बताते हैं। एक बार बैठ के तो देखो। खुद समझ जाओगे। जैसेई कुर्सी पर बैठे कि तुमारी नाक सुतवा हो जाएगी, गालन पे चमक आ जाएगी, होंठ गुलाबी हो जाएँगे और माथा चौड़ा निकल आएगा। कुर्सी पर बैठा आदमी ऐसा सुंदर निकल आता है कि उसे चूमने को मन कर आए। सच बताते हैं हम..."

"...जी मालिक।"

"पर कभी उन्हें चूम न लेना। साहब बुरा मान जाएँगे।"

"जी मालिक।"

"हाँ, उनके चरण जरूर चूम सकते हो। उसकी कोई मनाही नहीं है।"

"मालिकों के चरण चूमते ही जीवन बीता है सरकार।"

"सही काम करते हो। मालिकों की चरण रज बड़ी चमत्कारी होती है।"

"जी मालिक।"

"इस दफ्तर में तो सारा खेल ही सही चरण रज बटोरने का है। आदमी के माथे और फाइल पर सही चरण रज भर लगी हो तो ...।"

"जी मालिक?"

"फाइल नहीं समझते हो या चरन रज? अब फाइल को तुम्हें कैसे समझाया जाए?... जे तो समझते हो न कि भाग्य क्या होता है?"

"हम न समझेंगे तो कौन समझेगा? सब, भाग्य का खेल..."

"...तो जैसे तुम्हारे भाग्य की पोथी ब्रह्माजी बनाते हैं न, वैसा ही फाइल का मामला है। मान लो कि यहाँ भी ब्रह्माजी ही बैठे हुए हैं। वे चाहें तो किसी भी मामले का भाग्य बना दें, चाहें तो बिलोर दें।"

"बड़े साहब अगर हमारे कागज पे सही कर देंगे तो हमारा भाग्य..."

"...तो बस, तुम इसी दरवाजे पे अपनी नज़र रखो।" पंडिज्जी ने एसडीएम के चेम्बर की तरफ इशारा किया।

"रखे हैं..."

"...रखे रहो। पलक भी न झपकड़ो। साहब दिखें तो फटाक् से घुस जइयो।"

"घुसने ही तो नहीं देते। आते तो हमें कल भी दिखे थे पर बड़े बाबू ने हमें घुसने ही नहीं दिया। कहा कि साहब जब बुलाएँगे, तब अइयो।"

"फिर?"

"फिर हम बैठे रहे। शाम हो गई। हमने पूछी तो कहन लगे कि साहब तो चले गए। हमने कही कि बाहर निकरते तो हमें दिखे नहीं। निकरते तो हम उनके चरणों को न पकड़ लेते?"

"सही बात।"

"बड़े बाबू कहन लगे कि जे बड़े साब का कमरा है भैया। तुम इसका एक ही दरवज्जा समझे हो क्या? साहब तो आज पीछे की तरफ से ही कढ़ गए बाहर।"

"जे तो खैर सही बात कही बड़े बाबू ने। बड़े साहब के कमरे में पीछे भी एक दरवाजा होता है। बल्कि, कहो तो वही मेन दरवाजा होता है। सारे असली काम पीछे से ही होते हैं। तुम्हें इत्ती-सी बात नहीं पता? यहाँ तो जे सत्य सबको पता है।"

"हमें का पता महाराज। हमारी तो बस इत्ती अरज रही कि बड़े साहब हमारी दरखास्त ले लेते."

"...क्यों? क्या हो गया?"

"महाराज, अभी ओला पड़े हते न?... ओला गिरबे से हमारी पूरी फसल खत्म हो गई। सरकार ने मुआवजा बाँटा पर हमें कछु नहीं मिला। पटवारी साब ने बिना हमसे पूछे सरकार को लिख के दे दिया कि इसने खेत में फसल उगाई ही नहीं थी।"

"तो तुमने न उगाई होगी शायद। पटवारी साहब गलत काहे बोलेंगे?"

"बे हमसे पैसा माँग रहे थे। हमने नहीं दिये तो..."

"...क्यों नहीं दिये? हनुमानजी के मन्दिर पे माथा टेकने जाते हो तो चार पैसे चढ़ाते हो कि नहीं?"

"हमारे पास पैसे थे ही नहीं। कैसे देते मालिक? हमने पटवारी साब से कही भी कि न हो तो हमारी नंगाझोली करके देख लो।"

"तो?"

"तो बड़े साब से हमें अरजी लगानी है कि पटवारी ने हमारी झूठी रपोट लगाई है।"

"साहब को पटवारी से बड़ा समझते हो क्या?"

"साहब ही हमें मुआवजा दिला सकते हैं। हमारी अर्जी पे बे अपनी सही कर दें तो हमें मुआवजा मिल जाए।"

कितना भोला है यह आदमी !

पंडिज्जी ने कहा, "तुम जाकर उतें बैठ जाओ। साहब आएँगे तो हम इशारा कर देंगे।"

"बस, तो मालिक हम उतें बैठे हैं। आप इशारा भर कर देना।"

"हम क्या इशारा करें, जे भी तो बता दो?"

"जी मालिक?"

"कहो तो तुम्हें आँख मारें? आँख मारना समझते हो न?" पंडिज्जी ने मुस्कुराते हुए पूछा।

अब वह जान गया कि मालिक मज़ाक़ कर रहे हैं। मालिकों को अधिकार है। उसने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और पंडिज्जी से दूर जाकर खड़ा हो गया।

पंडिज्जी ने अपनी घड़ी देखी। तभी एक दलालनुमा छुटभैया पंडिज्जी के पास आकर खड़ा हो गया। शायद, देर से पंडिज्जी को उस ग्रामीण से बातें करते देख रहा था वह।

"चुनाव की तैयारियाँ अभी से उसने हँसकर पूछा। कर दई पंडिज्जी?" चैट रूम

"क्यों?"

"छोटे आदमी को इत्ती देर से अपने मूँ लगाए हुए थे तो कुछ तो बात होगी।"

"गरीब आदमी है बेचारा। बड़े साहब से मिलने को खड़ा है। बड़ी आशाएँ बाँधे है। हमने उसे थोड़ी आशा और बँधा दी वर्ना आप भी जानते हैं कि ऐसे लोगों का क्या होना है।"

"अब बड़े साहब भी आखिर किस, किससे मिलें, बताइए? वे अगर आम आदमी से मिलते रह जाएँ तो फिर पंडिज्जी से कब मिलेंगे? सही कहा न?"

"साहबी बड़ी कठिन विद्या है।" पंडिज्जी ने माना।

"साहब अपनी साहबी को साधें कि जे सब देखें?"

"सही कहा। अफसर के सामने वैसे ही पचासों टंटे रहते हैं, ऐसे में इस जैसा कोई आदमी हाथ जोड़ के खड़ा हो जाए तो ..."

"... फिर बाद में सबसे जे भी कहता फिरे कि हमने तो साहब की इत्ती चिरौरी करी पर उनने एक न सुनी।"

"साहब भी किसकी सुनें, किसकी न सुनें?"

"नोट पहुँचाने वालों के काम सलटाएँ कि तुम्हारा जे हाथ जोड़ना देखें?"

"पर जनता समझने को राजी नहीं।"

"वैसे, बड़े साहब बहुत अच्छे हैं।"

"दयालु भी।"

"काम रोकते नहीं किसी का।"

"न सज्जनों का, न दुर्जनों का।"

"न शरीफों का, न हरामियों का।"

"बस, उनकी मुट्ठी गरम कर दो, फिर वे कुछ और नहीं देखते।" के कुछ और नह

भार क्या चाहिए?" "एक अफसर से से आपको और क्या चाहिए?"

दोनों हँसने लगे।

तभी पंडिज्जी चौककर सावधान की मुद्रा में खड़े हो गए। दलाल भुनगा बनकर झुक गया। चैट रूम

साहब दूर से आते दिख रहे थे। बरामदे में फूल खिल गए। सुगंध फैल गई। हवा बौरा गई। भृत्य सजग हो उठे। आगे-आगे दो मातहत। पीछे ड्राइवर। सिर पर मुकुट के जैसा साथ चलता हुआ आभामंडल। पंडिज्जी गरीब को इशारा करना ही भूल गए। अभी तो उनका सारा ध्यान इस बात पर था कि साहब पास आएँ तो कैसे उन्हें जोरदार सलाम मारा जाएगा। झाँकी पास आ रही थी। भक्त हाथ जोड़कर खड़े थे। दफ्तर का भक्तिकाल चरम पर था।

और वह ग्रामीण गरीब?

उसकी न पूछें। वह घबरा के एकदम पीछे चला गया है। अभी वह भीड़ के पीछे दीवार से सटा हुआ खड़ा है।

अफ़सरी के गायब होने की शिकायत कहाँ करें?

लैंड रिकार्ड ऑफ़िसर का दफ़्तर।

पंडिज्जी दस बजे ही वहाँ पहुँच गए थे।

वकील साहब भी पहुँचते ही होंगे। उन्होंने कहा था कि आप पहुँच जाएँ। हम पहुँचते हैं। तब तक हँसमुखजी भी दफ्तर पहुँच जाएँगे। नोटों की गड्डी मिठाई के डिब्बे में धर के ही लाना। बीस हजार की बात हुई है। साथ में शादी का एक कार्ड भी लाइएगा। कोई-सा भी कार्ड उठा लाइएगा। पुराना, धुराना, कुछ भी। बस, अपन हँसमुख जी को यह कार्ड और डिब्बा पकड़ा देंगे। ... न्योता देने आए थे भाई। कब्रिस्तान वाली जमीन का औरजिनल रिकार्ड अदालत में पेश न करने के लिए मान गए हैं हँसमुखजी। कहा है, किसी पेशियाँ तो निकाल ही देंगे। तरह तीन

हँसमुख जैन डिप्टी क्लेक्टर रैंक के अधिकारी हैं।

सालों से इसी दफ़्तर में जमे हुए हैं।

यहाँ की रग-रग जानते हैं वे। रग को कहाँ और कितना दबाने पर आदमी बिलबिलाकर पैसे निकाल देगा, कहाँ दबाने पर वह रिरियाने लगेगा, जानते हैं वे। उनको ज़मीनों के मामलों का सुपर स्पेशलिस्ट कहा जा सकता है। कालपी जिले में सरकारी ज़मीन कौन-कौन-सी जगह पर है, कहाँ-कहाँ ऐसी पोशीदा है कि चाँप लो तो सालों तक कोई पूछेगा भी नहीं और कहाँ-कहाँ उस पर पहले ही गैरकानूनी कब्ज़े हैं उन्हें जुबानी पता है- क्योंकि ज़्यादातर कब्ज़े तो उन्होंने ने ही कराए हैं। पटवारी इनकी पूजा करते हैं। इनका कोई मन्दिर तो नहीं है पर पोजीशन देवता वाली ही है। इन पर चढ़ावा, भंडारा, कीर्तन, दर्शन, जय-जयकार, तिलक, खील-बताशा, पूजा-पाठ अहर्निश चलता रहता है।

हँसमुख जैन अपनी कुर्सी की हैसियत से खूब वाकिफ़ हैं। शहर में उनका जलवा है। जैन साहब के नाम की एक ठसक है। विनम्र रहते हैं। सबसे 'हैं हैं' करते हैं। हाँ, उनकी इस विनम्रता से कोई भ्रम में नहीं पड़ता। 'हैं हैं' का मतलब यह नहीं है कि वे अपनी रिश्त की रेट कुछ कम कर देंगे। नहीं जी, कतई नहीं। जो माँगी है, वही लेंगे। 'हैं हैं' करके बता देंगे कि हम लेंगे तो वही जो आपके साथ फिक्स हुई थी। इस मामले में बड़े कट्टर सिद्धांतवादी टाइप हैं। रकम पूरी न दो तो विनम्रता से फाइल वापस रख देते हैं कि पूरी रकम का इंतज़ाम हो जाए तो ही पधारिएगा। ... काम रिस्की है हमारा। रिस्क तो कवर करनी होगी आपको। पूरी ही रकम दीजिए। आप तय रकम से अगर सौ रुपए भी कम देंगे तो यह हमारा नहीं, सिस्टम का अपमान कहाँ जाएगा। 'हैं हैं' करके अन्ततः वे यही आग्रह करते हैं कि हमारी मेहनत और इस रिस्क का अपमान न किया जाए। लोग भी अब उनको जानते हैं। पूरी रकम ही देते हैं। वैसे यह भी सच है कि फिर अपना काम भी हँसमुखजी एकदम सटीक करते हैं। सरकार किसी की भी हो, वे लखनऊ में बैठी सरकार से डायरेक्ट तार जोड़कर रखते हैं। सरकार से उनकी घनिष्ठ रिश्तेदारी-सी है।

सुबह दस बजे के आस-पास बंगले से निकलते हैं हँसमुखजी। जैन हैं पर हनुमान भक्त भी हैं। घर में ही एक छोटा-सा हनुमान मन्दिर बना रखा है। स्वयं को धार्मिक मानते हैं। योगा करते हैं, दातुन से दाँत साफ करते हैं, 'तेरे पूजन को भगवान बना मन मन्दिर आलीशान' गाते रहते हैं, और इस सब को वे भारतीय संस्कृति का पालन मानते हैं। सुबह आठ बजे, नहा-धोकर पूजा में बैठ जाते हैं। फिर, एक घंटे की पूजा। सारे कर्मकांड। घंटी। खड़ताल। भड़भड़ाकर मंत्रोच्चार। ऊँची आवाज़ में हनुमान चालीसा। धूपबत्ती। अगरबत्ती। कपूर। पवित्र धुआँ। कभी-कभी तो यहाँ इतना धुआँ उठता है मानो ईश्वर की आँखों में धूल झाँकी जा रही हो। ... साढ़े नौ बजे तक पूजा से उठते हैं। तभी ड्राइवर आकर गाड़ी लगा देता है। पूजा-पाठ से निबटकर वे तैयार होते हैं। तब तक भृत्य सबको चिरौंजी दाने का प्रसाद बाँटता है। एक अन्य भृत्य पूजा की थाली को घर भर में घुमाता है। इस तरह घर का कोना-कोना बिना और कुछ किए ही पवित्र हो जाता है। एक

खामखां किस्म के पवित्र अहोभाव से भरे हुए यदि घर से निकला जाए तो दिनभर के अनैतिक अफ़सरी खटकरम करने के लिए नैतिक साहस मिल जाता है। सारी बदमाशियों के लिए ईश्वर से सहर्ष अनुमति मिल गई हो, ऐसा लगता है।

यही सब आज भी हुआ। और अभी पूजा-पाठ से निबटकर दफ़्तर के लिए तैयार होने में लगे हुए हैं हँसमुखजी।

परन्तु तभी एक अघट घटी।

उधर जब पंडिज्जी लैंड रिकार्ड ऑफिस में घुस रहे थे और इधर हँसमुख जैन तैयार होने के तारतम्य में पैंट पर बेल्ट कस रहे थे, तभी यह अघट घटी। वे जब अपनी खिसकती पैंट पर बेल्ट को बिस्तरबंद टाइप खींच ही रहे थे कि उनका फोन बजा। एक हाथ से पैंट और एक में फोन लेकर वे बात करने लगे।

"यार, आप कहाँ हैं भाई साब?" किसी ने उस तरफ से पूछा। उन्होंने आवाज़ पहिचान ली। खासे आत्मीय हो उठे और अतिशय विनम्र भी। और, उस पर ढेर-सी 'हैं हैं' का तो कहना ही क्या।

"यहीं, घर पर ही था, ... क्यों?" जैन साब ने पूछा।

"फिर तबसे हमारा फोन काहे नहीं उठा रहे हैं भाई साब?"

"पूजा में बैठा हुआ हुआ था।"

"समझदार अफसर पूजा में भी फोन बगल में रखकर ही बैठता है। अफसरी का कोई भरोसा? इसमें कभी भी, कुछ भी हो जाता है। भगवान थोड़े ही हर चीज में मदद को आएगा? उसके पास और भी काम हैं।"

"यार, पूजा में बैठा था, बताया न।"

"तो अभी के अभी वापस पूजा में बैठ जाँ। भगवान से प्रार्थना करें कि यहाँ सब ठीक हो जाए।"

जैन साहब घबरा गए। कलेक्टर के पीए का फोन है। उसे उन्होंने वर्षों से साध कर रखा है। मुँहलगा है जैन साहब का। अन्दर की बातें बताता रहता है। बड़े अफसर की किलेबंदी करके तो रखनी ही पड़ती है।

"तुम ये क्या कह रहे हो यार? साफ़-साफ़ बताओ न?" जैन साहब व्यग्र हैं।

"वही बताने के लिए तो हम फोन कर रहे थे। ...वे आपको लूप-लाइन में डाल रहे हैं।" पीए ने बताया।

"अरे!" जैन साहब के हाथ से पैंट छूट गई। नीचे खिसककर पैंट जाँघों तक आकर रुक गई। पैंट में आधा अधूरा घुसा हुआ बेल्ट भी नीचे को लटकने लगा।

"कलेक्टर साहब ने कहा है कि अभी तो इनको जनसुनवाई में टेपरिली डाल दो फिर देखते हैं।"

"क्यों? कलेक्टर ने तुमसे कुछ कहा क्या?"

"हमसे क्या कहते?... कलेक्टर की मर्जी। उनसे तो इसकी किसी को भनक भी नहीं लगने दी। हमें भी बस सुबह-सुबह बंगले पर बुला लिया। वहीं पूरा ऑर्डर डिक्टेट कराया। कहा कि जैन साहब आएँ तो घुसते ही उनको यह ऑर्डर पकड़ा दिया जाए। अभी हमारे सामने ही रखा है आपका कागज।"

"फिर यहाँ किसे बिठा रहे हैं?"

"रस्तोगी को। हम तो आपको दो-तीन बार पहले भी चेताए थे कि यह रस्तोगी कुछ बड़े चक्कर में दिख रहा है पर आप ही नहीं चेते।"

"इस ऑर्डर को आप कब तक अपने पास रोक सकते हो?"

"कहा तो साहब ने तुरन्त देने को है। ऐसे में हम इसे कितना रोकेंगे? बस... एकाध घंटे। ... उतना हमने रोक रखा है। इसी बीच कुछ कोशिश कर सकते हों तो कर लें।"

जैन साहब हाथ में फोन लिए खड़े रह गए।

खिसकी पैंट को वापस ऊपर चढ़ाते हुए उन्होंने फोन को जेब में वापस रख लिया। तभी भृत्य ने आकर उन्हें प्रसाद के चिरौजी दाने दिये। वे न जानें कहाँ खोए हुए थे। बस, यूँ ही चार दाने उठाकर मुँह में रख लिए। मुँह ऐसा सूख गया है कि गलने का इंतजार करते हुए दाने मुँह में ही पड़े रह गए।

अब?

लूप लाइन का अर्थ खूब जानते हैं जैन साहब।

लूप लाइन में शरीर तो अफ़सर का रहता है पर उसमें से आत्मा निकल जाती है। लूप लाइन में बिठा दिया गया अफ़सर अर्थात् घास-फूस का एक बेजान पुतला जिस पर अफ़सरी का कोट-पैट चढ़ा दिया गया हो। अफ़सरी है भी, नहीं भी है। अफ़सर हैं भी, नहीं भी हैं। न सस्पेंड, न बरखास्त। अफ़सर तो रहे पर अफ़सरी नहीं बची। हैं अब भी डिष्टी कलेक्टर, पर डिष्टी कलेक्टरी को लकवा मार गया। हाथ-पाँव बचे हैं पर हिलेंगे नहीं। जो ठीक कुर्सी पर न बैठा हो ऐसे अफ़सर का क्या होता है, खूब जानते हैं जैन साहब; खासकर, मलाईदार जगह से हटा देने पर अफ़सर की क्या दुर्गति होती है, यह बात अच्छे से जानते हैं वे। मानो गुब्बारे की हवा निकल जाए और वह सिकुड़ा हुआ, पिचका-सा, सिस्टम की मेज़ पर कहीं कोने में पड़ा रह जाए, कुछ ऐसा हो जाता है उसका वजूद। लोग उसे देखते भी नहीं। कभी देखते भी हैं तो बड़े दया भाव से। कुछ लोग तो देखकर हँसने तक लगते हैं कि जे पड़े हैं अपने साहब जिन्होंने एक जमाने में बड़ी अफ़सरी झाड़ी है भैया, बड़ी आग मूती है; और आज इन्हें कोई टके गज भी नहीं पूछ रहा!

धीरे से वहीं पड़ी कुर्सी पर बैठ गए जैन साहब। मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही हैं।

कदाचित् भृत्य ने साहब की शक्ल से ताड़ लिया कि साहब की तबीयत ठीक नहीं लग रही। वह अन्दर जाकर मेम साहब को बुला लाया।

पत्नी तुरन्त भागकर वहाँ आई।

"क्या हुआ?" पत्नी ने पूछा, "अभी तक तो जोर-जोर से हनुमान चालीसा पढ़ रहे थे?"

जैन साहब कुर्सी से उठ गए।

"कुछ तो नहीं," जैन साहब ने कहा। क्या बताएँ इसे? समझोगी कुछ भी नहीं। आँय-बाँय सुझाव अलग देने लगोगी।

"कैसे कुछ नहीं? शक्ल देखी है अपनी? चेहरा सफेद हो रहा है। तबीयत तो ठीक है न?" पत्नी ने चिन्ता से उनके माथे पर हाथ रखने की कोशिश की।

"तबीयत को क्या होना है?" उसका हाथ झटक दिया उन्होंने।

"अरे क्या हो गया? बताओ तो?"

"नई पोस्टिंग दे रहे हैं। वर्मा ने अभी फोन पर बताया है।" जैन साहब कब तक न बताते? दिल में तो खलबली मची है।

"ऐसे कैसे?" पत्नी ने पूछा।

"पोस्टिंग कैसे की जाती है; कर दी, बस।"

"कहाँ कर दी?"

"अरे, कहाँ से क्या मतलब? यहाँ से हटा रहे हैं, यह बात समझने की है। यहाँ से हटाकर फिर जहाँ भी कर दें क्या होना है? यहाँ करें कि वहाँ करें, उसकी क्या वैल्यू?"

जैन साहब बड़बड़ाते हुए टाई बाँधने लगे।

रोज बड़े ठाठ से टाई बाँधते थे। अफ़सरी के सुहाग चिन्हों में से एक रही है टाई उनके लिए। वैसे, वे पहिन तो अभी भी रहे हैं परन्तु उनको सधवा जैसा फील नहीं हो रहा। बल्कि एक तरह के विधवा भाव ने घेर रखा है उनको।

"आपको पहले से पता नहीं चला?" पत्नी चिन्तित है।

"चल तो गया, तभी तो बता रहे हैं।" वे बौखलाए हुए हैं।

"अरे, और पहले पता नहीं चला? किसी ने आपको बताया नहीं?"

"पता चल भी जाता तो मैं क्या कर लेता? साहब के हाथ से कलम थोड़ेई छुड़ा लेता?"

"साहब से मिल तो सकते थे।"

"मिलने से कुछ न होता। रस्तोगी के खेल हैं सब।"

"हम अभी बड़ी मैडम से जाकर मिलें क्या? उनसे कुछ रिक्वेस्ट करें?" पत्नी ने पूछा।

"ये कोई तुम्हारी लेडीज क्लब का नाच-गाना नहीं है।"

"इन नाच-गानों के बीच ही सबकी वाइफ लोग अपने हजबेंड के लिए सिफारिशें लगाती हैं।"

"ऐसी पोस्टिंगों में मैडमजी की नहीं चलती। इनमें बस पैसा चलता है। रस्तोगी ने पहुँचा दिया होगा।"

"तुम भी तो देते हो?"

"हम? अरे हमने हमेशा दिया है। खूब दिया है। खूब देते रहे।"

"फिर?"

"पेट में कुआँ है स्सालों के।" बड़बड़ाते हुए वे टाई बाँधते रहे।

"अभी कहाँ जाओगे? दफ्तर?" पत्नी ने चिन्तित होकर पूछा।

"देखते हैं," जैन साहब ने उड़ते-उड़ते स्वर में कहा और बाहर निकल गए। पत्नी समझदार है। वह पीछे-पीछे नहीं आई। किसी को भी इस बात का पता नहीं चलना चाहिए। देखने वाले तुरन्त ताड़ लेंगे कि कुछ गड़बड़ है। सहज रहना होगा।

जैन साहब पोर्च में खड़ी कार तक पहुँचे।

शरीर से मानो प्राण ही खींच लिए हों किसी ने। उनको विकट थकावट-सी लग रही है। बदन ढीला होकर नीचे की तरफ़ जा रहा है। अचानक ही वे खुद को बूढ़ा महसूस कर रहे हैं।

अभी तो रिटायरमेंट के ही सात साल बकाया हैं यार। फिर? ऐसा क्यों? कल ही डाक्टर से जाँच कराता हूँ। आँखों से भी ठीक नहीं दिख रहा। चश्मे का नम्बर बदल रहा है शायद, या कहीं मोतियाबिंद तो नहीं? नज़र तो स्साली कमज़ोर थी ही। तभी तो पीठ पीछे और नाक के नीचे अपने ही ख़िलाफ़ इत्ती बड़ी चीज़ चल रही थी और वे देख ही नहीं सके, हद है!

पोर्च। लम्बी-सी ड्राइव। गमले। फूल। घास। पौधे। पेड़। हवा। सुबह की धूप। तितलियाँ उड़ रही हैं। चिड़ियों की आवाज़ें।

यार, यह प्रकृति भी फालतू में गलत टाइम पर डिस्टर्ब करती है। यहाँ दस तरह की चिन्ताएँ सिर पर हैं और यह स्साली तितली !

एक तितली तो एकदम उनके पैरों के आस-पास से ही उड़ती हुई निकली। ज़ोर से एक लात झटकी जैन साहब ने।

ड्राइवर कार का दरवाज़ा खोलकर खड़ा था। हमेशा ऐसा ही करता है। मुस्कुराकर "सलाम सर" कहा उसने। हमेशा कहता है। पर यह स्साला, आज कुछ ज़्यादा ही नहीं मुस्कुरा रहा है? है ना? इन छोटे कर्मचारियों तक भी खबर पहुँच गई है क्या? मज़े ले रहा है बदमाश।

बैठ गए वे, कार में।

"चलें सर?" ड्राइवर ने पूछा।

रोज़ पूछता है।

"चलोगे नहीं तो क्या यहीं खड़े रहना है?" वे चिढ़कर बोले।

साहब आदमी ! साहब लोगों के मूड का पता नहीं चलता। आज चिढ़े हुए से हैं अपने साहब। घर में चिकचिक हो गई क्या? पेट में गैस वगैरह का मामला भी हो सकता है। ड्राइवर ने उनके इस चिढ़ने को उनके साहब होने से जोड़ लिया।

कार चल पड़ी।

यार, इससे मुझे इस तरह चिढ़कर नहीं बोलना चाहिए था। अब ये दस जगह रस ले-लेकर लोगों को बताता फिरेगा कि कुर्सी छिन गई तो देखो, कैसा पिनपिना रहे थे! सोच रहे हैं जैन साहब।

"क्या अभी कलेक्टर साहब के बंगले पर जाकर सीधे उनके पाँव पकड़ लिए जाएँ? ब्रीफकेस में कल के पाँच लाख पड़े हुए हैं। पूरे दे आऊँ क्या?" खुद ही खुद से बातें कर रहे हैं जैन साहब। हाँ, यही ठीक रहेगा।

"जरा कलेक्टर साहब के बंगले से होकर चलना तो ज़ब्तार....," जैन साहब ने अबकी बार विनम्र स्वर में ड्राइवर से कहा।

"सर, साहब तो कल रात ही लखनऊ चले गए।" ड्राइवर ने बताया।

"अचानक? कैसे?"

"नहीं, अचानक नहीं। सबको पता था। सुबह से पता था सबको। उनके ड्राइवर ने तो हमें कल सुबह ही बताया था।"

"ओह..."

"वैसे बंगले पर मेम साब तो होंगी, चलें?"

"नहीं, नहीं, रहने दो।" कहकर वे सीट पर अधलेटे-से हो गए।

यार, कलेक्टर राजधानी जाने वाला था और मुझे यह बात पता ही नहीं थी! यह तो मेरी लापरवाही की इतिहास है। ऐसे चलती है भला अफ़सरी कि आपको अपने बॉस की मूवमेंट्स का ही पता न हो? ऐसे बेखबर रहोगे, फिर यही सब तो होगा।

ड्राइवर ने किनारे कर के कार रोक ली थी। वह साहब के अगले निर्देश की प्रतीक्षा कर रहा था।

"फिर दफ़्तर ही ले चलूँ सर?" ड्राइवर ने पूछा। जाऊँ दफ़्तर कि न जाऊँ?

जब तक वे रस्तोगी को दफ़्तर का चार्ज नहीं देते तब तक तो वे ही लैंड रिकार्ड ऑफ़िसर हैं। हाँ, एक बार चार्ज दे दिया तो फिर सारी सम्भावनाएँ बिला जाएँगी। इस स्साले को यदि किसी तरह से चार्ज में अटका सकूँ तो? इसे चार्ज नहीं देना है। पर अभी दफ़्तर पहुँचे, और वह कलेक्टर का कागज ले के आ गया तो फिर चार्ज तो देना पड़ जाएगा।

फिर?

समझ ही नहीं पा रहे हैं जैन साहब कि अपनी अफ़सरी के गुम जाने की शिकायत कहाँ जाकर दर्ज कराएँ? अफ़सरी को अब कहाँ जाकर तलाशा जाए? अफ़सरी के बिना काया कितनी खोखली लग रही है अभी? है ना? मुँह सूख रहा है। हाथ चल नहीं रहे। आँखें झपकी जाती हैं। गाल लटक गए हैं। गर्दन तन क्यों नहीं रही? कमर झुकी क्यों जा रही है? हथेलियाँ गीली क्यों हो रही हैं?

"सर, फिर दफ़्तर ही चलूँ?" ड्राइवर ने फिर से पूछा। कार सड़क किनारे रुकी हुई थी।

तभी एक स्कूटर कार के पास आकर रुका। स्कूटर सवार काँच से झाँकने लगा तो जैन साहब ने खिड़की का काँच नीचे कर लिया।

कलेक्टर का एक बाबू है। जैन साहब और उनकी गाड़ी को पहिचानता है। कार सड़क पर यूँ खड़ी देखी तो वह उत्सुकतावश रुक गया था। कहीं साहब की कार तो खराब नहीं हो गई? कहीं कोई सहायता तो नहीं चाहिए?

"कार गड़बड़ हो गई सर?" उसने आदरपूर्वक पूछा।

"नहीं, नहीं, सब ठीक है," उत्तर ड्राइवर ने दिया।

"सब ठीक है," जैन साहब ने भी कहा।

जैन साहब की आवाज़ इतनी बुझी-बुझी थी कि बाबू चौंककर उनका चेहरा देखने लग गया।

जैन साहब का चेहरा एकदम राख, राख हो रहा था।

अफ़सरी की अंत्येष्टि के बाद बची हुई राख उनके पूरे चेहरे पर पुती हुई थी। आँखों में बदहवासी है। टाई फाँसी की तरह लटकी हुई है। कंधे ढलक गए हैं। हमेशा तेना रहने वाला शरीर कार की सीट पर गीले लोंदे जैसा पड़ा हुआ था। कार के सँकरे से आकाश में कटी पतंग से पड़े हुए थे वे।

उनकी हालत देखकर बाबू एकदम घबरा गया। अरे, यह क्या हो गया साहब को?

"सर, तबीयत तो ठीक है न?" उसने पूछा।

जैन साहब कुछ नहीं बोले।

"सर, आप ठीक तो हैं?" उसने फिर पूछा।

ड्राइवर ने भी पीछे की तरफ़ झाँककर देखा।

साहब बेचैन तो भौत दिख रहे हैं?

इसी बीच "आप ठीक तो हैं" सुनकर जैन साहब के दिमाग़ में कुछ कौंधा।

'ठीक कहाँ हो तुम? तुम ठीक नहीं।' जैन साहब के दिमाग ने जैन साहब को समझाया।

आदमी अभी तक ठीक भी रहा हो पर उसे बीमार होने में कितनी देर लगती है भला? वे अभी, अचानक ही यदि सिक लीव पर चले जाएँ तो फिर किसी का बाप भी उनसे चार्ज नहीं ले सकता। बस, किसी तरह से उनको दो दिन की मोहलत मिल जाए। लखनऊ में उनकी भी तो खासी पकड़ है। इत्ते सालों से खिला रहे हैं वहाँ सबको। ये लोग कब काम आएँगे?

जैन साहब को विश्वास है कि अभी भी चाँदी का जूता हाथ में उठाकर यदि वे वहाँ पहुँचेंगे तो हर जगह कालीन ही बिछा मिलेगा। चाँदी के जूते का तल्ला कितना भी गंदा हो उसके लिए कालीन बिछ ही जाते हैं।

"तबीयत बड़ी नासाज लग रही है जब्बार। रात से ही छाती दर्द कर रही थी। हमने सोचा था कि ऐसेई है। पर अभी तो बहुत तेज दर्द हो रहा है," बोलते-बोलते जैन साहब सीट पर लुढ़क गए।

ड्राइवर ने फुर्ती से अपना गेट खोला और कूदकर बाहर आ गया।

बाबू ने भी फटाफट अपनी मोटरसाइकिल सड़क किनारे लगाई और कार की पिछली सीट पर चढ़ गया। दो-तीन तमाशबीनों ने कार के खुले दरवाज़े पर भीड़ मचा दी। बाबू ने एक हाथ से नाड़ी पकड़कर मामला समझने की कोशिश की, और कुछ न समझ आया तो सीट पर धरी फाइल से साहब के मुँह पर हवा करने लगा। जब्बार ने पीछे का सारा दृश्य देखा, समझा और वापस अपनी सीट पर कूद गया। उसने गाड़ी फटाफट पीछे की दिशा में पलटाई और अस्पताल की दिशा में तेजी से दौड़ा दी।

आगे का किस्सा क्या कैसा होगा, इसकी पूरी रूपरेखा, बेहोश हो गए जैन साहब रास्ते भर पूरे होश में बनाते रहे। कालपी के अस्पताल से लखनऊ के बड़े अस्पताल तक की चिकित्सा यात्रा के दौरान वे इस मामले में सब कुछ ठीक कर लेंगे।

"रस्तोगी की ऐसी तैसी", वे लेटे-लेटे ही बुदबुदाए।

पीछे की सीट पर जैन साहब को सँभाले बाबू ने जब्बार से फुसफुसाकर बताया कि साहब होश में आ रहे हैं।

साहब को हार्ट अटैक हो गया है, पता चला पंडिज्जी को। अच्छा रहा कि अभी अपुन ने उनको रिश्तत नहीं दी थी।

"हार्ट अटैक में जैन साहब मर मरा गए तो अपना पैसा फालतू में डूब जाता।" पंडिज्जी ने वकील से कहा।

"चलिए, अफसर के बीमार होने के कारण दस्तावेज भेज पाना वैसे भी सम्भव नहीं, यह नोट तो यहाँ का बड़ा बाबू भी अदालत को भेज देगा। जरा पाँच हजार तो निकालिए। अभी उसे सेट करके आता हूँ। और पन्द्रह हजार बच जाने की खुशी मनाइए पंडिज्जी।" वकील ने कहा।

पंडिज्जी ने पाँच हजार रुपए वकील को पकड़ाते हुए कहा, "काहे की खुशी? हार्ट अटैक से जैन साहब कोई संत तो बन न जाएंगे? जब भी ज्वाइन करेंगे, देना ही पड़ेगा।" "खैर, जे तो है। कोई भी हार्ट अटैक जैन साहब को रिश्त लेने से रोक नहीं सकता।" वकील ने रुपए लेते हुए यह सनातन सत्य स्वीकार किया।

अँधेरे की पसलियों में रोशनी के खंजर

चार नौजवान बैठे हुए हैं, अधबने पुल के अधूरे गर्डर पर।

गांजा चल रहा है पर चिलम से नहीं। चिलम तो अब आउट आफ फैशन चीज है। चिलम से गांजा पीना पुरानी पीढ़ी का दकियानूसी तरीका था। कोटरा का नौजवान आजकल हँसता है चिलम देखकर। वह जेब में गांजे की सिगरेट रखता है। गांजे से भरी सिगरेट पीता है वह। मजा वही, गांजे की चिलम जैसा, पर फालतू की झिकझिक नहीं। जेब में सिगरेट धरी है। कोई देख भी ले तो गांजे का पता नहीं चलता। चिलम वाली फालतू फंड की तैयारी भी नहीं लगती। बस, जेब से निकाली और सुलगा ली।

निर्माणाधीन पुल पर बैठने से किसी ने रोका नहीं इनको?

कौन रोकेगा? सरपंच के बेटे को कौन रोकता? वह है, और उसके दोस्त हैं।

पुल का चौकीदार दौड़कर आया ज़रूर था। उसने बताया भी था कि इधर बैठबे की मनाही है। पुल बन रहा है। ठेकेदार साहब ने मना करी है।

"इन्हें पहिचानते हो?" एक साथी ने सरपंच पुत्र की तरफ़ इशारा किया। चौकीदार ने बताया कि हम तो बस ठेकेदार को पहिचानते हैं।

"उस जीप को पहिचानते हो? अरे वो, जो बजरी के ढेर के पास खड़ी है? पहिचाने उसे?"

चौकीदार चुप रहा।

"अच्छा छोड़ो उसे। इसे तो पहिचानते हो न?" सरपंच पुत्र ने जेब से देसी कट्टा निकालकर दिखाया।

चौकीदार ने हाथ जोड़ लिए।

"चलो, अच्छा है। कुछ तो पहिचानते हो। न पहिचानते तो हमें फालतू में पहिचान करानी पड़ती।" एक साथी बोला।

"और अपने ठेकेदार को ठीक से बता दइयो कि इतें जे वर्ना..., वैसे तुमारे फालतू से नियम-कायदे न बताए जाएँ वर्ना..., ठेकेदार हैं किंतें के?"

"मालिक, कानपुर के बताए जाते हैं।"

"तो उनको ठीक से बता दइयो कि कभी हम कानुपर आ के ही उनको ठोंक देंगे। जे बेतवा का पानी है। भौत सीधे रास्ते से नहीं बहता है।"

"जी।"

"उनसे क्या कहोगे?"

"कि जे बेतवा का पानी है।"

"बस तो अब तुम अपनी जगह जाकर बैठो। ठाठ से चौकीदारी करो। और गांजा पीते हो तो हमें बता दो?"

चौकीदार ने और ऊँचा करके हाथ जोड़े और वापस चला गया।

सब हँसने लगे। सब, मतलब?

सरपंच का सुपुत्र। वह स्कूली छात्र है। उसके दो सहपाठी। निवाड़ी से पधारा उनका एक चचेरा भाई। यह चचेरा भाई कब का स्कूल वगैरह की फालतू चीजों से मुक्त हो चुका है। फिर? वह करता क्या है? पर उसे करना ही क्या है? गांजा निवाड़ी में पीता है, गांजा यहाँ भी पी रहा है। आज ही कोटरा आया है। वहाँ किसी केस में उसका नाम आ गया था तो थाने वालों ने ही उसके बाप को सलाह दी कि मोंड़ा को अभी कुछ दिन के लिए कहीं बाहर भेज दो। रिश्तेदारी में पन्द्रह-बीस दिन काट आए, तब तक मामला यहाँ शान्त हो जाएगा। चचेरे भाई के स्वागत में कहीं बैठकर इंग्लिश दारू पी जाए, सरपंच सुपुत्र शुरू में तो यही चाहते थे। परन्तु चचेरा भाई पारम्परिक नशे का पक्षधर है। सो अब यहाँ गांजा पीया जा रहा है।

रात है। दस बजे के आस-पास का समय। कोटरा के बाहर का इलाका है यह पुल।

नीचे बेतवा बह रही है। ऊपर, पुल के गार्डर पर ये लोग पसरे हुए हैं। इनसे भी ऊपर काला आसमान है। आज अमावस है कदाचित। पुल तक पहुँचने वाली एप्रोच रोड पर अभी केवल गिट्टी और रेत पड़ी हुई है। वहीं पर अभी इनकी जीप खड़ी है। बड़े-बड़े अक्षरों में 'सरपंच, कोटरा' की तख्ती, नम्बर प्लेट के नीचे लटकी हुई है। गांजे का गाढ़ा धुआँ वातावरण में उड़ रहा है। बेतवा से आती हुई हल्की ठंडी हवा में गांजे की महक घुलती जा रही है। मज़ा आ रहा है। हल्का हो गया है शरीर। हवा में उड़ता हुआ महसूस कर रहे हैं वे सब। मज़े लेकर बातें कर रहे हैं।

कोटरा में चार नौजवान कहीं बैठकर कुछ भी बात करें, देर-सबेर हर बात हथियारों पर आकर टूटती है। और बातचीत गांजे के साथ हो रही हो तो हथियारों की बात जल्दी निकल आती है। अभी भी यही हुआ।

"माल तो भौत बढ़िया दिया मोंठ वाले चच्चा ने।" एक बोला।

"जे तो है।" दूसरा सहमत है।

"क्यों भैया? गांजा कैसा है?" सरपंच सुपुत्र ने चचेरे भाई से प्रशंसा चाही।

"कभी निवाड़ी आओ, हम पिलवाते हैं तुमों। तब जानोगे कि कि असली माल क्या होता है।" चचेरा भाई आया तो कोटरा है पर अपनी निवाड़ी साथ लेकर निकला है।

"ऐसा असली माल क्या होता है भैया?" सरपंच सुपुत्र ने व्यंग्यपूर्वक पूछा।

"हमारे बोलबे से कुछ समझ न आएगा। मऊरानीपुर के बबलू का माल खेंचा है तुमने? तो उसे खेंच के देखो कभी। खुद पता चल जाएगा।" चचेरा भाई उवाच।

"नाम तो खैर हमने भी उसका खूब सुना है। तुम आए हते तो साथ में धर आते न; इतें हम भी उसका आनन्द ले लेते।" एक ने कहा।

"अगली दफा जरूर लाएँगे। उसे ले जाकर सुंघा दइयो अपने मोंठ वाले चच्चा को। एकदम चूतियापे का माल पकड़ा दिया है। हमारी तरफ तो कोई भैंचो ऐसा माल दे तो आदमी सीधे उसकी टाँगे चीर के धर दे।" चचेरे भाई पिनक में हैं।

"निवाड़ी तरफ सीधे करके ही टाँगे चीरते हैं क्या?" दूसरे ने मजा लिया।

"नहीं, टेढ़ा करके भी चीर सकते हैं। सीधे की ऐसी कोई शर्त नहीं होती होगी, क्यों न सगे?" एक और बोला।

"मिलावट करबे पर ऐसी सजा तो अलाउद्दीन खिलजी भी नहीं देता था।"

"यार, हमने बस एक बात कही है। चीरबे का मतलब जे नहीं कि टाँग पकड़ के तान रहे हैं।"

"फिर?"

"टाँगें चीरबे की बात तो बस कही जाती है। बाकी ऐसे में गालीगलौज तो खैर हो ही जाती है।" चचेरे भाई ने कहा।

"गालीगलौज का क्या है, वो तो इतें वैसेई होती रहती है।" सरपंच पुत्र ने लापरवाही से कहा। वह कोटरा को निवाड़ी से नीचा नहीं देखना चाहता।

"इतें तो माल के मिलावटी होबे का शक भी लगे तो सीधे ठुकाई करबे का चलन है सगे।" पहले ने सरपंच पुत्र का समर्थन किया।

"कोटरा में बात कभी गालीगलौज पे नहीं रुक सकती भाई साहब।" कोटरा निवाड़ी से आगे है और इस बात पर कोटरा वालों को गर्व है, यह बताने की कोशिश हुई।

"यहाँ तो भैया, गाली दे के मूँ खराब करबे का चलन ही नहीं है। मूँ से ही काम लेना था तो फिर जे स्साले हथियार-हरवा काहे के लाने हैं, बताओ?" सरपंच पुत्र ने पूछा।

इस तरह बात विभिन्न हथियारों के उपयोग तथा उपयोगिता तरफ़ निकल आई।

फिर बात कल्ले में दम की आवश्यकता पर भी हुई।... सही बात, अगर आदमी के कल्ले में दम न हो तो मान लो कि सब हथियार फेल। छह रौंड वाली बिलैती पिस्तौल भी मुट्ठी में हो और आदमी से घोड़ा ही न दबे। ... कल्ले में जोर ही न हो तो खटका दबे कैसे? "हथियार से क्या होना है, जे चईए, जे..." चचेरे भाई साहब ने कहा। वे पुल के अधूरे लेंटर के किनारे बैठे थे। वे वहीं पुल के ऐन किनारे पर जाकर खड़े हो गए। पहलवानी शरीर है उनका। गांजे और गर्व के नशे में बाँहें फैलाकर भुजाओं की माँसपेशियाँ दिखाने लगे।

सरपंच पुत्र का शरीर बम खटाखट तो खैर नहीं है पर ऐसा पहलवानी भी नहीं कि इस प्रकार प्रदर्शनीय हो।

"दम उतें नहीं, इतें चइए, इतें!" सरपंच पुत्र ने स्वयं की छाती को जोर से ठोककर कहा तो उसे खाँसी आ गई।

गांजा चढ़ गया है सबके दिमाग पर। अब ये लोग नहीं बोल रहे, गांजा बोल रहा है। गांजे में मग्न आदमी में एक अलग ही किस्म का आत्मविश्वास उत्पन्न हो जाता है। वही दिख रहा है।

"इतें दम हो तो आदमी आगा-पीछा नहीं देखता।" सरपंच पुत्र का समर्थन उनके मित्र ने किया।

"सही बात। बस दम चईए।" दूसरा मित्र बोला।

"आदमी की फट रही हो तो वो छोटे-से चबूतरे से कूदने में भी घबराएगा, और दम हो तो अभी के अभी इतें पुल से कूद के दिखा दे। सच्ची।" सरपंच पुत्र ने कहा।

"यार, अभी तुम कूद न जड़ो कहीं।" चचेरे भाई ने नशे में भी चेताया।

"कहो तो कूद के दिखाएँ?" सरपंच पुत्र नशे की पिनक में पुल पर तनिक और किनारे तरफ़ खिसकने लगा।

"चूतिया घाई हरकत न करियो भैया।" एक मित्र किंचित होश में है।

"अरे, हमारा जलवा तो देखो। सच्ची बताते हैं। अभी हम इस पुल से कूद जेहें और हमारा बाल भी बाँका न होगा। ...सच्ची।" सरपंच पुत्र यह कहकर गर्डर के और भी किनारे की तरफ़ जाने लगा। चचेरे भाई ने हाथ पकड़कर उसे वापस खींच लिया।

"भौत ऊँचो पुल है भैया, फालतू का खेल न करो।" चचेरे भाई ने झूमते हुए फटकारा।

"देखा! अरे, हम कोई कूद नहीं रहे थे। हम तो बता रहे थे कि आदमी में हिम्मत होनी चाहिए। बस।" सरपंच पुत्र सन्तुष्ट था कि उसने पहलवानी शरीर की अवधारणा को पराजित कर दिया है।

सन्तुष्ट होकर सरपंच पुत्र अब पुल फैलाकर लेट गया। की स्लैब पर पाँव

जे स्साला आँखों के सामने अँधेरा छा रहा है कि आकाश ही काला है? उसे ठीक से कुछ दिख क्यों नहीं रहा? आँखें मीच लीं उसने। गांजा खत्म हो चुका है। हाँ, हवा में उसकी महक और मन में गमक बकाया है।

झींगुर बोल रहे हैं। पास ही कहीं भारंई की निरन्तर संगीतमय आवाज़ भी सन्नाटे में बज रही है। बेतवा के उस पार कोई ट्रक आकर रुका है। बत्तियाँ जलीं, फिर बुझ गईं।

"रेत की चोरी करबे वाले आज इत्ती जल्दी पहुँच गए स्साले?" एक ने कहा।

"जे बात आप सरपंच दद्दा को जरूर बतइयो।" दूसरे ने कहा।

"उन्हें पता होगा। उन से बिना पूछे यहाँ किसी की हिम्मत नहीं कि बेतवा से रेत का एक तसला भी उठा ले।" सरपंच पुत्र ने लापरवाही से कहा।

"तब ठीक है।" पहले ने कहा।

"अब अगर दद्दा ने ही कह दी है, फिर तो तुम स्साले पूरी बेतवा ही खोद के ले जाओ, हमें क्या है? है कि नहीं?" दूसरे ने कहा।

"घर चलें?" सरपंच पुत्र ने चचेरे भाई से पूछा।

"थोड़ी देर और बैठ लें? फिर चलते हैं। इतें अच्छा लग रहा है।" चचेरे भाई ने कहा।

"गांजा अच्छा हो तो कहीं भी अच्छा लग सकता है। सब माल पर निर्भर करता है।" मित्र ने पुनः मौँठ के माल की गुणवत्ता पर छाए सन्देह के बादलों को चीरने की कोशिश की।

चचेरे भाई ने इस बार कोई जवाब नहीं दिया। वह भी वहीं पास में लेट गया है। अब सभी सन्नाटे में हैं। थोड़ी देर शान्ति रही। भारंई की आवाज़ और तेज़ हो गई है। है। कुछ तारे। पतला-सा चाँद। अँधेरा। बेतवा।

"और तुम्हारी लाठी कैसी चल रही है?" अचानक ही पूछ लिया है सरपंच पुत्र ने।

"है चचेरे भाई की, लाठीबाजी में बड़ी साख है चचेरे भाई की, पूरे निवाड़ी इलाके में।

निवाड़ी में चचेरे भाई की एक तरह की बदनामी है कि लड़का गरम मिज़ाज है। बड़े बाप की बिगड़ी औलाद है। पर एक मशहूरी भी है कि लाठी चलाने में उसकी कोई सानी नहीं है। उस जैसी लाठी पूरे जिले में कोई नहीं चला सकता। सब मानते हैं, आनुवंशिक कला आई है उसमें। परदादा की आत्मा आ गई है लड़के में। परदादा, अपने ज़माने के, आस-पास के चालीस गाँवों में सबसे नामी लठैत थे। पैसे लेकर दूसरों की तरफ़ से भी लाठी चलाने जाया करते थे। दूर-दूर के लोग उन्हें साथ ले जाते कि फ़लानी जगह बँटवारा होना है सो लाठी चलबे को पूरा अंदेशा है सो आप हमारी तरफ़ से चले चलो। कुछ ऐसी ही बातें। ऐसा ही अपना नाम यह चचेरा भाई भी बना रहा है।

प्रश्न सुनकर चचेरे भाई साहब मुस्काए। बोले, "बढ़िया चल रही है। कल्ले में दम हो और लाठी को बढ़िया तेल पिलाया गया हो तो फिर किसी में हिम्मत नहीं कि आपसे आँखें मिला ले।"

"लाठी होती तो बढ़िया है, पर..."

"...पर क्या?" चचेरे भाई साहब लाठी को लगभग पवित्र हथियार मानते हैं।

"पर का मतलब जे कि लाठी हथियार तो जोरदार है और आपके कल्ले में दम भी है, परन्तु बैरी अगर दूर खड़ा हो तो जे हथियार एकदम फेल है। बैरी आपके सामने न हो, तो जे एकदम फालतू की चीज है।"

"फालतू? तुम लाठी को फालतू बता रहे हो?" उत्तेजित होकर बैठ गए चचेरे भाई साब।

"हओ, फालतू..."

"... फालतू कैसे?"

"तो क्या फेंक के लाठी मारोगे उसे?"

"फेंकेंगे क्यों? पहले दुश्मन को अपने पास आने देंगे।"

"मान लो, वो पास न आए तो?"

"तो हम दौड़कर मारेंगे न स्साले को..."

"... मान लो कि बैरी छत पे खड़ा हो, तो?"

"किसी स्साले की हिम्मत नहीं है पूरे इलाके में कि..."

"...मान लो, बैरी के पास तमंचा हो तो?"

"तो क्या? होने दो।"

"इधर आप लाठी मारने को दौड़े कि उसने तमंचा मार के आपको टपका दिया, तो?"

"यार, तुम्हें लाठी का पता नहीं..." चचेरे भाई ने बोलने की कोशिश की।

तब तक किसी ने लाठी के विरुद्ध एक और बड़ा तर्क सामने रखा।

"लाठी में एक और गड़बड़ी है। बैरी इसे दूर से ई देख लेता है। पहले ई सँभल जाता है। जबकि, यदि आपकी जेब में चक्कू धरा हो तो जब तक इसे आप बैरी की पसलियों में न डाल दें, स्साले को इसके होबे की भनक भी नहीं पड़ती है।"

"यार, कम से कम चक्कू से तो लाठी की तुलना न करो। चक्कू रखते हैं जेबकट। गिरहकट। बस, ऐसे लोग। चक्कू रखना है छिछोरी और मवालियों का काम। लाठी की अपनी इज्जत है। आधी आबादी तो लाठी देख के आपको आटोमेटिक प्रणाम करने लगती है। लाठी चलानी नहीं पड़ती। इसे तो बस लेकर निकलना ही काफी होता है।" चचेरे भाई ने समाज में लाठी के अपने ही आदरणीय स्थान का हवाला दिया।

"पर सही बात जे है कि आजकल लाठी को कोई नहीं पूछता।"

"कौन नहीं पूछता? हम तो खूब पूछते हैं।"

"पूछने को तो घर में दादाजी को भी पूछा जाता है परन्तु उनसे जे भी कहा जाता है कि तुम बस उतें कोने में आराम से बैठे रहो।"

"मतलब?"

"कोने में धरने के लिए जे बढ़िया चीज है पर..."

"...पर?"

"पर लाठी भौत पुरानी काट का हथियार है।"

"अच्छा! अरे, अगर कोई एक बार तुम्हारे आस-पास ठीक से लाठी भंभा दे, फिर बतइयो हमें। लाठी हवा में सर्र-सर्र होगी न, उसी में पेशाब निकल जाएगी।"

"तो क्या जे पेशाब उतारबे की कोई दवाई है?"

"टट्टी भी निकाल सकती है।"

"बात टट्टी, पेशाब उतरने की नहीं हो रई, हथियार की हो रई है।"

"और लाठी जैसी मुँदी मार और कोई हथियार मार सकता है क्या?"

"मतलब?"

"तुम्हारे पिछवाड़े पर हम एक लाठी मारें या दस, ऊपर से कुछ भी पता न चलेगा। सब सही लगेगा पर दस दिनों तक चूतड़ कल्लाता फिरेगा। मूँ के बल लेटोगे। घर में किसी को अपने दर्द की जगह भी ठीक से न दिखला सकोगे।"

सब चुप रहे। भाई साहब कोटरा के लिए पाहुने हैं। अतिथि का चूतियापा भी बर्दाश्त करना पड़ता है।

सरपंच पुत्र ने, इसी बीच, गांजे की बची अंतिम सिगरेट भी खींच ली थी। उसकी आँखों के सामने अब वे तारे भी चमक रहे थे जो काले आकाश में कहीं थे नहीं।

दूर बैठा चौकीदार सबको ताक रहा है। बड़े आदमियों की संतानें।

"जे पुल काहे हिल रहा है?" सरपंच पुत्र ने अचानक पूछा।

सारा वातावरण हिल रहा है उसके नेत्रों के समक्ष।

"कमजोर सीमेंट तो नहीं लगा दिया हरामियों ने?" एक बोले।

"नहीं, जे हिल तो नहीं रहा।" चचेरे भाई ने पुल का निरीक्षण करके कहा।

"... हिल तो रहा है यार..." सरपंच पुत्र ने कहा। "लाठी के नाम से काँप रहा है शायद?" एक ने कहा। "स्साला, कहीं गिर-गिरा न जाए?" सरपंच पुत्र को सब कुछ बहुत हिलता लग रहा है।

"गिरा भी तो अपने भैया उसे लाठी पे सँभाल लेंगे।" दूसरे ने कहा।

चेचेरे भाई साहब ने सुना ही नहीं।

इसी बीच अपनी जेब से तमंचा निकाल लिया है सरपंच पुत्र ने। अब वे थोड़ा प्रकृतिस्थ जरूर हो रहे हैं।

मौज में आकर उन्होंने एक हवाई फायर कर डाला।

सब चौंक गए। चौकीदार दौड़कर आया। टार्च जलाकर इन लोगों को देखने लगा।

"अबे, जे लाइट बन्द कर।" कोई चिल्लाया।

चौकीदार ने डर के मारे टार्च बन्द कर दी।

"तुम जाओ। जा के अपनी जगह बैठो। इतें बिलकुल न आना। हाँ, इतें अगर किसी को कोई गोली-फोली लगी तो हम तुम्हें जरूर बता देंगे।"

चौकीदार चुपचाप वापस चला गया।

सरपंच पुत्र अभी भी हवा में पिस्तौल लहरा रहे थे। पिस्तौल पर प्यार से हथेली घुमाते हुए वे चचेरे भैया से पूछने लगे :

"तो जे तमंचा तो हम बेतवा में फेंक देते हैं।"

"क्यों? तमंचा काहे फेंक रये?"

"अरे, जब तुमाई लाठी इत्ती चमत्कारी है तो जे स्साला तमंचा ले के चलना तो चूतियापंती कहाया न?"

"तुम भी हमारी मजाक उड़ा रहे हो क्या?"

"अरे नहीं भैया, हम ऐसा काम कर सकते हैं क्या?" कहकर सरपंच पुत्र निवाड़ी वाले चचेरे भाई से लिपट गए।

दोनों गिरते-गिरते बचे।

"नहीं भैया, लाठी की भी अपनी शान है।" सरपंच पुत्र ने लीपा-पोती करते हुए कहा।

"भइया, एक और गजब हथियार तो होता है गुप्ती।" कोई बोला।

"गुप्ती?"

"हओ, गुप्ती। देखबे में बस छोटी-सी लाठी, पर एक बार इसकी मुठी खेंच दो बाहर; फिर देखो। ... अन्दर से कटार निकल आती है। लम्बी। पैनी। सीधे आर-पार।"

"यार, एकदम चूतियापे की चीज होती है गुप्ती। न तो जे लाठी में, न चक्कू में। लाठी भी स्साली इत्ती पतली मानो लाठी को दस्त लग गए हों।"

सरपंच पुत्र ने गुप्ती को सिरे से खारिज कर दिया।

"चीज तो होती है तमंचा..." सरपंच पुत्र ने आगे कहा। "निवाड़ी के लखन का किस्सा पता है न? तमंचे की नली फट गई थी। हाथ बेकार हो गया।" चचेरे भाई ने तमंचे को खारिज करने की कोशिश की। वे मानते हैं कि लाठी के रहते किसी अन्य हथियार की कोई औकात नहीं हो सकती।

सरपंच पुत्र हँसने लगा।

बोला, "यार, आप दस हजार के जिस लोहा-लंगड़ को तमंचा कह रहे हो हम तो उसे तमंचा ही नहीं मानते। हर नली तमंचा नहीं होती। लोकल लुहारों की कारीगरी से बनी चीज को हम नपुंसक का शिश्र मानते हैं। बस, सजावट की चीज। लटकी है फालतू। पड़ी है चड्डी में, निष्क्रिय।"

"असली तमंचा तो होता है जे..." कहकर उन्होंने अपना कट्टा चचेरे भाई के हाथ में थमा दिया और मोबाइल फोन की टार्च जलाकर उसकी रोशनी कट्टे पर डाल दी। घने अँधेरे के बीच कट्टा कुछ ज़्यादा ही चमक उठा। चचेरे भाई साहब तो देखकर ही अभिभूत रह गए।

"वाह भैया, जे तो एकदम बिलैती चीज है।" हाथ में धरी शानदार पिस्तौल को उलटते-पलटते हुए वे बोले।

"बिलैती ही जानो। कानपुर के अहमदी लोगों का माल है। महँगा तो भौत है पर अंग्रेजी माल भी फेल है इसके आगे।"

आस-पास बैठे सब लोग तमंचे को देख रहे हैं।

"भैया, तनिक सँभाल के। भरी पिस्तौल है।" एक बोला।

सरपंच पुत्र ने आश्वस्त किया, "जे फटने वाली नली नहीं है भैया। दो खटके वाला ताला लगा है। ... जे देखो। ... इधर। जब तक दो बार इसे खेंच के फ्री न करो, कट्टा फैर ही नहीं होगा।"

"वाह भैया। महँगा होगा?"

"इसमें महँगा-सस्ता नहीं देखा जाता। पूरे साठ हजार दिये हैं।"

"साठ की ही चीज है। तुम इसे लाख का भी बोलते तो हम वो भी मान जाते। है तो गजब की चीज।" चचेरे भाई ने लाठी को भुला ही दिया था।

तमंचे की इस दिल-खोल तारीफ़ से सरपंच पुत्र भी उदार हो उठे।

"वैसे, आपकी बात भी सोलह आने सच्ची है। लाठी से बड़ा भी कोई हथियार नहीं।" वे बोले।

चचेरे भाई साहब भावुक हो गए।

"आदमी में हिम्मत हो, तो सब हथियार एक से..."

"जे भी है। जे नहीं हो सकता है कि खुद की तो फट रही है और चले हैं बैरी को टपकाने।"

सब लोग अन्ततः इस बात पर एकमत हुए कि कल्ले में अगर दम न हो तो सब हथियार फेल कहाँगे। इस तरह, गांजे के बादलों के नीचे सहमति की रिमझिम हो गई। रात ज़्यादा हो गई थी, और गांजा भी।

"घर चला जाए?" सरपंच पुत्र ने कहा।

"चलें। हमारे डुकर तो मार-तमाम बेचैन हो रहे होंगे। ... अभी फालतू में टंटा करेंगे।" एक बोला।

"बाप कभी टंटा करें तो आप उसकी बात पे सीधे हँसने लगो। हम तो अपने बाप से जेई करते हैं।" दूसरा बोला।

"हमारे डुकर थोड़ा अलग टाइप के हैं। अगर हमने थोड़ा भी हँस दिया तो बे गालीगुफ्तार करने लगेंगे।" पहले ने बताया।

"बुढ़ापा स्साला है ही बड़ी गड़बड़ चीज।"

इसी बीच सरपंच पुत्र प्रस्थान के लिए उठ गए। चचेरे साहब भी उठ चले। चचेरे भाई

"चलो रे..." कहकर सब चल दिये।

सारे लोग जीप की तरफ रवाना हुए।

बजरी और गिट्टी से होते हुए वे पचास कदम पर चौकीदार के पास से गुज़रे। चौकीदार एक फोल्डिंग चारपाई पर, पड़ा हुआ ऊँघ रहा था।

"सोते मत रहो। जागते रहो। ठीक से चौकीदारी करो। रात में कोई पुल ही उखाड़ के ले गया तो?" सरपंच पुत्र ने चारपाई में एक लात मारते हुए हँसकर कहा। फिर हँसते हुए सब जीप में जाकर बैठ गए।

चौकीदार ने बोरिया-बिस्तर उठाया और उसी तरफ़ चल दिया जहाँ अभी इन लोगों की महफ़िल सजी थी। अब वहाँ जाकर सोएगा। वहीं सोता है वह।

जीप चल पड़ी। गांजे का नशा उतर रहा था। हवा लगी तो नशा और उतर गया।

आधी दूर ही पहुँचे थे कि अचानक ही जीप रोक ली सरपंच पुत्र ने।

"क्या हुआ?" पूछा गया।

"भैया, वो तमंचा?" उसने चचेरे भाई से पूछा।

"वो तो हमने तुम्हें तभी वापस दे दिया था।" चचेरे भाई ने कहा।

"अरे भैंचो, फिर तो जे वहीं छूट गया।" कहकर बेचैनी भरी तेज़ी से उसने जीप वापस मोड़ ली।

अब तूफ़ान की तेज़ी से, कच्ची सड़क पर उछलते हुई बहुत तेज़ी से भाग रही है जीप।

वे लोग वापस पुल पर जा पहुँचे। चौकीदार पुल पर अभी उसी जगह अपनी खटिया लगा रहा था। इन लोगों को आते देखा तो बेचारा भड़भड़ाकर उठ बैठा।

चारों ने अपनी फोन टार्च जला रखी थी।

चारों, पहले तो उसकी खटिया के आस-पास तलाशते रहे। फिर बड़ी बेरहमी से उसकी खटिया एक तरफ़ घसीटकर वे उसके नीचे भी तलाश करते रहे। तमंचा कहीं नहीं था। अधबना पुल। उसका गर्डर। सब छान मारा। तमंचा नहीं मिला।

चौकीदार विनम्रतापूर्वक खड़ा हुआ देख रहा है सारा कार्य व्यापार

"कल्लू गुम गया सरकार?" चौकीदार ने पूछा।

सरपंच पुत्र ने उसे घूरकर देखा। ... स्साला। देखो तो, कैसा भोला बन रहा है!

"क्यों बे? कहाँ धरा है?" धमकी के स्वर में उसने चौकीदार से पूछा।

"क्या मालिक?"

सरपंच पुत्र ने एक ज़ोरदार थप्पड़ मारा तो वह पुल पर ही धड़ाम से जा गिरा।

"हमारा तमंचा, और क्या।" थप्पड़ मारकर सरपंच पुत्र ने बताया कि वह किस बाबत पूछ रहा है।

"महाराज, हमें तमंचे का क्या पता?" उसने उठते-उठते हाथ जोड़कर कहा।

"अरे, हम अभी दस मिनट पहले ही तो इतें छोड़ के गए हैं।"

"महाराज, इतें?"

"हओ इतें, जितें तुमने जे कथरी-सथरी बिछाई हुई है।"

"पर इतें तो कल्लू भी नहीं था मालिक। सच्ची।"

"अबे, और अभी कौन आया है इतें? तुमई तो हो। तुमने हमारा तमंचा नहीं देखा?"

"नहीं देखा मालिक।"

"आँखें फूट गई हैं का?"

"अँधेरा है मालिक।"

"तो? अरे, कहीं भी अपनी कथरी बिछाओगे, अपना सामान धरोगे तो क्या तुमें पता न चलेगा कि इतें कोई चीज पहले से पड़ी है?"

"नहीं पता चला मालिक।"

"छुपा के तो नहीं धर लिया? क्यों बे?" एक ने गिरेबान पकड़कर हिला दिया उसे। दूसरे ने उसके गाल पर तीन लप्पड़ मार दिये।

सरपंच पुत्र, गर्दन पकड़कर घसीटते हुए उसे पुल के किनारे तक ले गया।

"अभी फेंक दें तुम्हें, इतें से?"

"मालिक, माफ करो। हमें कुछ नहीं पता। सच्ची। राम कसम।"

चौकीदार फूट-फूटकर रोने लगा। रात के सन्नाटे में उसके रुदन की आवाज ऐसी गूँजी कि झींगुर तक घबराकर चुप हो गए।

"हमारे कट्टे से डकैती करबे का विचार बना लिया है क्या? क्यों?"

"मालिक, हम आपके पाँव पड़ते हैं। हा-हा खाते हैं आपकी। सच्ची। हमें कछू नहीं मालूम।" वह रोता रहा। सरपंच पुत्र उसे गर्दन से ही खींचकर वापस पुल के बीच में ले आया।

"तो पाँच मिनट में कट्टा इतें से कहाँ चला जाएगा रे?" चचेरे भाई ने पूछा।

तब तक सरपंच पुत्र ने उसे नीचे पटककर दो लातें और लगा दीं। फिर औरों ने भी और लातें मारीं।

दर्द से बिलबिलाने लगा वह। ज़ोर-ज़ोर से रोता रहा। रहम की भीख माँगता रहा। किसी ने रहम नहीं किया। कहीं से कोई बचाने भी नहीं आया। आसमान टूटकर नहीं गिरा। पतली-सी चाँद की फाँक बादल का इंतज़ार करने लगी कि वह उड़ता हुआ इधर आए तो वो उसमें अपना मुँह छुपा ले। पुल भी वास्तव में मजबूत ही बन रहा है; काँपा तक नहीं।

खूब पीटा। नशे ने ताकत दी तो और पीटा। पीटते रहे। वह रोता रहा। रोता ही रहा। तभी चचेरे भाई को एक खयाल आया :

"जे चौकीदार इतें जब अपना बिस्तर लगा रहा था तब इसकी लात की ठोकर खा के तमंचा कहीं पुल के नीचे तो नहीं गिर गया?"

बात सही थी। नीचे कहीं पानी में जाकर गिर गया हो तो? वैसे, अच्छी बात यह थी कि अभी तो नीचे पानी भी नहीं था। पिलर के पास बस रेत ही रेत थी। सबको लगा कि यही हुआ होगा। पीटते चौकीदार को एक और लात मारकर सरपंच पुत्र ने आदेश दिया, "चल बे। हमारे साथ नीचे चल के देख।"

सारे लोग भागते हुए कच्चे रास्ते से नीचे उतरने लगे। अँधेरे में भागते हुए लोगों के कदमों की आहट। सिसकते चौकीदार का रुदन। सन्नाटे में हलचल मच गई थी।

रात अँधेरी थी। अँधेरा अभी कुछ ज़्यादा ही बढ़ गया लगता था। सारी टाचें जली हुई थीं। हाथों में सँभाले गए रोशनियों के खंजर अँधेरे में आगे-पीछे हो रहे थे। रोशनी के चाकू चल रहे थे।

"अगर नीचे भी तमंचा न मिला तो स्साले, तेरे को वहीं रेत में गाड़ के लौटेंगे।" सरपंच पुत्र ने धमकी दी।

******* भाग 1 --समाप्त *******

